साहित्य और समाज की बातें

वार्षिकांक

साहित्य सौंदर्य

संघ लोक सेवा आयोग/ राज्य लोक सेवा आयोग व अन्य परीक्षाओं के लेखन/ साक्षात्कार हेतु महत्वपूर्ण

2023-24

संपादक
अरविंद कुमार

"महत्वपूर्ण समाचार, स्मृति, आलेख, स्तंभ, आलोचना इत्यादि का बेजोड़ संकलन"

हिन्दी साहित्य के अभ्यर्थियों के लिए

THE CORE IAS

E-BOOK

Read & Share it

संपादकीय

प्रिय अभ्यर्थियों, नमस्ते

साहित्य सौंदर्य के नवीनतम संस्करण के माध्यम से आप सभी से पुनः जुड़ पा रहा हूं I नववर्ष और UPSC मुख्य परीक्षा 2023 में सफल अभ्यर्थियों को साक्षात्कार हेतु शुभकामनाएं . 02 जनवरी से साक्षात्कार प्रारंभ है इस बार हर्ष का विषय यह है कि हिंदी साहित्य उत्तर लेखन बैच से 6 अभ्यर्थी साक्षात्कार में शामिल हो रहे है.

हिंदी साहित्य जगत में घटित समसायिक पर आधारित पत्रिका का अभाव है कुछेक है भी तो उनमें सामग्री की अधिकता उन्हें पढ़ना दुष्कर बना देती है .इन्ही बातों को ध्यान में रखकर वर्ष 2019 से साहित्य सौंदर्य पत्रिका का सृजन किया गया है .नवीनतम संस्करण इस बार निःशुल्क उपलब्ध कराया जा रहा है.जिसे आप हमारे यूट्यूब/टेलीग्राम और एप्प के माध्यम से डाउनलोड कर सकते है.साहित्य जगत की वार्षिक विरासत को इसमें सहेजने की भरसक कोशिश की गई फिर भी कुछ छूटने की संभावना बनी रहती है जिसे आप जैसे जागरूक पाठक संदेश और संपर्क के माध्यम से पूरा कर देते है .

प्रस्तुत पत्रिका के माध्यम से साहित्य की सभी वार्षिक खबर ,लेख ,आलोचना ,स्तंभ ,विवेचना ,संदर्भ को यूपीएससी के साथ ही नए अभ्यर्थियों को भी ध्यान में रखकर सृजित किया गया है .साहित्य जगत से अद्यतन रहने हेतु सभी को यह पत्रिका जरूर पढ़नी चाहिए.

इस पत्रिका में सृजित करने में कई घंटे का श्रम और ऊर्जा की खपत की गई है और बहुत सारे वेबसाइट ,समाचार पत्र आदि के संसाधनों का भी प्रयोग किया गया है .जिसका उद्देश्य सभी को सही सूचना और जानकारी पहुंचाने के संदर्भ में लिया जाना चाहिए.सहयोग की भूमिका में रहे सभी का तहे दिल से धन्यवाद . आप सभी के बहुमूल्य सुझाव और संदेश का इंतजार रहेगा.

साक्षात्कार में शामिल हो रहे अभ्यर्थी मुझे व्यक्तिगत मार्गदर्शन हेतु संपर्क कर सकते है.सभी अभ्यर्थियों को साक्षात्कार की पुनः शुभकामनाएं.

THE CORE IAS

अनुक्रमणिका

1. पहली दलित लेखिका मुक्ता साल्वे
2. समकालीन हिन्दी आलोचना और कबीर
3. परसाई जी को समर्पित प्रलेसं का राष्ट्रीय अधिवेशन
4. साहित्य में नोबेल पुरस्कार- 2023
5. अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार 2023
6. 56-57वां ज्ञानपीठ पुरस्कार
7. उर्दू साहित्य अकादमी पुरस्कार पर विवाद
8. परवीन शाकिर: मैं अब हर मौसम से सिर ऊंचा करके मिल सकती हूं…
9. 'दिल्ली के देवों! होश करो, सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है'
10. 'आउशवित्ज़: एक प्रेम कथा' दुनिया के सभ्य होने के बाद इंसान के बर्बर इतिहास का लेखाजोखा है
11. प्रेमचंद के लिए साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल थी
12. जिस विचार-विरोधी उपक्रम में कई तबके शामिल हैं, उसमें लेखक-कलाकार निश्चिंत नहीं बैठ सकते
13. हिंदी के प्रति इतनी हिकारत कहां से आई?
14. बनारस रा मगर दीदस्त दर ख़्वाब…
15. लौटना है "व्हाट झुमका' से झुमका गिरा रे" तक
16. बाल पत्रिकाओं की भूमिका और दायित्व
17. भारत के हिंदीतर रामकाव्य
18. साहित्य सामाजिक शून्य में नहीं रचा जाता।
19. भारतेंदु हरिश्चंद्र और मल्लिका
20. 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार'
21. वरिष्ठ पत्रकार और लेखक परवेज़ अहमद का निधन
22. सिने साहित्यकार डॉ. राजीव श्रीवास्तव 'जेपी सम्मान' से सम्मानित
23. संगीत को समर्पित आदमी के दुख-दर्द और सुखों की संगीतमय दास्तां है नाटक 'बाबूजी'
24. नारी की व्यथा कहता है संजीव का साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास 'मुझे पहचानो'
25. आखिर क्यों नहीं मिलता दलित और मुस्लिम लेखकों को साहित्य अकादमी पुरस्कार!
26. साहित्य अकादमी के साहित्योत्व में 150 भाषाओं पर कार्यक्रम
27. भिखारी ठाकुर के जीवन से रू-ब-रू कराता संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार'
28. साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार
29. जब एक उपन्यासकार ने धर्मवीर भारती से कहा, "तेरी तो एक ही उपन्यास से टैं बोल गयी"
30. रामधारी सिंह दिनकर : मैं माध्यम हूं, मौलिक विचार नहीं, कनफ़्युशियस ने कहा....
31. डॉ. ओम निश्चल को हिंदी सेवी सम्मान
32. कथाकार हृषीकेश सुलभ को मिला 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान'
33. 100 साल के हुए प्रोफेसर रामदरश मिश्र
34. मुझे हर हालत में स्त्री का साथ चाहिए था, चाहे किसी भी तौर-तरीके से क्यों न हो- मोहन राकेश
35. हबीब तनवीर ने फिल्मों की बजाय रंगमंच से प्यार किया, न्यौछावर कर दिया पूरा जीवन
36. यदि तुम्हें, धकेलकर गांव से बाहर कर दिया जाए... ओमप्रकाश वाल्मीकि
37. कहानी: ठाकुर का कुआँ
38. प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' का नाट्य रूपांतरण
39. केरल में लहलहाती हिंदी की पताका
40. बावरा मन: कर्ण-एकलव्य को जिन अधिकारों से वंचित रखा उन्हें लौटाने का वक्त
41. निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी 'दहलीज़'
42. यदि महाभारत फिर से लिखा जाए तो

THE CORE IAS

43. महिलाओं का अस्तित्व तलाशता उपन्यास है 'पोरेर बेटी',
44. चितरंजन त्रिपाठी एनएसडी के नए निदेशक नियुक्त
45. राजस्थानी भाषा अकादमी पुरस्कारों की घोषणा
46. निराला स्मृति सम्मान' प्रसिद्ध कवि अरुण कमल को
47. गुरुनानक देव और कबीर के साहित्य में समानताएं
48. समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर व्यंग्य है 'कर्मनाशा की हार'
49. साहित्य के पास निदान नहीं होता, वह केवल सजग कर सकता है- प्रयाग शुक्ल
50. कृष्णं वंदे जगद्गुरुं - श्रीकृष्ण को उनके नाम से पुकारने पर अर्जुन क्यों पछताने लगते हैं
51. भीष्म साहनी का 'तमस': आज और गहरा रहा है अंधेरा
52. मैट्रिक पास होकर भी बने हिंदी के प्रोफेसर
53. श्रीकृष्ण का यशगान - मीरा और सूर के स्वर में, रहीम-रसखान और नज़रुल इस्लाम के गीत भी
54. ख़ानेख़ाना रहीम की रचनाओं में आलोचकों ने बहुत कुछ खोजा और लिखा है,
55. प्यार की असली जंग तो प्रेम विवाह के बाद होती है, प्यार मोनोपॉली मांगता है - राजेंद्र यादव
56. भोपाल में होगा एशिया का सबसे बड़ा साहित्य उत्सव 'उन्मेष'
57. सही हिंदी – 'दूध वाला' ठीक है या 'दूधवाला', क्या कहते हैं नियम
58. मुंबई में खुला पहला 'कॉन्टेंट हैडक्वार्टर'
59. प्रेमचंद ने खुद को कहते थे 'कलम का मजदूर', कहा- मजदूर को मजदूर का ही जीवन बिताना चाहिए
60. हिंदी भाषा में नहीं है अपना कोई विराम चिह्न, केवल पूर्ण विराम को छोड़कर
61. क्यों मनाई जाती है गीता जयंती और क्या है इसका महत्व!
62. मोबाइल और इंटरनेट के जाल में गुम होता बाल साहित्य और बालपन
63. भोजपुरी के शादी ब्याह से लेकर कजरी तक में बापू का वर्णन
64. क्या राम सिर्फ हिंदुओं के लिए ही हैं
65. कबीर के राम में खोजिए अपने राम
66. आलोचक रमेश कुंतल मेघ का निधन, 'विश्वमिथकसरित्सागर' के लिए मिला साहित्य अकादमी पुरस्कार
67. डिप्लोमेसी ही नहीं साहित्य में भी 'जी 20' की गूंज
68. स्त्री की मुक्ति ही मानवता की मुक्ति है- अनामिका
69. लोकचेतना के समांतर, जानिए परंपराओं से क्यों जुड़ी हैं स्त्रियां और प्रतीक
70. भाषा का जीवन, बहुत-सी भाषा और बोलियों के मध्य 'हिंदी' ने बनाए रखा अपना स्थान
71. हिंदी है हमारी संस्कृति और नागरिकता का प्रतीक'
72. सृजन की हर साहित्यिक विधा भाषा की कसौटी पर ही कसी जाती
73. जेसीबी चालक को मिला केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार
74. गांवों की बदलती संस्कृति: आती अंग्रेजी, जाती हिंदी
75. एक लड़की के कारण फणीश्वरनाथ रेणु ने नहीं दी थी 12वीं की परीक्षा,
76. निर्बंध: अज्ञेय के इर्द-गिर्द

THE CORE IAS

पहली दलित लेखिका मुक्ता साल्वे

मुक्ता साल्वे को महाराष्ट्र ही नहीं बल्कि देश की पहली दलित महिला लेखिका माना जाता है. उनकी यह पहचान एक निबंध के आधार पर बनी, जिन्हें मुक्ता साल्वे ने महज 14 साल की उम्र में लिखा था.

ये घटना करीब 167 साल पहले 1855 में घटी थी. दरअसल पुणे में जब ज्योतिबा और सावित्रीबाई फुले ने स्कूल शुरू किया तो मुक्ता उनके स्कूल की छात्रा थीं.

घर परिवार और समाज में मुक्ता को जिन पीड़ाओं का सामना करना पड़ा था, उसको लेकर पढ़ाई के दौरान उनकी एक समझ बनी और उन्होंने दलितों की मुश्किलों को लेकर एक निबंध लिखा.

यह लघु निबंध 'मांग महाराचेया दुखविसाई' या फिर 'ऑन द सफ़रिंग ऑफ़ मांग एंड महार' के नाम से चर्चित है. इसमें मुक्ता न केवल मांग और महारों की पीड़ाओं को प्रस्तुत करती हैं बल्कि इसके सामाजिक कारणों की चर्चा करते हुए समाजिक असमानता पर तीखा प्रहार करती हैं.

उस दौर में भी मुक्ता के इस लेख को खूब प्रशंसा मिली थी और आज भी मुक्ता का निबंध 'दलित स्त्री साहित्य की दिशा में पहले क़दम के तौर पर देखा जाता है.

मुक्ता साल्वे का जन्म 1840 में पुणे में ही हुआ था. यह वह दौर था जब समाज में जातियों के नाम असमानता चरम पर थी और उच्च जातियों का वर्चस्व था. मुक्ता का जन्म उस दौर में अछूत मानी जाने वाली जाति 'मांग' में हुआ था.

उस समय प्रचलित धार्मिक शिक्षा केवल ब्राह्मण पुरुषों तक ही सीमित थी. न तो महिलाओं को पढ़ने की इजाज़त थी और न ही 'अछूतों' को.

हालांकि क्रिश्चियन मिशनरियों की ओर कुछ स्कूल हिंदू लड़कियों के लिए खुल चुके थे. लेकिन समाज के जिन लोगों को अब तक जानबूझकर शिक्षा से दूर रखा गया था, उनकी इन स्कूलों तक पहुंच नहीं थी. बहरहाल, मुक्ता 11 साल की उम्र में स्कूल पहुंची थीं.

दरअसल पुणे में ज्योतिबा और सावित्रीबाई ने लड़कियों के लिए स्कूल शुरू किया. फुले दंपति लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोलने वाले पहले भारतीय थे.

इस स्कूल में सभी समुदायों की लड़कियों को प्रवेश मिल रहा था. उन्होंने 1848 में पुणे के भिडे वाडा में पहला स्कूल खोला और तमाम सामाजिक विरोधों के बाद भी इसे जारी रखा. लेकिन फुले दंपति को अहसास हुआ कि एक ही स्कूल काफी नहीं था. शिक्षा से वंचित लोगों को स्कूल तक पहुंचाने के लिए अनेक स्कूलों की ज़रूरत थी.

यही वजह थी कि फुले दम्पति ने पुणे में विभिन्न स्थानों पर स्कूल खोले. 1851-52 में चिपलूनकर वाडा में एक और स्कूल शुरू हुआ. उसी वर्ष वेताल में एक तीसरा स्कूल शुरू किया गया.

ज्योतिबा-सावित्रीबाई के शिक्षा प्रसार के काम का समर्थन करने वाले लोगों ने विभिन्न स्थानों पर स्कूल स्थापित करने में उनकी मदद की. उनमें से एक थे लाहुजी साल्वे. क्रांतिगुरु उस्ताद के नाम से मशहूर लाहुजी साल्वे वेताल में एक मार्शल आर्ट प्रशिक्षण केंद्र चलाते थे.

लाहुजी साल्वे की पोती थीं मुक्ता साल्वे जो फुले दंपति के तीसरे स्कूल की छात्रा बनीं. महार और मांग समुदायों से स्कूल जाने वाली पहली लड़की थीं मुक्ता. 11 साल की उम्र में उन्होंने अपनी पढ़ाई शुरू की थी.

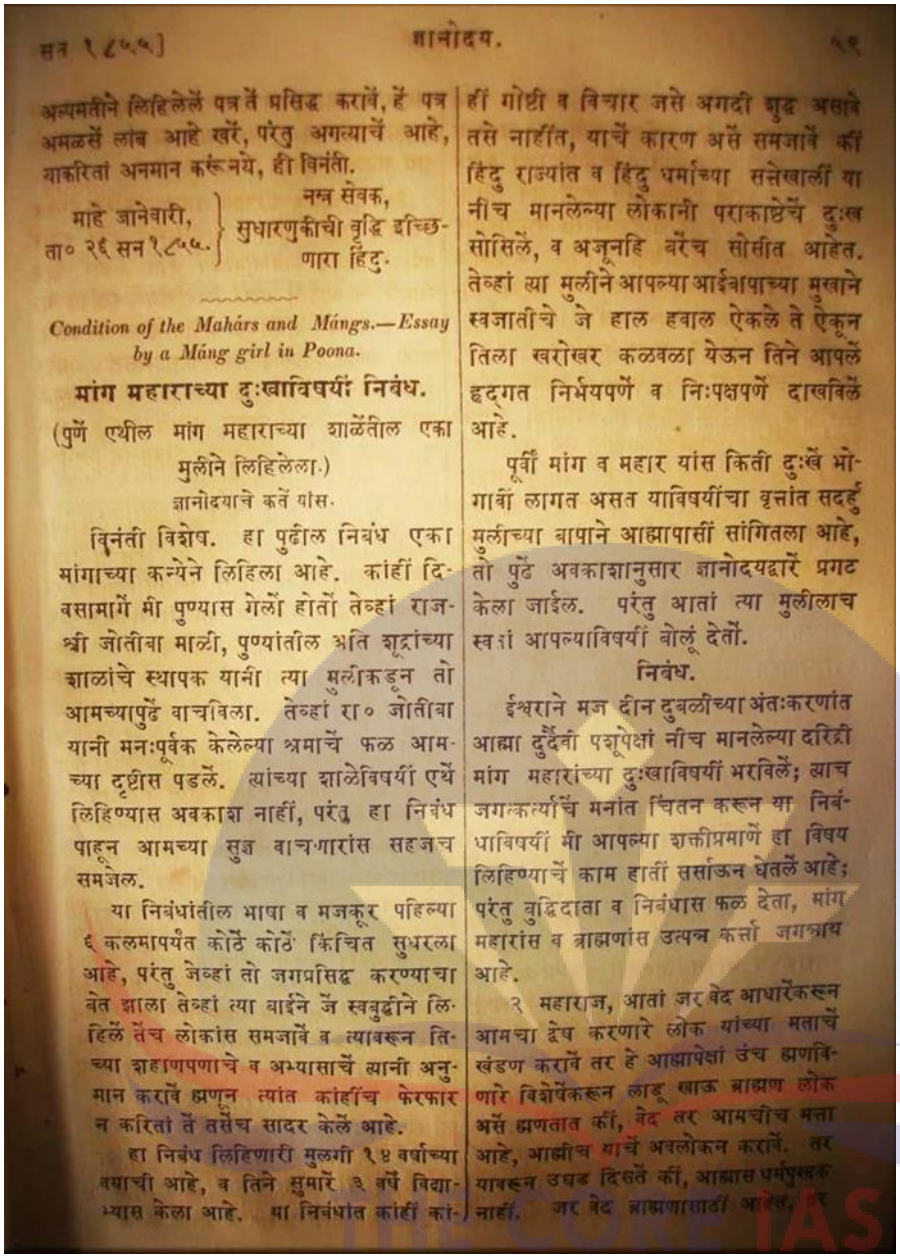

सन १८५५] ज्ञानोदय. २९

अन्यमतीने लिहिलेलें पत्र तें प्रसिद्ध करावें, हें पत्र अमळसें लांब आहे खरें, परंतु अगत्याचें आहे, याकरितां अनमान करूं नये, ही विनंती.

माहे जानेवारी, ता० २६ सन १८५५. } नम्र सेवक, सुधारणुकीची वृद्धि इच्छिणारा हिंदु.

Condition of the Mahárs and Mángs.—Essay by a Máng girl in Poona.

मांग महाराच्या दुःखाविषयीं निबंध.

(पुणें एथील मांग महाराच्या शाळेंतील एका मुलीने लिहिलेला.)

ज्ञानोदयाचे कर्ते यांस.

विनंती विशेष. हा पुढील निबंध एका मांगाच्या कन्येने लिहिला आहे. कांहीं दिवसामागें मी पुण्यास गेलों होतों तेव्हां राजश्री जोतीबा माळी, पुण्यांतील अति शूद्रांच्या शाळांचे स्थापक यांनी त्या मुलीकडून तो आमच्यापुढें वाचविला. तेव्हां रा० जोतीबा यानी मनःपूर्वक केलेल्या श्रमाचें फळ आमच्या दृष्टीस पडलें. त्यांच्या शाळेविषयीं एथें लिहिण्यास अवकाश नाहीं, परंतु हा निबंध पाहून आमच्या सुज्ञ वाचणारांस सहजच समजेल.

या निबंधांतील भाषा व मजकूर पहिल्या ६ कलमापर्यंत कोठें कोठें किंचित सुधरला आहे, परंतु जेव्हां तो जगप्रसिद्ध करण्याचा बेत झाला तेव्हां त्या बाईने जें स्वबुद्धीने लिहिलें तेंच लोकांस समजावें व त्यावरून तिच्या शहाणपणाचे व अभ्यासाचें यानी अनुमान करावें ह्मणून त्यांत कांहींच फेरफार न करितां तें तसेंच सादर केलें आहे.

हा निबंध लिहिणारी मुलगी १४ वर्षाच्या वयाची आहे, व तिने सुमारें ३ वर्षे विद्याभ्यास केला आहे. या निबंधांत कांही कांहीं गोष्टी व विचार जसे अगदी शुद्ध असावे तसे नाहींत, याचें कारण असें समजावें कीं हिंदु राज्यांत व हिंदु धर्माच्या सत्तेखालीं या नीच मानलेल्या लोकानीं पराकाष्ठेचें दुःख सोसिलें, व अजूनहि बरेंच सोसीत आहेत. तेव्हां त्या मुलीने आपल्या आईबापाच्या मुखाने स्वजातीचे जे हाल हवाल ऐकले ते ऐकून तिला खरोखर कळवळा येऊन तिने आपलें हृदगत निर्भयपणें व निःपक्षपणें दाखविलें आहे.

पूर्वी मांग व महार यांस किती दुःखें भोगावीं लागत असत याविषयींचा वृत्तांत सदर्हु मुलीच्या बापाने आह्मापासीं सांगितला आहे, तो पुढें अवकाशानुसार ज्ञानोदयद्वारें प्रगट केला जाईल. परंतु आतां त्या मुलीलाच स्वतां आपल्याविषयीं बोलूं देतों.

निबंध.

ईश्वराने मज दीन दुबळीच्या अंतःकरणांत आह्मा दुर्दैवी पशूपेक्षां नीच मानलेल्या दरिद्री मांग महारांच्या दुःखाविषयीं भरविलें; त्याच जगत्कर्त्याचें मनांत चिंतन करून या निबंधाविषयीं मी आपल्या शक्तीप्रमाणें हा विषय लिहिण्याचें काम हातीं घेतलें आहे; परंतु बुद्धिदाता व निबंधास फळ देता, मांग महारांस व ब्राह्मणांस उत्पन्न कर्ता जगन्नाथ आहे.

२ महाराज, आतां जर वेद आधारेंकरून आमचा द्वेष करणारे लोक यांच्या मतांचें खंडण करावें तर हे आह्मापेक्षां उंच ह्मणविणारे विशेषेंकरून लाडू खाऊ ब्राह्मण लोक असें ह्मणतात कीं, वेद तर आमचींच मतां आहे, आह्मीच यांचें अवलोकन करावें. तर यावरून उघड दिसतें कीं, आह्मास धर्मपुस्तक नाहीं. जर वेद ब्राह्मणासाठीं आहेत, तर

'महार और मांग समुदाय की पीड़ाएँ' के मुद्दे पर उनका वो चर्चित निबंध 1855 में छपा था. वह केवल तीन साल तक स्कूल में रही थीं. चौदह वर्ष की उम्र में लिखे इस निबंध से उनका नाम इतिहास में अमर हो गया. यह न केवल एक दलित महिला द्वारा लिखी गई पहली पुस्तक के रूप में महत्वपूर्ण है, बल्कि इसकी सामग्री आज भी विचारोत्तेज़क है.

मुक्ता के समय में अछूत मानी जाने वाली जातियों की सामाजिक स्थिति के बारे में उनके निबंध के हर एक शब्द से पता चलता है.

इस निबंध में वह भगवान को संबोधित करते हुए 'महारों और मांगों और पीड़ाओं' के बारे में बात करती हैं. दरअसल वह ईश्वर से शिकायत करती हैं कि इन समुदायों को धार्मिक व्यवस्था से बाहर क्यों माना जाता है.

धार्मिक व्यवस्था की बागडोर संभालने वाले ब्राह्मण समुदाय को वह पाखंडी मानते हुए कहती हैं, “ब्राह्मण कहते हैं कि वेद हमारे हैं और हमें उनका पालन करना चाहिए. तो इससे स्पष्ट है कि हमारे पास कोई धार्मिक पुस्तक नहीं है."

"यदि वेद ब्राह्मणों के लिए हैं तो वेदों के अनुसार आचरण करना ब्राह्मणों का धर्म है. यदि हम धार्मिक पुस्तकों को देखने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, तो यह स्पष्ट है कि हम धर्महीन हैं, है ना?”

इसके अलावा वह ईश्वर से अपने धर्म के बारे में भी सवाल पूछती हैं.

वह लेख में लिखती हैं, “हे भगवान, हमें बताएं कि आप किस धर्म के हैं, आपने कौन सा धर्म चुना है, ताकि हम सभी इसे समान रूप से अनुभव करें. लेकिन जिस धर्म का अनुभव केवल एक समुदाय ही करे तो इसे और इस जैसे अन्य धर्म को पृथ्वी से नष्ट हो जाना चाहिए. हमारे मन में ऐसे धर्म पर गर्व करने का विचार भी न आने पाए.”

जन्म के आधार पर विशेष सामाजिक दर्जा पाने वालों की आलोचना करते हुए मुक्ता ने अपने निबंध में लिखा है कि धर्म का काम मानवता और समानता को कायम रखने के लिए होना चाहिए.

पेशवा युग के समय की सामाजिक स्थिति को बताते समय मुक्ता की कलम और मुखर हो जाती है.
पेशवा काल के अन्याय और ब्राह्मणों द्वारा अछूतों के प्रति किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार और जानवरों से हीन व्यवहार पर रोशनी डालते हुए मुक्ता ने लिखा है, 'ब्राह्मणों ने हम इंसानों को गाय-भैंस से भी नीचे माना है. सुनो, बाजीराव के राज में हमारे साथ गधों जैसा सलूक होता था. वे लोग ये तो कहते थे कि लंगड़े गधे को मत मारो, लेकिन मांगों या फिर महारों को मत मारो, ऐसा कहने वाला कोई नहीं था.'उस दौर में शिक्षा को ब्राह्मणों का विशेषाधिकार माना जाता था. ऐसे में निचले पायदान पर समझी जाने वाली जातियां किस प्रकार ज्ञान सीखने से वंचित रह गये, यह भाव मुक्ता की रचनाओं में व्यक्त होता है.

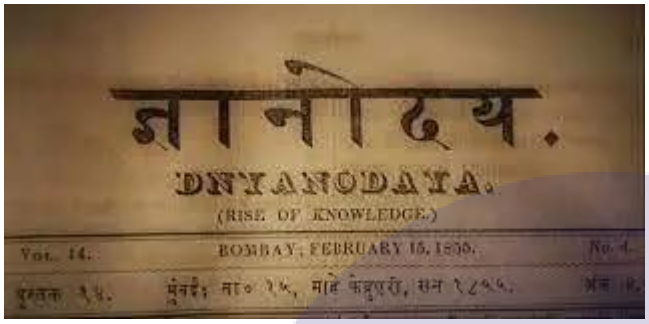
ज्ञानोदय.
DNYANODAYA.
(RISE OF KNOWLEDGE.)
Vol. 14. BOMBAY, FEBRUARY 15, 1850. No. 4.

वह लिखती हैं, "यदि अछूतों का राजा के द्वार से गुजरना वर्जित है तो विद्या सीखने की स्वतंत्रता कहाँ से मिलेगी? अगर कोई अछूत पढ़ पाता और बाजीराव को इसके बारे में पता चलता, तो वह कहता कि यह एक महार और मांग है और यह पढ़ रहा है? इसे काम कौन देगा और यह कहकर उसे वह दंड देता."
मुक्ता अपने निबंध में सवाल उठाती हैं कि पढ़ाई से प्रतिबंधित होने पर, अछूत होने का तिरस्कार झेलने पर और रोजगार से वंचित होने वाले दलितों की स्थिति कैसे सुधरेगी. अफ़सोस की बात है कि देश के कई हिस्सों समाज की यह हक़ीक़त आज भी पूरी तरह नहीं बदली है.
मुक्ता ने अपने निबंध में लिखा है कि दलित समाज की महिलाओं को ग़रीबी के साथ जातिगत असमानता और लैंगिक असमानता की दोहरी-तिहरी मार झेलनी पड़ती है.
उन्होंने लिखा है, "जिस समय हमारी महिलाएँ बच्चे को जन्म देती हैं, उनके घरों में छत तक नहीं होती, तो गर्मी, बारिश और हवा की के कारण वे कितनी दुखी होती होंगी. महामारी के समय उन पर क्या बीतती होगी, इस पर अपने अनुभव से विचार करें. यदि किसी दिन उन्हें कोई रोग हो जाए तो वह दवा और डॉक्टर के लिए पैसे कहां से लाएगी? आपमें से कौन सा संभावित चिकित्सक है जो मुफ़्त दवा देगा."
पेशवाओं के दौर में होने वाले जातीय उत्पीड़न से लेकर वह ब्रिटिश काल में हुए बदलाव तक को रेखांकित करती हैं. मुक्ता साल्वे ने अपने निबंध में लिखा है कि अंग्रेजों के कारण समाज में जाति व्यवस्था का दंश कम हो गया था.
वह अपने निबंध में समाज सुधारक ब्राह्मणों के कामों की प्रशंसा भी करती हैं. उन्होंने लिखा है, "मुझे यह लिखते हुए बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि अब एक चमत्कारी बात हुई है कि निष्पक्ष और दयालु अंग्रेज सरकार शासन करने आ गयी है. जो ब्राह्मण हमें कष्ट दे रहे थे, अब मेरे प्यारे वही देशवासी, हमें कष्ट से बाहर निकालने के लिए दिन-रात मेहनत कर रहे हैं. लेकिन सभी ब्राह्मण ऐसे नहीं हैं. जिनके विचार शैतानों की तरह हैं वे हमसे पहले की तरह ही नफ़रत करते हैं."
मुक्ता अपने लेख में दलितों से शिक्षित होने की अपील भी करती हैं, वह लिखती हैं कि 'अज्ञानता दूर करो, पुरानी मान्यताओं से चिपके मत रहो और अन्याय मत सहो.'
मुक्ता साल्वे का ये लेखन बार-बार पढ़ने लायक है.

किसी को आश्चर्य हो सकता है कि महज तीन साल की शिक्षा प्राप्त 14 साल की लड़की इतनी स्पष्टता और वाकपटुता से कैसे लिख सकती है. उनके लिखे में मार्मिकता के साथ विवरण का पुट भी शामिल है. इसका जितना

श्रेय फुले दंपति की शिक्षा को दिया जाता है उतना ही मुक्ता की चतुराई और प्रतिभा को भी. फुले दंपति ने उन्हें ना केवल शिा दी बल्कि उनमें सत्य की खोज करने की प्रवृति भी विकसित की.

जब निबंध सार्वजनिक रूप से पढ़ा गया

फुले दंपति ने मुक्ता को आत्म-जागरूकता और स्थिति के प्रति सजगता सिखाई और धार्मिक व्यवस्था पर सवाल उठाना भी सिखाया. यह वास्तविक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मानी जा सकती है.

मुक्ता का यह निबंध 1855 में 'ज्ञानोदय' में दो भागों में प्रकाशित हुआ और कई पाठकों तक पहुँचा. पहला भाग 15 फरवरी (पहला भाग) और दूसरा भाग 1 मार्च (दूसरा भाग) को प्रकाशित हुआ. बाद में इस निबंध के जवाब में दो पत्र भी छपे.

तब ज्ञानोदय क्रिश्चियन मिशनरी की ओर से सप्ताहिक पत्र था. उसी साल यह निबंध ब्रिटिश सरकार की ओर से बॉम्बे स्टेट एजुकेशनल रिपोर्ट में प्रकाशित किया गया था.

मुक्ता को इस निबंध को भारी भीड़ के सामने पढ़ने का मौका भी मिला.

ज्योतिबा का सम्मान समारोह पूना कॉलेज के प्राचार्य, सरकारी जेलखाने के प्रमुख और फुले के शैक्षिक कार्यों के शुभचिंतक मेजर कैंडी की अध्यक्षता में विश्रामबाग वाडा में आयोजित किया गया था.

वहां मुक्ता ने करीब तीन हज़ार लोगों की मौजूदगी में अपना निबंध पढ़ा. यह सुनकर मेजर कैंडी बहुत प्रभावित हुए. उन्होंने उसकी तारीफ़ की और मुक्ता को चॉकलेट भेंट की.

तब मुक्ता ने कहा, "सर, हमें चॉकलेट नहीं चाहिए, हमें एक लाइब्रेरी चाहिए."

उस समय एक दलित लड़की के लिए किताबों और लाइब्रेरी की मांग करना कितना असाधारण और क्रांतिकारी रहा होगा, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं. मुक्ता साल्वे ने निबंध में जिन मुद्दों को उठाया वह सामाजिक जागरुकता के लिहाज से बेहद अहम माने गए.

बहुजनों की जागरुकता के लिए काम करने वाले महात्मा फुले, बाबा पद्मजी और रेवरेंड मरे मिशेल ने मुक्ता साल्वे के निबंध का जिक्र कई जगहों पर किया. वहीं एनवी जोशी ने 1868 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'पुणे वर्णन' में मुक्ता के निबंध का एक भाग छापा था. मूल रूप से मराठी में लिखे इस निबंध का अंग्रेजी अनुवाद सूसी थारू और के. के. ललिता ने किया और अनुवाद 1991 में प्रकाशित 'वुमन राइटिंग इन इंडिया: 600 बीसी टू प्रेजेंट' में भी प्रकाशित हुआ है.

THE CORE IAS

आज भी मुक्ता साल्वे का मूल निबंध अंग्रेजी और हिंदी अनुवाद के साथ इंटरनेट पर उपलब्ध है.

'मांग और महारों की पीड़ा' निबंध लिखने वाली चौदह वर्षीय मुक्ता साल्वे की पहचान भले पहली दलित महिला लेखिका की हो लेकिन उन्होंने इस निबंध के बाद आगे क्या लिखा, या फिर उनका जीवन किस तरह का रहा, इसके बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है.

ऐसा माना जाता है कि उन पर मराठी इतिहासकारों की नज़र भी नहीं गई होगी क्योंकि उस दौर के अधिकांश इतिहासकार उच्च जातियों के थे. दलित साहित्य को लेकर जानकारी एकत्रित करने का सिलसिला 1950 के दौर में शुरू होता है, यानी मुक्ता साल्वे के निबंध के छपने के क़रीब सौ साल बाद. एसजी माली और हरि नाराके जैसे विद्धानों का मानना है कि मुक्ता साल्वे के काम को इतिहास में शामिल नहीं किया गया होगा क्योंकि महिलाओं या फिर दलितों की कामों की उपेक्षा व्यवस्थित तौर पर हुई है.

यह दावा भी किया जाता है कि अंग्रेजों की वजह से मुक्ता साल्वे का पहला और एकमात्र लेखन बचा हुआ है. इस निबंध को आज भी पढ़ना चुनौतीपूर्ण और प्रेरक है. यही वजह है कि मुक्ता साल्वे के बारे में बहुत जानकारी नहीं होने के बावजूद उनके पहली दलित महिला लेखिका होने पर कोई विवाद नहीं है.

समकालीन हिन्दी आलोचना और कबीर

कबीर के व्यक्तित्व, विचारधारा और उनकी संघर्ष-चेतना से भक्ति आंदोलन का जो आधार और ढांचा निर्मित हुआ, भक्ति आन्दोलन की परवर्ती सगुण धारा उससे टकराती हुई आगे बढ़ी । निर्गुण-सगुण के बीच का वैचारिक-सांस्कृतिक संघर्ष इसका प्रमाण है । इसी संघर्ष की प्रक्रिया में कबीर की प्रेरणा से निर्मित प्रतिरोधी शक्तियों के धीरे-धीरे कमजोर पड़ने से कबीर के आत्मसातीकरण यानि वैष्णवीकरण की प्रक्रिया घटित हुई होगी । कबीर की प्रतिरोध चेतना को लेकर आलोचकों में भले ही कोई गहरा मतभेद न उभरता हो, लेकिन इस प्रतिरोधी चेतना के सामाजिक एवं वैचारिक स्रोत को लेकर विद्वानों में गहरे मतभेद और मत-मतान्तर उभरे हैं । यही कारण है कि कबीर के काव्य की व्याख्या के संदर्भ में कबीर के वैचारिक स्रोतों और उनकी सामाजिक अस्मिता को खोजने और अपने-अपने मत प्रस्तुत करने के प्रयास हुए हैं। इस खोज प्रक्रिया में कबीर के वैचारिक एवं सामाजिक स्रोत को पहचानने और गढ़ने के क्रम में तमाम मिथक, किंवदंती और प्रक्षिप्त भी रच दिए गए हैं । इससे कबीर का ऐतिहासिक व्यक्तित्व उजागर होने के बजाय अधिकांशतः ढक गया है। बिना सुनिश्चित ऐतिहासिक आधार को लिये कोई भी व्यक्तित्व और उसकी कविता अपनी प्रमाणिकता खो देते हैं ।

वैष्णव आंदोलन और उसके नायकों ने कबीर के आत्मसातीकरण की जो प्रक्रिया शुरू की उसको शुरूआती हिन्दी आलोचना वैधता प्रदान करती नज़र आ रही है, लेकिन समकालीन हिन्दी आलोचना कबीर को नई खोजों और अन्वेषणों के आलोक में कबीर के अनावृत करते हुए कबीर के मूल ऐतिहासिक रूप को खोजने-पाने का प्रयत्न करती हुई नज़र आती है । ऐसी परिस्थिति में कबीर का वैष्णव आंदोलन और उसके उन्नायकों से बनने वाले सम्बन्ध को इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया को मद्देनज़र रख कर परिभाषित किया जाना समीचीन होगा ।

साहित्येतर माध्यमों (इतिहास आदि अनुशासन के भीतर) में हुए अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि सगुण काव्यधारा का सत्ता के साथ गहरा एवं वर्चस्वशाली सम्बन्ध था, जबकि निर्गुण काव्यधारा का सत्ता से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था । बजरंग बिहारी तिवारी ने तद्भव में छपे अपने दो लेखों 'भक्ति के वृहद् आख्यान में सत्पुरुषों की पीड़ा' तथा 'मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन में सत्ता विमर्श का एक पहलू' में यह प्रमाण दिया है ।

आज संत आंदोलन (कबीर आदि) के वैष्णव दार्शनिक पृष्ठभूमि से अलग एक स्वतंत्र दार्शनिक स्रोत की खोज को लेखक पुरुषोत्तम अग्रवाल और डॉ0 धर्मवीर के मध्य एक लम्बी बहस ने जन्म लिया है। पुरुषोत्तम अग्रवाल कबीर आदि को वैष्णव दार्शनिक परम्परा के भीतर रखने के पक्ष में हैं तो डॉ0 धर्मवीर संतधारा को वैष्णव दार्शनिक परम्परा से अलग मानते हुए उसके स्वतंत्र दार्शनिक परम्परा के भीतर रखकर अध्ययन करने के पक्ष में हैं ।

डॉ0 धर्मवीर ने अपनी पुस्तक 'कबीर के आलोचक' में कबीर की अस्मिता को लेकर आगे आये हैं। वह हजारी प्रसाद द्विवेदी की कबीर की अस्मिता 'हिन्दू अस्मिता' को नकारते हुए कबीर को 'दलित अस्मिता' का रचनाकार सिद्ध करते हैं। वहीं राजीव कुमार कुंवर कबीर को इन दोनों अस्मिताओं से अलग एक नई अस्मिता से जोड़ते हैं, जो व्यापक हो ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर को भक्त माना है, उनके समाज-सुधारक वाले रूप को 'फोकट का माल' कहा है । डॉ0 धर्मवीर ने इस बारीकी को गहराई से समझा और कबीर को भक्त न मानकर समाज-सुधारक माना है । इस बात की पुष्टि राजीव कुमार कुंवर ने अपने लेख 'अस्मिता के नये सवाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी' (तद्भव में छपे) में कर दी है। वह डॉ0 धर्मवीर को इस राजनैतिक पकड़ के लिए साक्ष्य बनाये हैं ।

कबीर की जाति को लेकर अंतः साक्ष्य एवं बर्हिसाक्ष्य के आधार पर विभिन्न जाति का सिद्ध करते आये हैं। वह ब्राह्मण, जुलाहा, कोरी, बनिया जैसी जाति के सिद्ध किये गये हैं । इसी क्रम में समकालीन आलोचक कमलेश वर्मा ने एक नई जाति का सिद्ध करते हुए एक नई बहस को जन्म दिये हैं । उन्होंने कबीर को अपनी पुस्तक 'जाति के प्रश्न पर कबीर

(2015)' में ओ. बी. सी. जाति का सिद्ध किया है। इस तरह कबीर पर गहरा मतभेद और राजनीति आज भी लगातार जारी है ।

इन बिन्दुओं पर प्रस्तुत शोध विषय में कार्य करने की सम्भावना दिखाई दे रही है । यह सम्भावना जितनी आसानी से दिखाई दे रही है उतनी ही कठिन, उलझाऊ तथा जटिल है, क्योंकि राजनैतिक तरह से इसको जटिल बना दिया गया है । साहित्य के अलावा साहित्येतर अनुशासनों में नये अध्ययनों ने इधर सोचने पर मजबूर किया है । कबीर का स्पष्ट स्वरूप प्रतिबिंबित हो रहा है, वहीं सगुण काव्यधारा का भी । इससे कबीर की इतिहास-सम्मत व्याख्या की मांग उठने लगी है जिससे लोकतांत्रिक सम्भावनाओं की किरण दिख रही है । इस प्रकार उनके प्रति न्याय हो सकेगा तथा उनके द्वारा की गयी रचनाशीलता की नई व्याख्या हो सकेगी। उसका सकारात्मक मूल्यांकन हो सकेगा। उनके मौलिक योगदान की पहचान की जा सकेगी। अतः प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक, गवेषणात्मक, समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक पद्धति अपनाई जाएगी ।

कुल मिलाकर कबीर पर आज तक जितने भी आलोचक अपनी आलोचना से दृष्टिपात किए हैं वह आज भी सबको स्वीकार्य नहीं है । सभी लोग अपने-अपने अनुसार कबीर को व्याख्यायित करने का प्रयास किए हैं लेकिन उन्हीं में से कबीर के प्रति कुछ ऐसे भी शोध हुए हैं जो अन्य शोधों की अपेक्षा अधिक सटीक, वास्तविक व ऐतिहासिक हैं । वह कबीर की विरासत की बात करते हैं । उनके वास्तविक और ऐतिहासिक स्वरूप पर बड़ी मजबूती के साथ लिख रहे हैं । कबीर को समझने के लिए हमे आज उनको इसी रूप को केंद्र में रखना होगा । वह वैष्णव दार्शनिक पृष्ठभूमि के थे ही नहीं, उनकी तो अपनी परंपरा है, विरासत है और अस्मिता है । उनकी अपनी मौलिकता है । इसलिए कबीर जैसे व्यक्तित्व और कृतित्व को घालमेल करने से सावधान रहना होगा । आज हमे कबीर को समझकर ऐसे आलोचकों को करारा जबाब देना होगा । उनके झांसे से बचना होगा । उनके वस्तिविक और ऐतिहासिक रूप को समझना व मानना होगा । वह भक्त नहीं थे, वैष्णव दर्शन से सम्बद्ध नहीं थे, सत्ता के साथ उनका दूर तक कोई नाता नहीं था, उनके गुरु रमानन्द नहीं थे और न ही वह हिंदुत्ववादी अस्मिता के साथ थे । जबकि राजीव कुमार कुँवर लिखते हैं कि कबीर की अस्मिता इन दोनों से अलग और बहुअस्तरीय है ।

परसाई जी को समर्पित प्रलेसं का राष्ट्रीय अधिवेशन

स्वर्गीय हरिशंकर परसाई के जन्म शताब्दी वर्ष में समर्पित इस राष्ट्रीय अधिवेशन में देश विदेश के लगभग 700 प्रतिनिधि हिस्सा लेंगे। जिसमें यूके, अमेरिका, क्यूबा, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश ,ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, क्यूबा सहित 15 देश के ख्याति प्राप्त लेखक, कवि, साहित्यकार, कलाकार, फिल्मकार ,नाटककार, पत्रकार शामिल हैं। सम्मेलन में विभिन्न सत्र रंगकर्मी हबीब तनवीर, रेखा जैन, लेखक रघुवीर सहाय, गीतकार शंकर शैलेंद्र, मायाराम सुरजन सहित अन्य दिवंगत विभूतियों के स्मृति में संचालित होंगे।

THE CORE IAS

स्वर्गीय हरिशंकर परसाई जी हिंदी के ही नहीं बल्कि देश के विभिन्न भाषाओं में अपने समय की नब्ज की सटीक पहचान करने, सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करने वाले लेखक रहे हैं। परसाई जी आजीवन प्रगतिशील लेखक संघ के साथ सक्रिय रूप से जुड़े रहे। उन्होंने प्रदेश देश के स्तर पर संगठन का नेतृत्व किया। दिशा प्रदान की। उनके नेतृत्व में पहली मर्तबा वर्ष 1980 में जबलपुर में राष्ट्रीय अधिवेशन संपन्न हुआ था। जिसके स्वागताध्यक्ष मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वर्गीय अर्जुन सिंह थे।

9 अप्रैल, प्रगतिशील लेखक संघ का स्थापना दिवस है। साल 1936 में इसी तारीख को लखनऊ के मशहूर 'रिफ़ाह-ए-'आम' क्लब में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला राष्ट्रीय अधिवेशन संपन्न हुआ था। जिसमें बाक़ायदा संगठन की स्थापना की गई। अधिवेशन 9 और 10 अप्रैल यानी दो दिन हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए महान कथाकार प्रेमचंद ने कहा था,"हमारी कसौटी पर वह साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो, जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

प्रेमचंद द्वारा दिए गए इस बीज वक्तव्य को एक लंबा अरसा बीत गया, लेकिन आज भी यह वक्तव्य, साहित्य को सही तरह से परखने का पैमाना है। उक्त कथन की कसौटी पर खरा उतरने वाला साहित्य ही हमारा सर्वश्रेष्ठ साहित्य है। यही अदब अवाम के दिल-ओ-दिमाग़ में हमेशा ज़िंदा रहेगा। उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करता रहेगा।

प्रगतिशील लेखक संघ का गठन यूं ही नहीं हो गया था, बल्कि इसके गठन के पीछे ऐतिहासिक कारण थे। साल 1930 से 1935 तक का दौर परिवर्तन का दौर था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद सारी दुनिया आर्थिक मंदी झेल रही थी। जर्मनी, इटली में क्रमशः हिटलर और मुसोलिनी की तानाशाही और फ्रांस की पूंजीपति सरकार के जनविरोधी कामों से पूरी दुनिया पर साम्राज्यवाद और फ़ासिज्म का ख़तरा मंडरा रहा था। इन सब संकटों के बावजूद उम्मीदें अभी ख़त्म नहीं हुई थीं। हर ढलता अंधेरा, पहले से भी उजला नया सवेरा लेकर आता है। जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी के लीडर दिमित्रोव के मुक़दमे, फ्रांस के मज़दूरों की बेदारी और ऑस्ट्रिया की नाकामयाब मज़दूर क्रांति से सारी दुनिया में क्रांति के एक नये युग का आग़ाज़ हुआ।

चुनांचे, साल 1933 में प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार हेनरी बारबूस की कोशिशों से फ्रांस में लेखक, कलाकारों का फ़ासिज्म के ख़िलाफ़ एक संयुक्त मोर्चा 'वर्ल्ड कान्फ्रेंस ऑफ राइटर्स फार दि डिफ़ेन्स ऑफ कल्चर' बना। जो आगे चलकर पॉपुलर फ्रंट (जन मोर्चा) के तौर पर तब्दील हो गया। इस संयुक्त मोर्चे में मैक्सिम गोर्की, रोम्या रोलां, आंद्रे मालरो, टॉमस मान, वाल्डो फ्रेंक, मारसल, आंद्रे जीद, आरांगो जैसे विश्वविख्यात साहित्यकार शामिल थे। लेखक, कलाकार और संस्कृतिकर्मियों के इस मोर्चे को अवाम की भी हिमायत हासिल थी।
दुनिया भर में चल रही इन सब इंक़लाबी वाक़िआत ने बड़े पैमाने पर हिंदोस्तानियों को भी मुतास्सिर किया। इन हिंदोस्तानियों में लंदन में आला तालीम ले रहे सज्जाद ज़हीर, डॉ. मुल्कराज आनंद, प्रमोद सेन गुप्त, डॉ. मुहम्मद दीन 'तासीर', हीरेन मुखर्जी और डॉ. ज्योति घोष जैसे तरक़्क़ीपसंद नौजवान भी थे। जिसका सबब लंदन में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना थी। प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्र का शुरुआती मसौदा वहीं तैयार हुआ।

सज्जाद ज़हीर और उनके चंद दोस्तों ने मिलकर तरक़्क़ीपसंद तहरीक को आलमी तहरीक का हिस्सा बनाया। स्पेन के फ़ासिस्ट विरोधी संघर्ष में सहभागिता के साथ-साथ सज्जाद ज़हीर ने साल 1935 में गीडे व मेलरौक्स द्वारा आयोजित विश्व बुद्धिजीवी सम्मेलन में भी हिस्सेदारी की। जिसके अध्यक्ष गोर्की थे। साल 1936 में सज्जाद ज़हीर, लंदन से भारत वापिस लौटे और आते ही उन्होंने सबसे पहले प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन की तैयारियां शुरू कर दीं।

THE CORE IAS

'प्रगतिशील लेखक संघ' के घोषणा-पत्र पर उन्होंने भारतीय भाषाओं के तमाम लेखकों से विचार-विनिमय किया। इस दौरान सज्जाद ज़हीर गुजराती भाषा के बड़े लेखक कन्हैयालाल मुंशी, फ़िराक़ गोरखपुरी, डॉ. सैयद ऐज़ाज़ हुसैन, शिवदान सिंह चौहान, पं. अमरनाथ झा, डॉ. ताराचंद, अहमद अली, मुंशी दयानारायन निगम, महमूदुज्ज़फ़र, सिब्ते हसन आदि से मिले।
'प्रगतिशील लेखक संघ' के घोषणा-पत्र पर सज्जाद ज़हीर ने उनसे राय-मशवरा किया। प्रगतिशील लेखक संघ की बुनियाद रखने और उसको परवान चढ़ाने में उर्दू अदब की एक और बड़ी अफ़साना निगार, ड्रामा निगार रशीद जहॉ का भी बड़ा योगदान है। हिंदी और उर्दू ज़बान के लेखकों, संस्कृतिकर्मियों को उन्होंने इस संगठन से जोड़ा। मौलवी अब्दुल हक़, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, सूफ़ी गुलाम मुस्तफ़ा जैसे कई नामी गिरामी लेखक यदि प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े, तो इसमें रशीद जहॉ का बड़ा योगदान है।

यही नहीं संगठन बनाने के सिलसिले में सज्जाद ज़हीर ने जो इब्तिदाई यात्राएं कीं, रशीद जहॉ भी उनके साथ गईं। लखनऊ, इलाहाबाद, पंजाब, लाहौर जो उस ज़माने में देश में अदब और आर्ट के बड़े मरकज़ थे, इन केन्द्रों से उन्होंने सभी प्रमुख लेखकों को संगठन से जोड़ा। संगठन की विचारधारा से उनका तआरुफ़ कराया। लखनऊ अधिवेशन को हर तरह से कामयाब बनाने में

रशीद जहॉ के योगदान को हम भुला नहीं सकते। अधिवेशन के वास्ते चंदा जुटाने के लिए उन्होंने न सिर्फ़ यूनीवर्सिटी और घर-घर जाकर टिकिट बेचे, बल्कि प्रेमचंद को सम्मेलन की सदारत के लिए भी राज़ी किया।

बहरहाल, प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन बेहद कामयाब रहा। जिसमें साहित्य से जुड़े कई विचारोत्तेजक सत्र हुए। अहमद अली, फ़िराक़ गोरखपुरी, मौलाना हसरत मोहानी आदि ने अपने आलेख पढ़े। अधिवेशन में उर्दू के बड़े साहित्यकार तो शामिल हुए ही, हिन्दी से भी प्रेमचंद के साथ जैनेन्द्र कुमार, शिवदान सिंह चौहान ने शिरकत की। अधिवेशन में लेखकों के अलावा समाजवादी लीडर जयप्रकाश नारायण, यूसुफ़ मेहर अली, इंदुलाल याज्ञनिक और कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने भी हिस्सा लिया। सज्जाद ज़हीर इस संगठन के पहले महासचिव चुने गये। वे साल 1936 से 1949 तक प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव रहे।

सज्जाद ज़हीर के व्यक्तित्व और दृष्टिसम्पन्न परिकल्पना के ही कारण प्रगतिशील आंदोलन, आगे चलकर भारत की आज़ादी का आंदोलन बन गया। देश के सारे प्रगतिशील-जनवादी लेखक, कलाकार और संस्कृतिकर्मी इस आंदोलन के इर्द-गिर्द जमा हो गये। सज्जाद ज़हीर के अलावा डॉ.मुल्कराज आनंद भी प्रगतिशील सांस्कृतिक आंदोलन के प्रमुख सिद्धांतकार थे। कलकत्ता में प्रगतिशील लेखक संघ की दूसरी अखिल भारतीय कॉन्फ्रेंस में मुल्कराज आनंद न सिर्फ़ कलकत्ता कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष मंडल में शामिल थे, बल्कि उन्होंने कॉन्फ्रेंस में तरक़्क़ीपसंद तहरीक की विस्तृत रूपरेखा और उसकी आगामी चुनौतियों पर शानदार वक्तव्य भी दिया था।

मुल्कराज आनंद की ज़िंदगी का काफ़ी अरसा लंदन में गुज़रा। साल 1939 में वे स्पेन गए। स्पेन में उन्होंने इंग्लैंड, फ्रांस, यूरोप एवं अमेरिका के तरक़्क़ीपसंद लेखक और बुद्धिजीवियों को फ़ासिज्म के ख़िलाफ़ लड़ते देखा। उन्होंने वहां देखा, "लेखकों की यह जद्दोजहद महज़ ज़बानी या क़लमी नहीं थी, बल्कि बहुत-से लेखक और बुद्धिजीवी वर्दियां पहनकर, जनतांत्रिक सेना की टुकड़ी 'इंटरनेशनल ब्रिगेड' में शामिल हो गए थे और प्रगतिशीलता व प्रतिक्रियावाद के सबसे निर्णायक और ख़तरनाक मोर्चे पर अपना ख़ून बहा कर और अपनी जानें देकर शांति और संस्कृति की दुश्मन ताक़तों को रोकने की कोशिश कर रहे थे।" (किताब-'रौशनाई तरक़्क़ीपसंद तहरीक की यादें', लेखक-सज्जाद ज़हीर, पेज-162, 163)

ज़ाहिर है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद और फ़ासिज़्म के ख़िलाफ़ लेखक जिस तरह से दूसरी जनतांत्रिक ताक़तों के साथ एकजुट होकर संघर्ष कर रहे थे, ठीक उसी तरह का संघर्ष और आंदोलन वे भारत में भी चाहते थे। भारत आते ही उन्होंने यह सब किया भी। "उन्होंने देश के बड़े-बड़े शहरों में विद्यार्थियों, लेखकों और बुद्धिजीवियों की सभाओं में स्पेन की लड़ाई के अंतरराष्ट्रीय महत्त्व पर ओजस्वी भाषण दिए और अपने सहधर्मी साहित्यकारों के समूह को ख़ास तौर पर दुनिया के तमाम मानवता प्रेमी बुद्धिजीवियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर युद्धोन्माद व प्रतिक्रियावाद के ख़िलाफ़ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।" (किताब-'रौशनाई तरक़्क़ीपसंद तहरीक की यादें', लेखक-सज्जाद ज़हीर, पेज-164)

साल 1942 से 1947 तक का दौर, प्रगतिशील आंदोलन का सुनहरा दौर था। यह आंदोलन आहिस्ता-आहिस्ता देश की सारी भाषाओं में फैलता चला गया। हर भाषा में एक नये सांस्कृतिक आंदोलन ने जन्म लिया। इन आंदोलनों का आख़िरी मक़सद,

मुल्क की आज़ादी था। उस दौर में आलम यह था कि प्रगतिशील लेखक संघ की लोकप्रियता देश के सभी राज्यों के लेखकों के बीच थी। प्रगतिशील सांस्कृतिक आंदोलन में लेखकों का शामिल होना, प्रगतिशीलता की पहचान मानी जाती थी।
आंदोलन ने जहां धार्मिक अंधविश्वास, जातिवाद व हर तरह की धर्मांधता का विरोध किया, तो वहीं साम्राज्यवाद और देसी सरमायेदारों से भी टक्कर ली। देश में एक समय ऐसा भी आया, जब उर्दू के सभी बड़े साहित्यकार प्रगतिशील लेखक संघ के परचम तले थे। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, अली सरदार जाफ़री, मजाज़, कृश्न चंदर, ख़्वाजा अहमद अब्बास, कैफ़ी आज़मी, मजरूह सुल्तानपुरी, इस्मत चुगताई, राजिंदर सिंह बेदी, प्रेम धवन, साहिर लुधियानवी, हसरत मोहानी, सिब्ते हसन, जोश मलीहाबादी, मुईन अहसन जज़्बी जैसे कई नाम तरक़्क़ीपसंद तहरीक के हमनवां, हमसफ़र थे।

इन लेखकों की रचनाओं ने मुल्क में आज़ादी के हक़ में एक समां बना दिया। यह वह दौर था, जब प्रगतिशील लेखकों को नये दौर का रहनुमा समझा जाता था। तरक़्क़ीपसंद तहरीक को पं. जवाहरलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, रबीन्द्रनाथ टैगोर, अल्लामा इक़बाल, ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान, प्रेमचंद, वल्लथोल जैसी सियासी और समाजी हस्तियों की सरपरस्ती हासिल थी। वे भी इन लेखकों के लेखन एवं काम से बेहद मुतास्सिर और पूरी तरह से मुतमईन थे।

बहरहाल, प्रगतिशील लेखक संघ को गठन हुए एक लंबा अरसा गुज़र गया, लेकिन देश-दुनिया के सामने चुनौतियां उसी तरह की हैं। फ़र्क सिर्फ़ यह भर है कि अब फ़ासीवाद और साम्राज्यवाद नये-नये रूप बदलकर आ रहा है। प्रतिक्रियावादी ताक़तें, पहले से भी ज़्यादा मुखर हैं। उन्हें खुलकर सत्ता की सरपरस्ती हासिल है। इन प्रतिक्रियावादी ताक़तों से टक्कर तभी ली जा सकती है, जब प्रगतिशील और जनवादी विचारों से जुड़े सभी लेखक, कलाकार और संस्कृतिकर्मी एकजुट हो, इनके ख़िलाफ़ संयुक्त मोर्चा बनाएं। अपने छोटे-छोटे स्वार्थ और हितों को भूलकर, सड़कों पर आएं। अवाम की नुमाइंदगी करें। तभी इनके ख़िलाफ़ जनमोर्चा क़ायम होगा।
(ज़ाहिद ख़ान वरिष्ठ पत्रकार हैं)

THE CORE IAS

साहित्य में नोबेल पुरस्कार- 2023

हाल ही में मानवीय भावनाओं को सरल शब्दों में व्यक्त करने वाले अनकही की आवाज़ जॉन फॉसे को "उनके अभिनव नाटकों और गद्य के लिये" साहित्य का नोबेल पुरस्कार- 2023 दिया गया है।

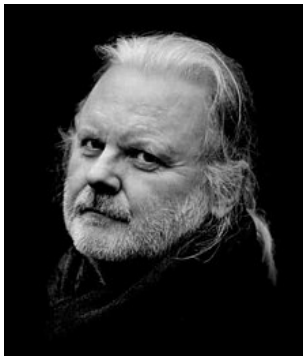

जॉन फॉसे:

जॉन फॉसे, नॉर्वे के लेखक और नाटककार हैं। फॉसे का कार्य उनकी नॉर्वेजियन नाइनोर्स्क पृष्ठभूमि की भाषा और प्रकृति में निहित है जो नॉर्वेजियन भाषा के दो आधिकारिक संस्करणों में आम बोलचाल में कम प्रयोग में लाया जाता है।

जॉन फॉसे को उनकी लेखन शैली के लिये जाना जाता है, जिसे प्रायः "फॉसे मिनिमलिज़्म" कहा जाता है।

उनकी शैली की विशेषता सरल, न्यूनतम और मार्मिक संवाद है, उनकी तुलना सैमुअल बेकेट और हेरोल्ड पिंटर जैसे साहित्यिक दिग्गजों से की जाती है, जिन्हें पहले ही साहित्य में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

उनके विषय बेतुकेपन, निरर्थकता और फिर भी मानव स्थिति की शक्ति का पता लगाते हैं, दैनिक के भ्रम एवं विद्रोह करते हैं तथा वास्तविक कनेक्शन बनाने में आने वाली कठिनाई का पता लगाते हैं।

फॉसे की उल्लेखनीय कृतियों में "ए न्यू नेम: सेप्टोलॉजी VI-VII," "आई एम द विंड," "मेलानचोली," "बोटहाउस," और "द डेड डॉग्स" शामिल हैं।

साहित्य के क्षेत्र में हाल के अन्य नोबेल पुरस्कार विजेता:

वर्ष 2022:

एनी एर्नाक्स को "उस साहस और नैदानिक तीक्ष्णता के लिये जिसके साथ वह व्यक्तिगत स्मृति की जड़ों, अलगाव तथा सामूहिक बाधाओं को उजागर करती है"।

वर्ष 2021:

अब्दुलरज़ाक गुरनाह को "उपनिवेशवाद के प्रभावों और संस्कृतियों तथा महाद्वीपों के खाड़ी देशों में शरणार्थियों की स्थिति के प्रति उनके दयालु एवं दृढ़ भावना के लिये।"

वर्ष 2020:

लुईस ग्लुक को " उनकी अचूक काव्यात्मक आवाज़ के लिये जो गंभीर सुंदरता के साथ व्यक्तिगत अस्तित्व को सार्वभौमिक बनाती है"।

THE CORE IAS

अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार 2023

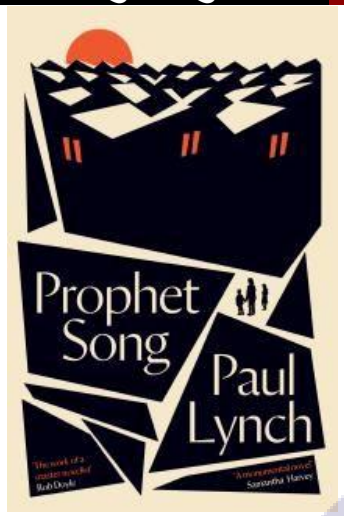

आयरलैंड के 45 वर्षीय पॉल लिंच द्वारा लिखित 'प्रोफेट सॉन्ग' ने प्रतिष्ठित 2023 बुकर पुरस्कार जीता। पॉल लिंच को बुकर पुरस्कार पहली बार मिला है। 2022 में गीतांजलि श्री को उनके उपन्यास "रेत समाधी" ('Tomb of Sand') के लिए इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया था । अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित होने वाली, किसी भी भारतीय भाषा में लिखी जाने वाली यह पहली पुस्तक थी और गीतांजलि इस सम्मान को पाने वाली हिंदी की प्रथम लेखिका हैं । यह पुस्तक मूल रूप से हिंदी में 'रेत समाधि' के नाम से प्रकाशित हुई थी और डेज़ी रॉकवेल ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया है ।

लंदन में रहने वाली भारतीय मूल की लेखिका चेतना मारू के पहले उपन्यास 'वेस्टर्न लेन' को प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार के लिए शॉर्टलिस्ट किया गया है। उपन्यास गोपी नाम की एक 11 वर्षीय ब्रिटिश गुजराती लड़की और उसके परिवार के साथ उसके गहरे संबंधों की मार्मिक कहानी बताता है। इसके मूल में, 'वेस्टर्न लेन' एक आप्रवासी पिता द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों की पड़ताल करता है जो अपने परिवार को एकल माता-पिता के रूप में बढ़ाने का प्रयास करता है। जो बात इस उपन्यास को अलग करती है, वह जटिल मानवीय भावनाओं के रूपक के रूप में स्क्वैश के खेल का अनूठा उपयोग है, जो बुकर जजों द्वारा मनाया जाने वाला विकल्प है।

लिंच ने बुकर वेबसाइट को बताया, 'मैं आधुनिक समय की अराजकता को देखने की कोशिश कर रहा था. पश्चिमी लोकतंत्रों में अशांति, सीरिया का संकट- पूरे राष्ट्र का तबाह हो जाना, शरणार्थी संकट का बढ़ता पैमाना और पश्चिम की उदासीनता. ... मैं पाठक को इस हद तक गहराई में ले जाना चाहता था कि किताब के आखिर तक, उन्हें न केवल इस बारे में मालूम चले, बल्कि वे खुद इस समस्या को महसूस कर सकें.

बुकर पुरस्कार की निर्णायक समिति की अध्यक्षता करने वाले कनाडाई लेखक एसआई एडुग्यान ने कहा कि यह किताब 'भावनात्मक कथा कहने, साहस और बहादुरी की जीत है' जिसमें लिंच ने 'भाषा के साथ ऐसे चमत्कार किए हैं जो आश्चर्यजनक हैं.'

THE CORE IAS

अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार क्या है ?

अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार या मैन बुकर , नोबेल पुरस्कार के बाद साहित्य के क्षेत्र में दिया जाने वाला विश्व का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार है | यह प्रतिवर्ष किसी ऐसी फिक्शन पुस्तक (कल्पनिक) को प्रदान किया जाता है जिसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया हो और जो यूनाइटेड किंगडम या आयरलैंड में प्रकाशित हुई हो | इसके तहत पुस्तक के लेखक एवं इसके अनुवादक को संयुक्त रूप से £50,000 की राशी दी जाती है |

अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार की शुरुआत 2005 में मैन बुकर इंटरनेशनल प्राइज के रूप में हुई थी | यह शुरू में एक द्विवार्षिक पुरस्कार था, और इसमें शर्त थी कि विजेता लेखक यूनाइटेड किंगडम का नागरिक होना चाहिए | किंतु 2015 में यह शर्त

हटा ली गई और यह दुनिया भर के लेखकों के लिए मुक्त हो गया | इस्माइल कादरी इस पुरस्कार के प्रथम विजेता थे । 2019 में "मैन ग्रुप" ने इसका प्रायोजन बंद कर दिया और तब से यह केवल अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार के नाम से जाना जाता है | यह पुरस्कार बुकर पुरस्कार से भिन्न है |

अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार के विजेताओं का चयन करने के लिए बुकर फाउंडेशन एक सहायक समिति का गठन करती है। इस सहायक समिति में लेखक , 2 प्रकाशक , 1 साहित्यिक एजेंट, 1 पुस्तक बिक्रेता ,1 पुस्तकालय प्रबंधक और 1 अध्यक्ष होते हैं। उसके बाद यह सहायक समिति एक पैनल को चुनती है जो कि अंतिम निर्णय देते हैं |

56-57वां ज्ञानपीठ पुरस्कार

56वां 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' नीलमणि फूकन

असम के रहने वाले 88 वर्षीय नीलमणि फूंकन असमिया भाषा के भारतीय कवि और कथाकार हैं. 10 सितंबर 1933 को असम के गोलघाट ज़िले के जन्मे नीलमणि फूंकन का असमिया साहित्य (Assamese Literature) में विशेष स्थान है और उन्होंने कविता की 13 पुस्तकें लिख चुके हैं. 'सूर्य हेनो नामि अहे एई नादियेदी', 'मानस-प्रतिमा' और 'फुली ठका', 'सूर्यमुखी फुल्तोर फाले' आदि उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियां हैं. फूकन को 'पद्मश्री', 'साहित्य अकादमी', 'असम वैली अवॉर्ड' व 'साहित्य अकादमी फैलोशिप' से सम्मानित किया जा चुका है.

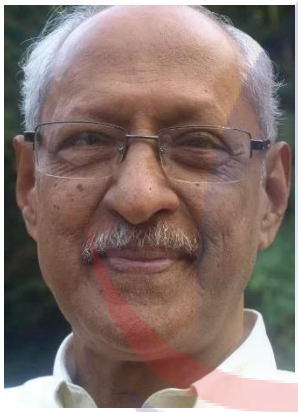

गोवा के लघु कथा लेखक, उपन्यासकार, आलोचक और कोंकणी में पटकथा लेखक दामोदर मौजो को भारत के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 57वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 2008 में रवींद्र केलेकर के बाद मौजो पुरस्कार प्राप्त करने वाले गोवा के दूसरे नागरिक हैं। मौज़ो की 25 पुस्तकें कोंकणी में और एक अंग्रेजी में प्रकाशित हुई हैं। उनकी कई पुस्तकों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी किया गया है। मौजो के प्रसिद्ध उपन्यास 'करमेलिन' को 1983 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। गोवा की राजधानी पणजी के पास राजभवन में आयोजित समारोह के दौरान प्रसिद्ध कवि गुलजार मौजूद थे।

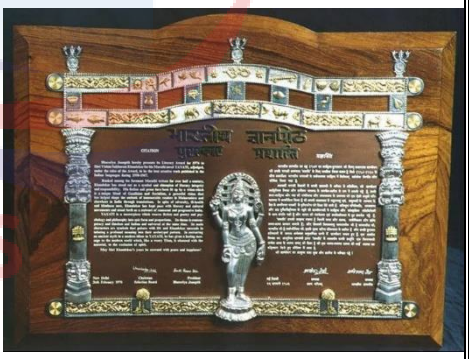

बता दें कि दामोदर मौउज़ो (Damodar Mauzo) दिवंगत रवींद्र केलकर के बाद ये शीर्ष साहित्यिक पुरस्कार जीतने वाले दूसरे कोंकणी लेखक बन गए हैं. इसके अलावा दामोदर मौउज़ो साहित्य अकादमी कार्यकारी बोर्ड और 'जनरल काउंसिल' के साथ ही 'वित्त समिति' के सदस्य के रूप में भी कार्य कर चुके हैं.

व्यास सम्मान पुरस्कार 2022

व्यास सम्मान भारतीय साहित्य में किये गये योगदान के लिए दिया जाने वाला ज्ञानपीठ पुरस्कार के बाद दूसरा सबसे बड़ा साहित्य सम्मान है। इस पुरस्कार को 1991 में के. के. बिड़ला फाउंडेशन ने प्रारंभ किया था। पहला व्यास सम्मान वर्ष 1991 में रामविलास शर्मा की कृति 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' के लिए दिया गया था।

व्यास सम्मान 2022

प्रसिद्ध हिंदी लेखक डॉ ज्ञान चतुर्वेदी के 2018 के व्यंग्य उपन्यास 'पागलखाना' को 32वें व्यास सम्मान 2022 के लिए चुना गया है। वार्षिक व्यास सम्मान पिछले 10 वर्षों के दौरान प्रकाशित एक भारतीय नागरिक द्वारा एक उत्कृष्ट हिंदी साहित्यिक कृति को दिया जाता है। इसमें 4 लाख रुपये की पुरस्कार राशि है।

व्यास सम्मान 2021

जाने-माने हिंदी लेखक, असगर वजाहत को प्रतिष्ठित व्यास सम्मान - 2021 से सम्मानित किया गया था। उन्हें उनके नाटक "महाबली" के लिए 31 वें व्यास सम्मान से सम्मानित किया गया। 1991 में शुरू किया गया व्यास सम्मान, केके बिड़ला फाउंडेशन द्वारा पिछले 10 वर्षों के दौरान प्रकाशित किसी भारतीय नागरिक द्वारा लिखित हिंदी में उत्कृष्ट साहित्यिक कार्य के लिए दिया जाता है। इसमें पुरस्कार स्वरूप चार लाख रुपये, उद्धरण व फलक प्रदान किया जाता है।

व्यास सम्मान की विशेषताएं और महत्वपूर्ण तथ्य:

- यह पुरस्कार प्रत्येक वर्ष पिछले 10 वर्षों के भीतर प्रकाशित हिन्दी की कोई भी साहित्यिक कृति को दिया जाता है।
- समिति की राय में यदि किसी वर्ष कोई भी कृति व्यास सम्मान के लिए अपेक्षित स्तर की न हो तो उस वर्ष पुरस्कार न देने का भी प्रावधान है।
- व्यास सम्मान के नियमों के अनुसार कृति साहित्य की किसी विधा में हो सकती है। सृजनात्मक साहित्य के अतिरिक्त अन्य विधाओं जैसे- आत्मकथा, ललित निबंध, समीक्षा व आलोचना, साहित्य और भाषा का इतिहास आदि पुस्तकों पर भी विचार किया जाता है।
- व्यास सम्मान की विशिष्टता यह है कि इसे साहित्यकार को केंद्र में न रखकर साहित्यिक कृति को दिया जाता है।
- सम्मान मरणोपरांत नहीं दिया जाता, लेकिन चयन समिति में विचार-विमर्श आरम्भ हो जाने के बाद यदि प्रस्तावित कृति के लेखक की मृत्यु होने पर कृति पर विचार किया जा सकता है।
- भविष्य में सम्मानित लेखक की किसी अन्य कृति पर विचार नहीं किया जाता है।

1991 से अब तक व्यास सम्मान विजेताओं की सूची:

साहित्यकार का नाम	कृति/उपन्यास/काव्य
2022	**डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्य उपन्यास"पागलखाना" के लिए**
2021	**असगर वजाहत (2021) नाटक "महाबली" के लिए**
2020	**प्रो. शरद पगारे उपन्यास "पाटलिपुत्र की सम्राज्ञी" के लिए**
2019	**नासिरा शर्मा उपन्यास कागज़ की नाव (पेपर बोट) के लिए**
2018	**लीलाधर जगूड़ी जितने लोग उतने प्रेम (काव्य संग्रह)**
2017	**ममता कालिया 'दुक्खम - सुक्खम (उपन्यास)**
2016	**सुरेंद्र वर्मा काटना शमी का वृक्ष: पद्मपखुरी की धार से (उपन्यास)**
2015	**डॉ. सुनीता जैन क्षमा (काव्य संग्रह)**
2014	**कमल किशोर गोयनका प्रेमचंद की कहानियों का काल-क्रमानुसार अध्ययन**
2013	**विश्वनाथ त्रिपाठी व्योमकेश दरवेश (संस्मरण)**
2012	**नरेन्द्र कोहली न भूतो न भविष्यति (उपन्यास)**
2011	**रामदरश मिश्र आम के पत्ते (काव्य संग्रह)**
2010	**विश्वनाथ प्रसाद तिवारी फिर भी कुछ रह जायेंगे**
2009	**अमरकांत इन्हीं हथियारों से**
2008	**मन्नू भंडारी एक कहानी यह भी (आत्मकथा)**
2007	**- -**
2006	**परमानंद श्रीवास्तव कविता का अर्थात**
2005	**चंद्रकांता कथा सतिसार (उपन्यास)**
2004	**मृदुला गर्ग कठगुलाब (उपन्यास)**

2003	चित्रा मुद्गल	आवां (उपन्यास)
2002	कैलाश वाजपेयी	पृथ्वी का कृष्णपक्ष (प्रबंध काव्य)
2001	रमेश चंद्र शाह	आलोचना का पक्ष
2000	गिरिराज किशोर	पहला गिरमिटिया (उपन्यास)
1999	श्रीलाल शुक्ल	बिसरामपुर का संत (उपन्यास)
1998	गोविन्द मिश्र	पाँच आँगनों वाला घर (उपन्यास)
1997	केदारनाथ सिंह	उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ
1996	प्रो. राम स्वरूप चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
1995	कुँवर नारायण	कोई दूसरा नहीं (काव्य संग्रह)
1994	धर्मवीर भारती	सपना अभी भी (काव्य संग्रह)
1993	गिरिजाकुमार माथुर	मैं वक़्त के हूँ सामने (काव्य संग्रह)
1992	डॉ. शिव प्रसाद सिंह	नीला चाँद (उपन्यास)
1991	रामविलास शर्मा	भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

वर्ष 2007 में किसी कृति को व्यास सम्मान से सम्मानित नहीं किया गया।

भारत भारती पुरस्कार

भारत भारती उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का सबसे बड़ा साहित्यिक पुरस्कार है। यह पुरस्कार उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ के माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए दिया जाता है। पुरस्कार में भारत-भारती सम्मान के रूप में स्मृति चिह्न, अंग वस्त्रम तथा पाँच लाख दो हजार रुपये की धनराशि प्रदान की जाती है।

भारत भारती सम्मान 2020:

अमृतसर के रहने वाले साहित्यकार पांडेय शशिभूषण शीतांशु को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का सर्वोच्च भारत भारती पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें कुल आठ लाख रुपये का पुरस्कार प्रदान किया गया। लखनऊ के डॉ. राम कठिन सिंह को लोहिया साहित्य सम्मान से अलंकृत किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें पांच लाख रुपये प्रदान किए गए।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के वर्ष 2020 के सम्मानों पर निर्णय लेने के लिए 1 अक्टूबर को कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त की अध्यक्षता में पुरस्कार समिति की बैठक हुई। इसमें सर्वसम्मति से सम्मानों के लिए विद्वानों के नामों का चयन किया गया तथा वर्ष 2020 में प्रकाशित पुस्तकों पर भी फैसले लिए गए। सर्वोच्च भारत भारती सम्मान पांडेय शशि भूषण शीतांशु, अमृतसर को दिया जाएगा।

THE CORE IAS

वर्ष 1982 से अबतक तक सभी भारत भारती पुरस्कार विजेताओं की सूची:

वर्ष	व्यक्ति का नाम
2020	पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'
2019	सूर्यबाला
2018	ऊषा किरण खान
2017	डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित
2015	डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
2014	काशी नाथ सिंह
2013	दूधनाथ सिंह
2012	गोपाल दास नीरज
2011	गोविन्द मिश्र
2010	कैलाश बाजपेई

2009	महीप सिंह
2008	अशोक वाजपेयी
2008	केदारनाथ सिंह
2007	रामदरश मिश्र
2006	परमानन्द श्रीवास्तव
2005	नामवर सिंह
2001	जानकीवल्लभ शास्त्री
1998	जगदीश गुप्त
1990	धर्मवीर भारती
1982	महादेवी वर्मा

मूर्तिदेवी पुरस्कार विजेता

मूर्तिदेवी पुरस्कार भारतीय ज्ञानपीठ समिति के द्वारा दिया जाने वाला प्रतिष्ठित साहित्य सम्मान है। इस सम्मान शुरुआत 1961 में की थी और सी. के नागराज राव प्राप्त करने वाले पहले कन्नड़ लेखक थे। इन्हें यह पुरस्कार उनके काव्य संग्रह कन्नड़' के लिए यह पुरस्कार दिया गया था।

भारतीय ज्ञानपीठ समिति के द्वारा इस पुरस्कार के तहत 04 लाख रुपये की पुरस्कार राशि, सरस्वती देवी की प्रतिमा व प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाता है।

भारतीय ज्ञानपीठ न्यास भारतीय साहित्य के विकास के लिए स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ भारतीय साहित्य के विकास के लिए श्री साहू शांति प्रसाद जैन तथा श्रीमती रमा जैन द्वारा स्थापित न्यास है। यह न्यास साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करता है तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा मूर्ति देवी पुरस्कार नामक दो पुरस्कार प्रदान करता है, जो साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कारों में से हैं।

बिहारी पुरस्कार

बिहारी पुरस्कार के. के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा दिया जाने वाला प्रतिष्ठित साहित्य सम्मान है। वर्ष 1991 में के. के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा रीति काल के प्रसिद्ध कवि बिहारी लाल के नाम पर बिहारी पुरस्कार की स्थापना की गई थी। साल 1991 में प्रसिद्ध कवि जयसिंह नीरज को उनके काव्य संकलन 'ढाणी का आदमी' के लिए प्रथम बिहारी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।साल 1991 से अब तक यशवंत व्यास, अलका सरावगी, हेमंत शेष, गिरिधर राठी, अर्जुन देव चारण, हरी राम मीणा, चन्द्र प्रकाश देवल, ओम थानवी, डॉ. भगवती लाल व्यास, सत्य नारायण, विजय वर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, मोहनकृष्ण बोहरा, ऐदन सिंह भाटी, मधु कांकरिया, डॉ माधव हरदा जैसे लेखकों को यह पुरस्कार मिल चुका है।

बिहारी पुरस्कार के लिए चयन कैसे होता है?

यह पुरस्कार भारत के किसी भी भाग में निवास करने वाले राजस्थान के मूल निवासी या फिर बीते 07 वर्ष से स्थायी रूप से राजस्थान में रहने वाले देश के किसी भी हिस्से के निवासी लेखक की उत्कृष्ट राजस्थानी या हिन्दी की कृति को प्रदान किया जाता है। कृति का प्रकाशन बीते 10 साल में हुआ हो।

बिहारी पुरस्कार में मिलने वाली राशि: बिहारी पुरस्कार में दो लाख 50 हजार रुपये, प्रशस्ति पत्र और पट्टिका के पुरस्कार के रूप में प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार 1991 में के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा स्थापित तीन साहित्यिक पुरस्कारों में से

एक है। प्रसिद्ध हिंदी कवि बिहारी के नाम पर, यह पुरस्कार हर साल राजस्थानी लेखक द्वारा पिछले 10 वर्षों में प्रकाशित हिंदी या राजस्थानी में उत्कृष्ट योगदान के लिए

32वां बिहारी पुरस्कार 2022: के.के. बिड़ला फांउडेशन द्वारा वर्ष 2022 का 32 वां बिहारी पुरस्कार डॉ माधव हरदा को उनकी साहित्यिक आलोचना पुस्तक 'पचरंग चोल पहाड़ सखी री' को दिया जाएगा। के.के. बिड़ला फाउंडेशन ने नई दिल्ली में यह घोषणा की। ये पुस्तक 2015 में प्रकाशित हुई|

राजस्थान साहित्य अकादमी - 2023-24

- अकादमी की ओर से दिये जाने वाले वार्षिक पुरस्कारों के तहत वर्ष 2023-24 का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार जयपुर निवासी रत्नकुमार सांभरिया को उनके उपन्यास 'सांप'के लिये दिया जाएगा।
- अकादमी के सम्मान परंपरा में सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य-मनीषी'से प्रगतिशील लेखक, चिंतक और विचारक, अकादमी के पूर्व अध्यक्ष वेद व्यास को सम्मानित किया जाएगा।
- अकादमी के जनार्दनराय नागर सम्मान से प्रख्यात आलोचक, विद्वान डॉ. रणजीत को समादृत किया जाएगा।
- अकादमी के वर्ष 2023-24 के पुरस्कारों की श्रृंखला में सुधींद्र पुरस्कार उदयपुर के चेतन औदिच्य को कविता संग्रह 'पानी'के लिये, रांगेय राघव पुरस्कार जालोर के पुरुषोत्तम पोमल के उपन्यास 'पाषाण पुत्री क्षत्राणी हीरा-दे'के लिये, देवराज उपाध्याय पुरस्कार बीकानेर के आलोचक हरीश बी. शर्मा की कृति 'प्रस्थान बिंदु'के लिये, कन्हैयालाल सहल पुरस्कार जयपुर के राघवेंद्र रावत को डायरी 'मारक लहरों के बीच'के लिये दिया जाएगा।
- वहीं नाटक विधा का देवीलाल सामर पुरस्कार अजमेर के रासबिहारी गौड़ को कृति 'गांधी ज़िंदा है' के लिये, बाल साहित्य का शंभूदयाल सक्सेना पुरस्कार कोटा मूल की चेन्नई निवासी रोचिका अरुण शर्मा को कथाकृति 'किताबों से बातें'के लिये तथा प्रथम कृति सुमनेश जोशी पुरस्कार उदयपुर के बिलाल पठान को 'अब पेड़ फल बेचेंगे'के लिये दिया जाएगा।
- अकादमी सचिव डॉ. बसंत सिंह सोलंकी ने बताया कि संचालिका-सरस्वती बैठक अनुमोदन के पश्चात् अकादमी अध्यक्ष डॉ. दुलाराम सहारण ने विद्यालयी-महाविद्यालयी पुरस्कार की भी घोषणा की है।
- विजेता विद्यार्थियों में चंद्रदेव शर्मा पुरस्कार कविता के लिये दामोदर शर्मा (इक्कीस कॉलेज गोपल्याण-लूनकरनसर), कहानी के लिये सुरेंद्र सिंह (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर), एकांकी के लिये अमनदीप निर्वाण (एसएसएस कॉलेज, तारानगर) तथा निबंध के लिये पवन कुमार गुसांई (इक्कीस कॉलेज, गोपल्याण) को दिया जाएगा।
- वहीं परदेशी पुरस्कार कविता के लिये शुंभागी शर्मा (राउमावि भवानीमंडी-झालावाड़), कहानी के लिये परी जोशी (द स्कोलर्स एरिना, उदयपुर), निबंध के लिये करुणा रंगा (इक्कीस एकेडमी फॉर एक्सीलेंस, गोपल्याण) तथा लघुकथा के लिये द्रोपती जाखड़ (इक्कसी एकेडमी फॉर एक्सीलेंस, गोपल्याण) को दिया जाएगा।
- वर्ष 2023-24 का सुधा गुप्ता पुरस्कार निबंध के लिये इक्कीस कॉलेज गोपल्याण की कौशल्या को दिया जाएगा।
- उल्लेखनीय है कि मीरा पुरस्कार के लिये पचहतर हज़ार रुपए, सुमनेश जोशी पुरस्कार के लिये इक्कीस हज़ार रुपए एवं अन्य पुरस्कारों के तहत इकत्तीस हज़ार रुपए अकादमी देती है। वहीं सर्वोच्च साहित्य मनीषी अढ़ाई लाख रुपए की एवं जनार्दन राय नागर सम्मान एक लाख रुपए राशि का होता है।
- विद्यालयी-महाविद्यालयी पुरस्कारों की राशि प्रत्येक के लिये पाँच हज़ार रुपए होती है।

उर्दू साहित्य अकादमी पुरस्कार पर विवाद

उर्दू में वर्ष 2023 के लिए दिए जाने वाले वार्षिक साहित्य अकादमी पुरस्कार पर विवाद खड़ा हो गया है. उर्दू के कई नामचीन लेखकों ने कथित तौर पर संबंधों के आधार पर निर्णायक मंडल की नियुक्ति और 'अयोग्य जूरी सदस्यों' द्वारा इस साल

नामांकित वरिष्ठ लेखकों की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं को नज़रअंदाज़ करने का आरोप लगाते हुए अकादमी के उर्दू एडवाइजरी बोर्ड के संयोजक चंद्रभान ख़याल को तत्काल प्रभाव से हटाने की मांग की है.

बता दें कि 20 दिसंबर को उर्दू में सादिक़ा नवाब सहर के उपन्यास 'राजदेव की अमराई' समेत 24 भारतीय भाषाओं के लेखकों को साहित्य अकादमी पुरस्कार देने का ऐलान किया गया था. 12 मार्च को होने वाले पुरस्कार समारोह में ये सम्मान दिया जाएगा.

अकादमी के हालिया फ़ैसले और 'अयोग्य जूरी सदस्यों' की नियुक्ति पर असंतोष और रोष का इज़हार करते हुए देशभर के 250 से ज़्यादा लोगों ने एक ऑनलाइन याचिका पर हस्ताक्षर करते हुए केंद्रीय संस्कृति मंत्रालय और साहित्य अकादमी के समक्ष अपना विरोध दर्ज करवाया है.

प्रतिष्ठित जेसीबी पुरस्कार विजेता ख़ालिद जावेद, 'आजकल' उर्दू के पूर्व संपादक ख़ुर्शीद अकरम, कथाकार और उर्दू जर्नल 'इस्बात' के संपादक अशअर नजमी, अबरार मुजीब (झारखंड), ज़हीर अनवर (कोलकाता), क़मर सिद्दिक़ी (मुंबई), नजमा रहमानी (डीयू में उर्दू विभाग की अध्यक्ष), निगार अज़ीम (दिल्ली), जमाल ओवैसी (बिहार), अकरम नक़्क़ाश (गुलबर्गा), असरार गांधी (उत्तर प्रदेश), शफ़क़ सुपुरी (श्रीनगर), असलम परवेज़ और इकरामुल हक़ (मुंबई) जैसे साहित्यकारों और अन्य साहित्य प्रेमियों ने अवॉर्ड देने की प्रक्रिया में अपारदर्शिता और धांधली का आरोप लगाते हुए इस सिलसिले में पूछे गए एक सवाल के जवाब का हवाला देते हुए उर्दू एडवाइजरी बोर्ड के संयोजक के अमर्यादित व्यवहार को भी रेखांकित किया है.

इस सिलसिले में जारी एक बयान में कहा गया, 'साहित्य अकादमी एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय संस्था है, जिसका उद्देश्य अन्य भारतीय भाषाओं और उर्दू में उच्च साहित्यिक मानदंडों को स्थापित करना है. लेकिन अकादमी ने इसका कोई ख़याल नहीं रखा.'

बयान में निर्णायक मंडल के तीन सदस्यों में से दो को सीधे-सीधे अयोग्य ठहराते हुए कहा गया है कि इनके नाम और काम से उर्दू आबादी किसी भी तरह से परिचित नहीं है.

बता दें कि निर्णायक मंडल में शामिल कृष्ण कुमार 'तूर' को एक प्रतिष्ठित शायर के तौर पर जाना जाता है, जबकि बाक़ी दो सदस्य- महताब आलम और तैयब अली उर्दू अदब की दुनिया में कोई खास पहचान नहीं रखते हैं.

हस्ताक्षकर्ताओं ने यह भी कहा है कि इस साल पुरस्कार के लिए नामांकित तमाम किताबें कथा साहित्य (फिक्शन) या गद्य से संबंधित थीं. उनका इशारा कविता या शायरी की किताबें शामिल न होने से है.

ज्ञात हो कि सूची में शामिल 11 किताबों में कथा साहित्य के संदर्भ में अल्लाह मियां का कारख़ाना, बुल्लाह की जाना मैं कौन, चमरासुर, एक पानी ख़ंजर में और हजुरआमा कुछ चर्चित किताबें समझी जाती हैं.

बयान में कहा गया है, 'इस बारे में जब उर्दू एडवाइजरी बोर्ड के संयोजक चंद्रभान ख़याल से पूछा गया तो उन्होंने 'अमर्यादित व्यवहार' का परिचय देते हुए जवाब दिया कि, 'उर्दू इस मुल्क की बड़ी ज़बान है. यहां अदबी हैसियत वाले सिर्फ़ दस-बीस लोग ही नहीं हज़ारों हैं. क्या ज़रूरी है कि जिन्हें आप जानते हैं वही अदबी हैसियत के मालिक हैं.'

इस पर सवाल उठाते हुए बयान में कहा गया है, 'जो शख़्स लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर किए गए सवालों का ढंग से जवाब नहीं दे सकता, वो उर्दू के प्रतिनिधित्व का हक़ कैसे अदा कर सकता है? एक लोकतांत्रिक संस्था में भाषा और साहित्य की नुमाइंदगी की ज़िम्मेदारी ऐसे शख़्स को कैसे दी जा सकती है जो अपनी ही संस्था के लोकतांत्रिक सिद्धांतों का सम्मान नहीं करता?'

संस्कृति मंत्रालय और साहित्य अकादमी से संयोजक को बेदख़ल करने की मांग करते हुए कहा गया है, 'किसी निष्पक्ष और ज़िम्मेदार शख़्स को इस पद पर तैनात किया जाए, ताकि भविष्य में निर्णायक मंडल में ऐसे लोगों का चयन निश्चित किया जा सके जो किताबों पर अपनी राय रखने में सक्षम हों और फ़ैसला लेने का सामर्थ्य रखते हों.'

THE CORE IAS

बयान में पहले ही आलोचकों और पाठकों की नज़र में प्रसिद्धि पा चुकी कई किताबों को नज़रअंदाज़ किए जाने की तरफ़ इशारा करते हुए कहा गया है, 'निर्णायक मंडल के योग्य और निष्पक्ष सदस्य जिस किताब को भी पुरस्कार के लिए चुनें, उनके पास ये साहित्यिक औचित्य होना चाहिए कि उन्होंने किन बुनियादों पर किसी ख़ास किताब का चयन किया है.'

बता दें कि पुरुस्कृत उपन्यास के अलावा ज़किया मशहदी, ख़ालिद जावेद, अतीक़ुल्लाह, शमोएल अहमद, ग़ज़नफ़र, शारिब रुदौलवी, मोहसिन ख़ान, जावेद सिद्दिक़ी, दिवंगत नसीर अहमद ख़ान और शब्बीर अहमद की किताबें सूची में थीं.

बहरहाल, इस सिलसिले में कार्रवाई की अपील करते हुए प्रकिया को पारदर्शी और लोकतांत्रिक बनाने के लिए संस्कृति मंत्रालय और साहित्य अकादमी से दख़ल देने की मांग की गई है.

उल्लेखनीय है कि क़ुर्रतुलऐन हैदर के बाद सादिक़ा दूसरी ऐसी उर्दू लेखिका हैं जिन्हें ये पुरस्कार दिया गया है. हैदर को साल 1967 में 'पतझड़ की आवाज़' के लिए यह सम्मान मिला था.

परवीन शाकिर: मैं अब हर मौसम से सिर ऊंचा करके मिल सकती हूं...

वो तेज़ रफ्तार थी, बहुत निडर थी/सारी ज़मीन जीत कर आसमान पर चली गई
और उसकी रहमतों की बारिश में सदा भीगती रहेगी /खुशक़िस्मत लड़की
रहमतों की बारिश में भीगने वाली ग़ज़ल /पूरी औरत की पहली ग़ज़ल
परवीन शाकिर.'

प्रसिद्ध उर्दू शायर बशीर बद्र की लिखी इन पंक्तियों में जिनकी बात हो रही है, वे उर्दू अदब का वो चमकता हुआ नाम है जिसने अपनी 42 साल की छोटी-सी ज़िंदगी में भी साहित्य में कुछ ऐसा जोड़ा जिससे वह और विविध, समावेशी और विशिष्ट बन सका. अप्रैल 1979 में प्रधानमंत्री भुट्टो की फांसी के बाद जिस तरह पाकिस्तान के पूर्ण इस्लामीकरण की अराजक प्रक्रिया शुरू हुई और सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर देश में अव्यवस्था और संघर्ष बना रहा, उसमें साहित्य ही वह एक अदद चीज़ थी, जिसने स्थितियों के प्रति अपना असंतोष और विद्रोह बनाए रखा. पाकिस्तान की उर्दू कविता में प्रतिरोध की एक सशक्त धारा रही है और जैसे-जैसे दमन और उत्पीड़न बढ़ता गया, प्रतिरोध की यह आवाज़ उतनी ही बुलंद होती गई.

साहित्य में यह वह दौर था जब एक तरफ समाजिकता से प्रतिबद्ध विचारधारा अपने चरम पर थी, तो वहीं लेखिकाओं की एक पूरी पीढ़ी इस युग को अपनी शायरी के भिन्न-भिन्न अंदाज़ से सींच रही थी. साहित्य का यह दौर पाकिस्तानी साहित्य और संस्कृति का वह उर्वर दौर कहा जा सकता है जहां ज़ेहरा निगाह, किश्वर नाहिद, फ़हमीदा रियाज़, परवीन शाकिर, सारा शगुफ्ता, शबनम शकील, अपने स्त्रीवादी लेखन से पूरे दक्षिण एशिया के सांस्कृतिक फ़लक को समृद्ध कर रही थीं. इनकी रचनाएं पाकिस्तानी पितृसत्तात्मक समाज के लिए महज़ अपने होने से ही एक सशस्त्र क्रांति ला रही थीं. ऐसे में, राजनीतिक मंतव्य से लिखी न जाकर भी परवीन शाकिर की नज़्में, एक राजनीतिक कारवाई लगती है. उनकी शायरी में व्यवस्था और सामाजिक बंधनों के प्रति विरोध एकदम ही मुख्तालिफ़ अंदाज़ में बयान होता है. यह उनकी काव्यात्मकता का वैशिष्ट्य है, जहां स्त्री के निजी-से-निजी, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभावों को भी अभिव्यक्ति का सौंदर्य प्राप्त होता है और इस सौंदर्य से ही साहस फूटता है.

उनकी कविताओं ने साहित्य में जिस स्त्री दृष्टि का समावेश किया है, वह निस्संदेह मील का पत्थर है. पश्चिमी नारीवादी अवधारणाओं की या उससे प्रभावित साहित्य की वैश्विक लोकप्रियता तो आम बात है, पर भारत और पाकिस्तान जैसे विकासशील-तीसरी देशों की कुंठित सामाजिकता और पितृवादी संस्कृति में जब स्त्रियां अपने मन की अनुभूतियों को दर्ज करने का काम करती हैं, तो वह अपने-आप में निज को राजनीतिक बनाने देने का काम करता है. परवीन शाकिर की शायरी भी अपनी कुछ चुनिंदा नज़्मों में ही, सामाजिक विरोधाभासों का, सभ्यतागत असमानताओं से मुखर विरोध जैसा कि किश्वर नाहिद या फ़हमीदा रियाज़ की कविताएं करती हैं, दर्ज कर देती हैं.

पर शाकिर मूलतः प्रेम और उसकी असफलता का स्त्री के मानस पर पड़ने वाले प्रभावों के, उसके अंतर्जगत का चितेरा होने की दृष्टि से अधिक कारगर और प्रसिद्ध हैं. उनकी ग़ज़लें रूमानी प्रेम की, उसकी असफलता से उत्पन्न मोहभंग को दर्ज करने की दृष्टि से सर्वाधिक विख्यात हुई हैं. इन रचनाओं में महादेवी वर्मा की तरह की रहस्यात्मकता तो नहीं, पर अंतर्तम से फूटने वाली वेदना, वही चिर-परिचित है जिसकी झलक हम महादेवी के काव्य में एक अलौकिक प्रिय के संदर्भ में पाते हैं.

परवीन शाकिर की पैदाइश एक मध्यमवर्गीय परिवार में कराची में हुई थी. उनके पिता शाकिर हुसैन शाकिब, दरभंगा (बिहार) से विभाजन के बाद कराची में आ बसे थे. बहुत ही छोटी उम्र से परवीन ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थीं. उनकी शुरुआती

शिक्षा कराची में ही हुई, जहां उन्होंने अंग्रज़ी साहित्य और भाषा विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल की. आगे चलकर उन्होंने पीएचडी और बैंकिंग प्रशासन में भी स्नातकोत्तर की उपाधि हासिल की.
आलोचक रख़्शंदा जलील के शब्दों में अगर कहा जाए तो 'शाकिर अपने मुआसिरों में संभवतः सबसे ज़्यादा तालीमयाफ़्ता शायरा थीं.' लंबे अरसे तक एक शिक्षक के रूप में काम करते हुए उन्होंने पाकिस्तान की सेंट्रल सिविल सर्विसेज़ (सीएसएस) की परीक्षा पास कर फ़ेडेरेल बोर्ड ऑफ रेवेन्यू में बतौर अधिकारी सेवाएं दीं.

उनकी सबसे पहली रचना, काव्य संग्रह- ख़ुशबू, साल 1976 में प्रकाशित हुई. पहली ही रचना से शाकिर ने अपने समकालीन कवियों से अलग, एक विशिष्ट ध्वनि स्थापित की और उर्दू कविताओं में, विशेषकर ग़ज़लों में निजी अनुभूतियों और एक स्त्री के स्वप्न और उसकी आकांक्षा को अभिव्यक्ति देने का एक नितांत नया आयाम खोल दिया. उन्होंने सामाजिक तहज़ीब, परंपरा, मान्यताओं के प्रति लिहाज़ की रवायत से ऊपर उठकर, एक साधारण स्त्री के मनोजगत में प्रवेश कर उसे प्रकाश में लाने का काम किया.
स्त्री प्रेम के केंद्र में नहीं, बल्कि आम ज़िंदगी में किस प्रकार उसके हाशिये पर रहती है, यह स्वीकारने का साहस हमें सबसे पहले-पहल शाकिर की कविताओं में दिखता है. वह प्रेम में परित्यक्त स्त्री की अंतर्वेदना पर, बिना किसी अतिरिक्त भावुकता के यह लिखती हैं:

'कैसे कह दूं कि मुझे छोड़ दिया है उसने
बात तो सच है मगर बात है रुसवाई की.'

यहां अपनी इस त्रासद स्थिति पर जिस रुसवाई की बात की गई है, वह समाज की रुसवाई या, उसकी लानतें नहीं है, बल्कि यह उस स्त्री का अपने आत्म के साथ चलने वाला संवाद है. जिस प्रेम की छांव में जीवन को देखने की सहज इच्छा स्त्री रखती है, उस स्वप्न के भंग होने की स्थिति में वह स्वयं से लज्जित है. यह लज्जा इस भाव से उपजी है कि किस प्रकार पुरुष के आश्वासन पर प्रेम की अपेक्षाओं का महल निर्मित किया गया था, जिसके खंडित होने की स्थिति में अंततः रुसवाई, या लज्जा उस भीतर की स्त्री को हुई है.
यह बेबस स्थिति प्रेम में जिस स्त्री की हुई है, वह अपनी इस स्थिति को स्वीकारने का साहस रखती है, जैसा कि रख़्शंदा जलील कहती भी हैं कि 'शायद ही कोई और औरत इतनी लाचारी और नाकामयाबी के मायनों को अपनी शायरी में इस कदर हसीन अंदाज में पिरो पाती.' पर यहीं पर वह स्त्री पुरुष के सामाजिक स्थान और महत्व की ग़ैर-बराबरी की भी पूरी पोल खोलते हुए कहती हैं:

'मैं सच कहूंगी , मगर फिर भी हार जाऊंगी
वो झूठ बोलेगा और लाजवाब कर देगा.'
यह समाज स्त्री-पुरुष के बीच सामाजिक अंतर को इस तरह सामान्यीकृत और संस्थात्मक बना देता है कि एक स्त्री के सच की कहीं सुनवाई नहीं है और वहीं दूसरी ओर एक पुरुष के झूठ को भी किसी के विरोध से नहीं गुज़रना पड़ता. स्त्री की दोयम सामाजिक स्थिति, दक्षिण एशियाई समाज के लिए इतनी सहज और मान्य बात लगती है, कि स्त्री के रूप में जन्म लेने मात्र से ही मानो उसे उम्रक़ैद मुक़र्रर हो जाती है.
अपनी एक नज़्म में शाकिर ने इस सामाजिक रूढ़ियों के बरअक्स स्त्री की कामनाओं और उसकी आकांक्षाओं को प्रतिध्वनि देते हुए लिखा है कि कैसे स्त्री अपने एकांत में बिना किसी बाह्य छद्म के सिर्फ स्त्री होती है:

'अपने सर्द कमरे में/मैं उदास बैठी हूं

नीम वा दरीचों में/नम हवाएं आती हैं
मेरे जिस्म को छूकर/आग-सी लगाती हैं
तेरा नाम ले-लेकर/मुझको गुदगुदाती हैं
काश मेरे पर होते/तेरे पास उड़ आती
तुझको छू के लौट आती/ मैं नहीं मगर कुछ भी
संगदिल रिवाजों के/ आहनी हिसारों में
उम्र कैद की मुल्ज़िम/सिर्फ एक लड़की हूं'

यह संगदिल रिवाज़ ही हैं जो सामाजिक प्रतिबंधों की शक्ल में स्त्री को उसकी हदों में, उसकी चहारदीवारी में घेरे रखने के लिए बाध्यताएं खड़ी करते हैं. शाकिर की शायरी में इसलिए इन रिवाज़ों से प्रतिरोध मुखर ही नहीं, बल्कि उस कथ्य के भीतर, उसके शब्दों में समाया हुआ है. उनकी नज़्में और ग़ज़लें पढ़ते हुए, पहले तो वह मर्मस्थल को-संवेदनाओं को छूती है, और फिर बाद में उनके व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ खुलते हैं.

एक भिन्न धरातल पर उनकी शायरी को लोकतांत्रिक संस्थाओं की वकालत में भी खड़े होते देखा जा सकता है. इस ढंग की उनकी कविताओं की अंतर्वस्तु में एक सुव्यवस्थित राजनीतिक प्रयोजन बग़ैर किसी दुराव-छिपाव के साफ झलकता है. नज़्मों में विशेषकर राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक समस्याओं के प्रति उनकी व्यंग्यात्मकता की धार देखते ही बनती है. यहां उनके भीतर का रूमानी शायर, एक अति-संवेदनशील स्त्री-मन, अपने आस-पास की जमीनी हक़ीक़तों के प्रति उदासीन नहीं बना रह पाता है और उनकी प्रतिबद्ध रचनाशीलता अपने उफ़ान पर दिखाई पड़ती है.

हमारे समाज में स्त्री की जो प्रचलित रूढ़ छवि है, शाकिर ने उसे भी, उसी शिद्दत के साथ चित्रित किया है, ताकि हमें अपने मुआशरे का सच पता चल सके. शाकिर की कई नज़्मों में हमें कुछ ऐसे चित्र दिखलायी पड़ते हैं जिनसे गुज़रते हुए एक संवेदनशील पाठक, स्त्री की सामाजिक नियति का सहज ही अंदाज़ा लगा सकता है.

जहां एक मुश्किल सवाल में वह टाट के परदों के पीछे से झांकती एक छोटी-सी लड़की के फूलों जैसे ताज़े चेहरे का जिक्र करती हैं, वहीं लेखिका की नजरें जब उसके हाथों पर जाती है, तब हैरानी मिश्रित दुख के साथ ही वह कह उठती हैं 'लेकिन उसके हाथ में/तरकारी काटते रहने की लकीरें थीं/और उन लकीरों में/बर्तन मांझने वाली राख जमा थी/उसके हाथ/उसके चेहरे से बीस साल बड़े थे', तो वहीं निकनेम कविता में वह हमारे समाज में स्त्री को एक बेजान गुड़िया के बरअक्स रखते हुए, उसकी उसी त्रासद नियति की ओर संकेत करती हैं, जो उस गुड़िया की होती है, जिससे बच्चे का मन जब भर जाता है और वो उसे उठाकर ताक़ पर रख देता है. शाकिर इस सामाजिक नियति पर व्यंग्य करते हुए लिखती हैं:

THE CORE IAS

'तुम मुझको गुड़िया कहते हो/ ठीक ही कहते हो
खेलने वाले हाथों को मैं गुड़िया ही लगती हूं
मांग भरो, सिंदूर लगाओ/ प्यार करो, आंखों में बसाओ
और फिर जब दिल भर जाए तो/दिल से उठा के ताक़ पे रख दो
तुम मुझको गुड़िया कहते हो/ ठीक ही कहते हो'

परवीन शाकिर की ग़ज़लें, उनकी शायरी, स्त्री को अभिव्यक्ति का ऐसा सशक्त मुहावरा देती है, जो परंपरा की अंधभक्ति करता, एक धर्मभीरु -पितृसत्तात्मक समाज उससे छीन लेना चाहता है. वह स्त्री को उसकी छीनी हुई भाषा लौटाती हैं. उसे अपने हिस्से की ज़मीन और आसमान मांगने का साहस मुहैया कराती है. वह उर्दू साहित्य की उन आवाज़ों में हैं, जिन्होंने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए आत्मकथात्मक शैली और स्त्रीलिंग का इस्तेमाल किया है.

क्योंकि इससे पहले पुरुषप्रधान काव्य परिवेश में प्रायः पुरुष दृष्टि ही अपने स्त्री 'प्रियतम' पर बात करती थी. शाकिर ने अपनी कविताओं में एक स्त्री को अपने पुरुष प्रेमी को संबोधित करते हुए दिखलाया है. उनके यहां स्त्री, अब महज़ एक निष्क्रिय माशूक या प्रेयसी नहीं है. उनकी कविताओं से झांकती स्त्री, एक नई स्त्री है, जो अपनी आकांक्षाओं और कामनाओं के लिए सतर्क है. यह वह अस्तित्वचेता मानवी है जिसे अपनी देह और मन दोनों ही की इच्छाओं के स्वीकार से कोई परहेज नहीं है.

अपनी नज़्म सिज़्दा में वह स्वीकार करती हैं कि 'जिस्म की चाह में/आतिश-ए-लम्स से जब रग-ए-जां चटख़ने लगे, और मन-ओ-तू के माबैन/इक बाल से बढ़के बारीक लम्हा भी आख़िर बिखरने लगे/उस समय/सिर्फ़ मेरे निगाहों का दुख देखकर/हर तलब की ज़बां काट देना.'

अपनी एक अन्य नज़्म हनीमून में वह, प्रेम के, स्पर्श के सुख की अनुभूति को एक स्त्री की दृष्टि से अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं,

'मेरे तन की प्यासी शाख़ के सारे पीले फूल गुलाबी होने लगे हैं/खुशबू के बोसों से बोझल मेरे पलकें/ ऐसे बंद हुई जाती हैं. जैसे सारी दुनियां एक गहरा नीला सय्याल है/जो पाताल से मुझको अपनी जानिब खींच रहा है. और मैं तन के पूरे सूख से/इस पाताल की पहनाई में/ धीरे-धीरे डूब रही हूं.'

स्त्री की समाज पोषित रूढ़ छवि जहां वह सिर्फ पुरुष की दृष्टि से परिभाषित-पूजित होती आई है, शाकिर की कविताएं उस छवि, उस रूढ़ मिथक को तोड़कर, उसे सामाजिक न्याय के लंबे संघर्ष में एक सक्रिय भागीदार बना देती है. वर्किंग वूमन शीर्षक अपनी एक नज़्म में वह इस नई स्त्री के किरदार को उकेरती हैं:

'मेरे सारे पत्तों की शादाबी
मेरी अपनी नेक कमाई है
मेरे एक शिगूफ़े पर भी
किसी हवा और किसी बारिश का बाल बराबर कर्ज़ नहीं है
मैं जब चाहूं खिल सकती हैं
मेरा सारा रूप, मिरी अपनी दरयाफ्त है
मैं अब हर मौसम से सर ऊंचा करके मिल सकती हूं.'

पर यह नया किरदार कहीं भी स्वयं को अहं ब्रह्मास्मि नहीं मानता, क्योंकि अपनी तमाम सफलताओं के बावजूद भी उसे जीवन में प्रेम की चाह और आवश्यकता है, क्योंकि उसके अंदर की ये बहुत पुरानी बेल 'कभी-कभी- जब तेज़ हवा हो, किसी बहुत मजबूत शजर के तन से लिपटना चाहती है.'

एक स्त्री का प्रेम किस प्रकार पुरुष को समृद्ध कर सकता है, शाकिर उसकी हिमायती हैं. अपनी महानता और शान में गर्वोन्नत पुरुष की दशा 'चीड़ के मग़रूर पेड़' की तरह होती है, 'जिनकी आंख/अपनी क़ामत के नशे में सिर्फ ऊपर देखती हैं' और जिनके लिए वह कहती हैं,

'अपनी गर्दन के तनाव को कभी तो कम करें/ और नीचे देखें/ वो घने बादल जो उनके पांव को छूकर गुज़र जाते हैं/जिनको चूम सकते हैं/वो पौदे/प्यार के इस वालिहाना लम्स से कैसे निखर आए.'

शाकिर की स्त्री प्रेम में जिस अपनत्व और ऊष्मा से वंचित है, वह सबसे अधिक मार्मिक वहां हो आती है, जहां वह अपने जीवनसाथी के प्रति संबोधित इन पंक्तियों में कहती हैं,

'धूप में बारिश होते देख के
हैरत करने वाले!
शायद तूने मेरी हंसी को

THE CORE IAS

छूकर
कभी नहीं देखा.'

महज पांच पंक्तियों में देखा जाए तो शाकिर, स्त्री के अंतरतम तक पहुंचने की क्षमता रखती हैं, जहां वह अपने साथी से स्वयं को समझने का भाव अभिव्यक्त करती है. स्त्री की हंसी में जिस वेदना को घुलता हुआ कवयित्री देख पाती है, उसे देखने की दृष्टि का सामाजिक अभाव उसके स्वयं के जीवनसाथी में भी पाया जाता है. यह कमोबेश उसी स्थिति के समान है जहां धूप में होने वाली बारिश को पर सब बस कौतूहल करते हैं, पर उससे आगे देखने की क्षमता उनमें नहीं होती है.

प्रेम की भाव-विह्वलता के गीत गाने वाली शाकिर हालांकि अपने गीतों के जरिये ही यह भी बतला देती हैं कि 'इश्क में दर्द-ए-दिल और मायूसियों' के सिवाय कुछ भी हासिल नहीं है. यहां प्रेम में धोखा खा गया मन, किस अविश्वास और संशय की मन:स्थिति में रहता है , वह उनकी कुछ कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखता है. मसलन, एक नज़्म ओथेलो में जो स्त्री है वह इस संशय में है कि उसका प्रेमी किसी और से बात तो नहीं करता है. वह लिखती हैं:

'अपने फोन पे अपना नंबर बार-बार डायल करती हूं /सोच रही हूं
कब तक उस का टेलीफोन इंगेज़ रहेगा /दिल कुढ़ता है
इतनी-इतनी देर तलक /वो किस से बातें करता है.'

इसी प्रकार एक अन्य नज़्म ड्यूटी में जो स्त्री है उसे यह पूर्ण विश्वास है कि उसका प्रेमी पुरुष उसके साथ छल कर रहा है. वे लिखती हैं कि 'जान तुम्हारी मजबूरी को/अब तो मैं भी समझने लगी हूं/ शायद इस हफ्ते भी तुम्हारे चीफ़ की बीवी तन्हा होगी.' स्त्री का पुरुष के प्रति जो संशय है, जो अविश्वास है, वह लेखिका की अपने जीवन के तिक्त अनुभवों से रिसने वाला विषाद है. स्वयं शाकिर की कम उम्र में हुई शादी की परिणति सुखद नहीं हुई थी. अपने शौहर से अलहदगी और अंततः तलाक़ और उसके बाद एक अकेली कामकाजी मां के रूप में अपने बेटे के पालन-पोषण का दायित्व- यह सब कुछ ऐसी परिस्थितियां थीं, जिसने उनके भीतर की स्त्री में प्रेम और जीवन की कोमल अनुभूतियों के प्रति ही नहीं, बल्कि जीवन के प्रति भी मोहभंग उत्पन्न कर दिया था. इसलिए उनकी शायरी में भी प्रेम के तमाम कोमलतम चित्रों के बीच भी अवसाद और दुख की छायाएं झांक-झांक जाती हैं.

उनके यहां इश्क वह सफर है जिसमें 'चलने का हौसला नहीं, रुकना मुहाल कर दिया/ इश्क के इस सफर ने तो मुझको निढाल कर दिया' का भाव अधिक मुखरित है. यह उस स्त्री का आत्मस्वीकार है, जिसने अपना सर्वस्व अर्पित कर के अंततः यही जाना है कि उसकी सारी आहुतियों का कोई प्रतिदान उसे समाज देने के लिए तैयार नहीं है. उनके लिए बेवफ़ा महबूब उस खुशबू की तरह है, जो फूल से अलग होकर हर तरफ फैलता हुआ जाता है, उसका अपना अस्तित्व समाप्त नहीं होता, पर फूल वहीं-का-वहीं रहता है. उनकी एक प्रसिद्ध ग़ज़ल इस संवेदना को मार्मिक तरीके से पकड़ती है:

'वो तो खुशबू है, हवाओं में बिखर जाएगा/मसअला फूल का है फूल किधर जाएगा
वो हवाओं की तरह ख़ाना-ब-जां फिरता है/एक झोंका है जो आएगा गुज़र जाएगा.'

पर इस प्रेम की आकांक्षा रखते हुए भी वह उसके लिए बहुत आशावान नहीं हैं. यह संवेदनशीलता उनकी शायरी में एक गहरी उदासीनता और प्रेम के प्रति मोहभंग लाती हैं जो उनकी कई ग़ज़लों में ध्वनित होता है.

'मेरी तलब था एक शख्स वो जो नहीं मिला तो फिर/हाथ दुआ से यूं गिरा भूल गया सवाल भी' या 'जब सितारे ही नहीं मिल पाए/ ले के हम शम्स-ओ-क़मर क्या करते' या 'शाम होने को है और आंख में इक ख्वाब नहीं/कोई इस घर में नहीं रोशनी करने वाला', यह सब उनकी इसी मोहभंग की ज़बानियां हैं.

पर शाकिर की कविता इस मोहभंग पर ही नहीं खत्म हो जाती. अपने जीवन के अनुभवों और सामाजिक यथार्थ से उपजा उनका दंश भले ही उनकी ग़ज़लों-नज़्मों में अपनी अभिव्यक्ति पाता रहा, पर एक व्यापक स्तर पर उनकी कविता जीवन के सुखद, सुनहले, उज्ज्वल पक्षों को भी देखने की मुंतज़िर थी. वह प्रेम में अपनी एकनिष्ठता पर गर्व करती हैं और हृदय के अंतस्तल में उस प्रेम की शक्ति को आंकना चाहती हैं.

प्रतीक्षा में रत उनकी कविताओं की स्त्री की आंख आज भी यह मानती है कि 'वो न आएगा हमें मालूम था इस शाम भी/इंतिज़ार उसका मगर कुछ सोचकर करते रहे.' पर अगले ही पल इस प्रतीक्षा को एक छलना मान कर मानो यह ऐलान करती है 'उसकी मुट्ठी में बहुत रोज़ रहा मेरा वजूद, मेरे साहिर से कहो अब मुझे आज़ाद करे.' यह ऐलान स्त्री को अपने स्व को पाने का, अपने भीतर की स्त्री को तमाम बंदिशों यहां तक उस इश्क की दुखद स्मृतियों से मुक्त कर देने का घोष है.

देखा जाए तो, शाकिर की ग़ज़लों की मुख्य विषयवस्तु स्त्री-पुरुष संबंधों के विविध रूपों पर, विशिष्ट अनुभवों पर आधारित है. यहां प्रेम की चाह भी है और उस प्रेम की असफलता से उत्पन्न विषाद भी, यहां स्त्री को प्रेम के सवाल पर कमज़ोर भी दिखलाया गया है तो वहीं स्थिति को स्वीकार कर लेने का साहस भी, यहां स्त्री नितांत स्त्री बनकर उभरती है तो वहीं एक सामाजिक मनुष्य भी, मोहब्बत में मायूसी की अनुभूतियां हैं तो वहीं प्रेम की सार्वभौमिकता पर असीम आस्था भी.
पर प्रेम और रूमानी भावों के चित्रों की बहुलता के बावजूद भी यह शाकिर की भाषा और शैली की विशिष्ट भंगिमा की ही बदौलत है कि ,कहीं भी हमें दुहराव और बोझिलता नहीं दिखलाई पड़ती है.
और उसकी वजह, जैसा कि रख़्शंदा जलील कहती हैं, 'उर्दू ज़बान पर उनकी महारत, उनका हुनर, शायरी के स्वरूप, ग़ज़ल और नज़्म दोनों पर उनका बेमिसाल इख़्तियार है, जिसमें वह इन अहम मजमून का तफ़सील से बयां करने के लिए कुछ नई कैफ़ियतों और नई तश्बीह की तख़्लीक करने में कामयाब होती है.'
शाकिर की शायरी की वैश्विक लोकप्रियता उनके गरिमामयी और आकर्षक व्यक्तित्व की वजह से, और अपनी शायरी के पुरकशिश पाठ से और भी बहुगुणित हुई. शाकिर ने उर्दू कविता को स्त्री की वह दृष्टि दी जहां आदर्श और परंपरा के नाम पर स्त्री अपनी इच्छाओं और कामनाओं का दमन नहीं करती है. वह प्रेम के उस रूप को रेखांकित करती हैं जो अपनी निजता में भी सार्वभौमिक है, और सभी रचनात्मक कार्यों को स्पंदित करने वाली ऊर्जा है और इसलिए प्रेम को उसकी व्यापकता में चित्रित करने वाला उनका साहित्य हर युग में उतना ही प्रासंगिक रहेगा.

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं.)

THE CORE IAS

'दिल्ली के देवों! होश करो, सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है'

जनता? हां, मिट्टी की अबोध मूरतें वही,
जाड़े-पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग-अंग में लगे सांप हो चूस रहे
तब भी न कभी मुंह खोल दर्द कहने वाली.

...लेकिन होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है;

.... हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताब कहां
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है

पराधीनता के दौरान 'विद्रोही' और स्वतंत्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' कहलाए स्मृतिशेष रामधारी सिंह 'दिनकर' ने देश के पहले गणतंत्र दिवस पर ही सत्तातंत्र को यह चेतावनी दे डाली थी- साथ ही 'जनता आती है' कहकर समय रहते समय के रथ का घर्घर नाद सुनने, उसे राह देने और सिंहासन खाली करने की नसीहत भी
लेकिन विडंबना देखिए: उनकी इस चेतावनी और नसीहत को तब के सत्तातंत्र ने पूरे मन से नहीं लिया तो आज का सत्तातंत्र आधे-अधूरे मन से लेने को भी तैयार नहीं है और अपनी सारी शक्ति 'जनता को जनता ही न रहने देने' के प्रयत्नों में लगा रहा है. दूसरी ओर, देशवासियों में शायद ही कोई हो, जिसे उसके इन प्रयत्नों का अंजाम न मालूम हो, फिर भी उनका एक हिस्सा 'खुशी-खुशी' प्रजा बने रहने में ही अपनी सुरक्षा ढूंढ़ रहा है.

ऐसे में जो शख्स भी इस देश के भविष्य के अंदेशों पर ईमानदारी से सोचता है, कभी न कभी इस कसक के हवाले हो ही जाता है कि आज हमारे बीच दिनकर जैसा कोई कवि-स्वर क्यों नहीं है जो अपने और पराये का भेद किए बिना निर्भीकतापूर्वक सत्तातंत्र को आईना दिखाकर पूछ सके:

हिल रहा देश कुत्सा के जिन आघातों से, वे नाद तुम्हें ही नहीं सुनाई पड़ते हैं?
निर्माणों के प्रहरियों! तुम्हें ही चोरों के काले चेहरे क्या नहीं दिखाई पड़ते हैं?
तो होश करो, दिल्ली के देवों, होश करो, सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है,
होती जाती है गर्म दिशाओं की सांसें, मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली है।
हों रहीं खड़ी सेनाएं फिर काली-काली मेंघों-से उभरे हुए नए गजराजों की,
फिर नए गरुड़ उड़ने को पांखें तोल रहे, फिर झपट झेलनी होगी नूतन बाजों की।

इस कसक के बीच यहां बिहार के बेगूसराय जिला मुख्यालय से बीस किलोमीटर दक्षिण गंगा के तटवर्ती सिमरिया गांव में 23 सितंबर 1908 को एक भूमिहार ब्राह्मण परिवार में जन्मे और 24 अप्रैल, 1974 को मद्रास में इस संसार को अलविदा कह गए राष्ट्रकवि के जीवन संघर्ष, उस दौरान मिली लोकप्रियता, पुरस्कारों, सम्मानों व नियुक्तियों वगैरह के बखान से उनके उस मूल्यांकन को याद करना बेहतर होगा, जो वरिष्ठ पत्रकार अभिरंजन कुमार ने कोई पांच साल पहले बीबीसी के लिए लिखे गए

एक लेख में बहुत वस्तुनिष्ठ होकर किया था: 'दिनकर की राष्ट्रीयता न तो आज के दक्षिणपंथियों जैसी मिलावटी है, न ही उनकी जनपक्षधरता आज के वामपंथियों जैसी दिग्भ्रमित. लिहाजा वे किसी एक विचार के खांचे में फिट बैठने वाले नहीं.'

अभिरंजन अपने इसी लेख में आगे लिखते हैं कि वे थोड़े-से मार्क्सवादी थे, तो थोड़े-से गांधीवादी {दिनकर खुद भी लिख गए हैं: अच्छे लगते हैं मार्क्स किंतु है अधिक प्रेम गांधी से. प्रिय है शीतल पवन प्रेरणा लेता हूं आंधी से. थोड़े-से राष्ट्रवादी थे, तो थोड़े से समाजवादी, थोड़े-से क्रांतिधर्मी तो थोड़े-से परंपरावादी. उन्हें जहां से जो भी अच्छा लगा, उसे वहीं से ग्रहण कर लिया... उनके साहित्य के बड़े हिस्से में वीर रस की प्रधानता रही, पर जब वे शोषितों-वंचितों के हक की आवाज बुलंद करते तो पक्के साम्यवादी लगते थे. मिसाल के तौर पर: शांति नहीं तब तक, जब तक सुख भाग न सबका सम हो, नहीं किसी का बहुत अधिक हो, नहीं किसी का कम हो.

इसीलिए कांग्रेसी होने के बावजूद वे कांग्रेस के खांचे में भी फिट नहीं ही बैठे. बैठे होते तो उस अर्थ में तो राष्ट्रकवि नहीं ही बन पाते, जिस अर्थ में आज हैं. न ही उनकी रचनाओं में किए गए आह्वान कांग्रेस के खिलाफ चले अनेकानेक आंदोलनों में खुलकर इस्तेमाल किए जाते. जानकारों के अनुसार, उनके यों मिसफिट होने के पीछे उनकी अपने कवि-विवेक को सर्वोपरि रखने और निजी हानि-लाभ के जोड़-घटाव में कतई न उलझाने की जिद थी. यह जिद उन्हें किसी भी व्यक्ति या विचार को आंख मूंदकर नकारने या स्वीकारने, अंधश्रद्धालु होकर उसकी पूजा या अंधानुकरण करने की इजाजत नहीं देती थी.
अलबत्ता, जैसे ही उनके विवेक को लगता कि किसी के मूल्यांकन में उससे कोई चूक हो गई है, वह उनसे बिना झिझके उसे संशोधित करा अथवा बदलवा लेता था- बिना इसकी फिक्र किए कि इस बदलाव को उनके अंतर्विरोध के तौर पर भी देखा जा सकता है. समय के साथ उन्होंने ऐसे 'अंतर्विरोधों' की कई मिसालें बनाईं.
1962 में चीन से युद्ध के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और कम्युनिस्टों दोनों के बारे में अपनी राय बदल ली. महात्मा गांधी की बात करें, तो उनके बारे में तो वे 1933 से ही ऐसा करते आ रहे थे. 1930 के ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह के अगले ही साल महात्मा गोलमेज काफ्रेंस में शामिल होने पर राजी हो गए, तो उन्होंने लिखा- रे रोक युधिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्ग धीर, पर फिरा हमें गांडीव-गदा लौटा दे अर्जुन-भीम वीर.
उनकी इन पंक्तियों में 'युधिष्ठिर' थे महात्मा, जो हर कदम पर धर्म-अधर्म, नैतिक-अनैतिक और हिंसा-अहिंसा आदि के द्वंद्व में पड़ जाते थे, जबकि 'अर्जुन-भीम' थे चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह.

लेकिन बाद में उन्होंने महात्मा की भक्त जैसे मुक्त कंठ से प्रशंसा की. उन्हें 'घोर लौहपुरुषों' पर भी तरजीह दी, 'गरिमा का महासिंधु' बताया और अपनी आत्मा में 'बसाया'. उनकी हत्या कर दी गई तो 'हाय, हिंदू ही था वह हत्यारा' लिखकर उन तत्वों की ओर निशाना साधा, जिनके लिए बाद में लिखा: समर शेष है अभी मनुजभक्षी हुंकार रहे हैं. गांधी का पी रुधिर जवाहर पर फुंकार रहे हैं.

एक समय उन्होंने नेहरू की प्रशंसा में 'लोकदेव नेहरू' पुस्तक लिखी थी और नेहरू ने उनकी महत्वाकांक्षी कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका. इतना ही नहीं, नेहरू ने उन्हें राज्यसभा की सदस्यता भी दिलाई थी. लेकिन 1962 में चीन से निपटने के नेहरू के तरीके से खिन्न होने के बाद उन्होंने संसद के अंदर और बाहर उनकी जैसी निर्मम आलोचना की, नेहरू के कट्टर विरोधियों ने भी शायद ही की हो.

यों, 'बख्शते' तो वे उन्हें शायद ही कभी थे: घातक है जो देवता सदृश दिखता है, लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है. जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा है, समझो उसने ही हमें यहां मारा है. जो सत्य जानकर भी न सत्य कहता है या किसी लोभ के विवश मूक रहता है. उस कुटिल राजतंत्री कदर्य को धिक है, वह मूक सत्यहंता कम नहीं वधिक है.
राष्ट्र की आन के मुद्दे पर वे अपने मित्र नेहरू के प्रति इतने कठोर हो सकते थे, तो कम्युनिस्टों के प्रति तो उन्हें कठोर होना ही था. कहते हैं कि कठोरता की इसी राह पर आगे बढ़ते-बढ़ते उनकी निष्ठा समाजवादी जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण-क्रांति तक पहुंची.

पल भर यहां रुककर जान लेना चाहिए कि वे उन कवियों में नहीं थे, जो अकारण भी युद्धपिपासु होकर 'युद्ध-युद्ध' चिल्लाते रहते हैं. लेकिन 'शांति की रक्षा के लिए कायरता' का समर्थन भी उन्हें गवारा नहीं था. उनका मानना था: सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजता जग है. बल का दर्प चमकता उनके पीछे जब जगमग है. हां, वे उन कवियों के लिए भी सबक थे- अभी भी हैं- जो कई बार देश ओर कविता के प्रति अपनी निष्ठाओं की कीमत पर 'अपनी' सरकार के चारण बन जाते हैं. कांग्रेसी सरकारों के प्रभुत्व के उस दौर में कांग्रेसी होते हुए भी उन्होंने लिखा था: कृषकमेध की रानी दिल्ली वैभव की दीवानी दिल्ली.

1961 में उनकी प्रेम व सौंदर्य की अद्भुत अनुभूतियों से भरी कृति 'उर्वशी' प्रकाशित हुई तो उसमें की गई कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी जैसे यही घोषणा कर रही थी कि वे उस वीर रस के खांचे में भी फिट नहीं ही बैठते, जिसे आमतौर पर उनकी पहचान माना जाता है.
उन्होंने अपनी काव्यकृतियों के लिए गंभीर से गंभीर विषय चुने-युद्ध और शांति जैसे बेहद गंभीर विषय भी- लेकिन उनके निर्वाह में अपनी कविता की गुणवत्ता व लोकप्रियता को प्रभावित नहीं होने दिया. तभी तो उनके गांव-घर की दीवारें भी उनकी कविताओं की पहुंच से दूर नहीं रह पाईं: उठ मंदिर के दरवाजे से, जोर लगा खेतों में अपने, नेता नहीं भुजा करती है सत्य सदा जीवन के सपने.
अलबत्ता, उनके द्वारा प्रभूत मात्रा में किया गया गद्यलेखन गुणवत्ता में कतई कम न होने के बावजूद हमेशा उनकी राष्ट्रकवि की छवि के साइड इफेक्ट झेलने को अभिशप्त रहा. वर्ष 2015 में उनकी कृतियों 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' की स्वर्ण जयंती मनाने और उन्हें 'भारतरत्न' देने की मांग के बहाने भाजपा और नरेंद्र मोदी सरकार ने उनकी जाति के मतदाताओं को लुभाना चाहा, तो उनकी कोशिशों को 'राष्ट्रकवि को जातिकवि बनाने की कोशिशों' के तौर पर देखा गया- भले ही उन पर जातिवादविरोध का मुलम्मा चढ़ाया गया था.
तब राजधानी दिल्ली में विज्ञान भवन में आयोजित स्वर्ण जयंती समारोह में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उनके द्वारा मार्च, 1961 में एक पत्र में कांग्रेस को दी गई इस सलाह का जिक्र किया था कि 'बिहार को जाति व्यवस्था को भूलना ही होगा.....(अन्यथा) बिहार का सार्वजनिक जीवन गल जाएगा.'
लेकिन राष्ट्रकवि ने 'रश्मिरथी' में सूतपुत्र कर्ण से इससे कहीं ज्यादा बड़ी बात कहलवाई है: 'जाति-जाति रटते जिनकी पूंजी केवल पाखंड' और 'शरमाते हैं नहीं जगत में जाति पूछने वाले.'

'आउशवित्ज़: एक प्रेम कथा' दुनिया के सभ्य होने के बाद इंसान के बर्बर इतिहास का लेखाजोखा है

मणिपुर में कुकी-जोमी महिलाओं के साथ मेईतेई समुदाय का वीभत्स सुलूक और बलात्कार की आती खबरों के बीच गरिमा श्रीवास्तव की 'आउशवित्ज़ एक प्रेमकथा' पढ़ी. वर्तमान खबरों और पुस्तक में दर्ज इतिहास, सबसे गुजरते हुए लगा कि पोलैंड, जर्मनी का होलोकास्ट, बांग्लादेश युद्ध और मणिपुर आपस में गड्डमड्ड हो गए हैं. हर जगह एक ही कहानी दोहराई जा रही है. हर जगह दुश्मन समुदाय को सबक सिखाने के लिए, औरतों को रौंदा जा रहा है. औरतें ही नहीं छोटी बच्चियां भी युद्धीय मर्दानगी का शिकार बन रही हैं, क्योंकि वे मादा इंसान हैं.

धरती पर जितने भी जीव हैं, उनमें सबसे दिमागदार- इंसानों में ही ऐसा होता है कि वे दूसरे कबीले, समुदाय, धर्म, जाति, नस्ल, राष्ट्र की औरतों पर यौन हमले और बलात्कार का इस्तेमाल दुश्मन खेमे को अपमानित करने, उन्हें नीचा दिखाने के लिए करते हैं. हां, बिल्कुल, बाकी जीवों में ये बंटवारे भी नहीं होते. दुखद ये भी है कि पीड़ित समुदाय के मर्द भी अपनी सामंती भीरूता, अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए दुश्मन के यौन हमले का शिकार बनी अपने समुदाय की औरतों को गले लगाना तो दूर, उन्हें अपनाते भी नहीं हैं. इसी कारण युद्ध आमतौर पर न जाने कितनी औरतों को घरविहीन, राष्ट्रविहीन कर देता है.

इसी सच्चाई को गरिमा श्रीवास्तव ने अपने उपन्यास 'आउशवित्ज़ एक प्रेम कथा' में दर्शाया है. यह उपन्यास दुनिया के अलग-अलग हिस्सों की तीन अलग-अलग औरतों की अधूरी प्रेम कथा है, जो दरअसल अपने प्रेमियों के इसी मर्दवादी मानसिक बाड़े के कारण ठुकराई गई हैं, या इसके कारण औरतों ने खुद उनसे दूरी बना ली है. सच है जब तक दुनिया जाति, धर्म, राष्ट्र, के बंटवारे में बंटी रहेगी, प्रेम भी मुकम्मल नहीं हो सकेगा, क्योंकि यह बंटवारा दिमागों में एक कंटीला बाड़ बनाता है, जो प्रेम में रुकावट पैदा करता है.

इस उपन्यास में बांग्लादेश युद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध मौजूद है, साथ ही किताब के नाम से ही जाहिर होता है कि इसमें हिटलर की नस्लीय घृणा, तानाशाही से उपजा होलोकास्ट मौजूद है, जहां यहूदी, पोलिश, जिप्सी, समलैंगिक, सोवियत राजनीतिक बंदी सभी कैद कर हिंसक तरीकों से रौंदे जा रहे हैं, लेकिन औरतें इस होलोकास्ट का दोहरा शिकार हैं, उनके साथ भयानक यौन हिंसा हो रही है, ऐसी कि पढ़कर लिखे हुए से भी आंख मूंद लेने का जी हो आए. लेकिन ये सच्चाई है, जिससे आंख नहीं फेरा जा सकता.

जो पढ़ा नहीं जा रहा उसे 1939 से 45 तक लाखों लोगों ने सचमुच झेला था. आउशवित्ज़-बिर्कानेयु के संग्रहालय में मौजूद तथ्यात्मक सामग्री उनकी कहानियों को बयान करती हैं, जिसे उपन्यास के पात्र एक दूसरे को बताते हैं. दुनिया के सभ्य होने के बाद इंसान इतने बर्बर इतिहास से गुजरा हैं यह एहसास रोंगटे खड़े कर देता है. कोई सामान्य इंसान जितनी यातनाओं की कल्पना कर सकता है, ये उससे कई गुना अधिक यातनादायी और भयावह है.

वर्तमान समय के प्रति सचेत दृष्टि रखते हुए इन तथ्यों को पढ़ते हुए लगता है यह आज की ही कहानी है. आज जेलें इन यातनागृहों का छोटा रूप हैं, जिसे मैंने साक्षात देखा, महसूसा भी है. आउशवित्ज़ के यातना शिविर में पाखाने और खाने की लाइनों और उसके लिए मारामारी की बात पढ़कर जेलें याद आती हैं, जो इस लोकतंत्र पर हंसते हुए मौजूद हैं.

जेलों की बात छोड़ भी दें, तो भारत में ऐसे ही होलोकास्ट की तैयारी कर ली गई है. नागरिकता कानून के पहले चरण एनआरसी के लिए असम में जो डिटेंशन कैंप बनाए गए गए हैं, उनकी खबरें बेहद धीमी गति से बाहर आ रही हैं. वहां बड़ी संख्या में 'बाहरी' के नाम पर मुसलमान कैद किए जा रहे हैं. वहां यह सब दोहराया जा रहा हो, तो यह आश्चर्य की बात नहीं

होगी. एक लोकतांत्रिक कहलाने वाले देश में यह सब होना और भी शर्मनाक बात है. इसे खतरे की घंटी के रूप में देखा जाना चाहिए.
किसी बाहरी साम्राज्यवादी ताकत से लड़ना एक राष्ट्रीयता के लोगों को एकजुट करता है और एक-दूसरे के प्रति उदार बनाता है, लेकिन राष्ट्र 'वाद' का उन्माद इंसान को न जाने कितने खांचों में बांट देता है और उन्हें कितना क्रूर बना सकता है, इसे इस उपन्यास में आसानी से देखा जा सकता है.

इसके तथ्यात्मक विवरण पढ़कर सवाल उठता है कि इंसान आखिर इतना क्रूर कैसे हो सकता है? बिना किसी वजह के कैसे कोई किसी बच्चे, वृद्ध, किसी निरीह को उसकी मौत तक पीट सकता है, निर्विकार भाव से उसे नंगा करके मरने के लिए भेज सकता है? दरअसल एक अकेले हिटलर की नस्लीय घृणा की सनक के कारण होलोकास्ट नहीं घटित हुआ, हिटलर की सनक कइयों के दिमाग का हिस्सा बनीं इसलिए यह घटित हुआ. यह घृणा की राजनीति थी, जिसका संचार लोगों के दिमागों में किया गया और वे ज़ॉम्बी बन गए.
उपन्यास में इसका जिक्र है कि इस नफरती हिंसा में लिप्त कई लोगों ने बाद के साक्षात्कारों में कहा कि 'उन्हें इसका कोई अफसोस नहीं है, उन्होंने सिर्फ ऊपर के आदेश का पालन किया.' लेकिन यह सच नहीं है. उन्होंने ऊपर के आदेश का पालन इसलिए किया, क्योंकि उसका दिमाग उस क्रूर राजनीति, जिसे फासीवाद कहते हैं, की चपेट में आ चुका था.

हम अपने देश में भी तो ऐसा होता देख रहे हैं. बिलकीस बानो गुजरात में हुई ऐसी ही क्रूरता का एक प्रतीक है, बलात्कारियों हत्यारों को प्रोत्साहित करने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है, सबकी आंखों के सामने है. अखलाक और जुनैद इस क्रूरता का प्रतीक हैं, जिनके हत्यारों को जेल से निकालकर माला-फूल पहनाई गईं, यह भी सबने देखा. बस्तर में आदिवासी महिलाओं के स्तन दबाकर देखा गया कि वो दूध पिलाने वाली माताएं हैं या नहीं, योनि में पत्थर भरे, बच्चों के हाथ काटे, उन्हें भी सम्मानित किया गया. कश्मीर की एक नन्हीं बच्ची के बलात्कार और हत्या के बाद हत्यारों बलात्कार के आरोपियों के समर्थन में तिरंगा रैली निकाली गई. यह सब दिन के उजाले में खुल्लमखुल्ला हुआ क्योंकि यह एक राजनीति है, जो लोगों को सोचे-समझे तरीके से क्रूर और असभ्य बनाती है, जिसे 'फासीवाद' कहा जाता है.
होलोकास्ट की क्रूरता इसी राजनीति का नतीजा था. इस राजनीति से क्रूर और असभ्य होते लोग हर समय अपने देश के हिटलरों के साथ खड़े रहते हैं, इसलिए आज भी हिटलर अपना काम किए जा रहा है. अपने अंदर छिपी इस हिटलरी क्रूरता को पहचानने और रोकने के लिए भी इस किताब को पढ़ा जाना जरूरी है. इस राजनीतिक क्रूरता ने मानव इतिहास को कलंकित किया है, जिसकी दोहरी शिकार औरते हुई हैं.

THE CORE IAS

उपन्यास में एक कहानी बांग्लादेश के 1971 के युद्ध की पृष्ठभूमि की है. जहां पाकिस्तानी सेना और भारत समर्थित मुक्तिवाहिनी, दोनों औरतों पर हिंसक यौन हमले करती हैं. युद्ध और जातीय, धार्मिक दंगे मानो पुरुषों के अंदर छिपे बैठे शैतान को निकलने का बहाना देता है. ये बताता है कि पुरुष सभ्य नहीं हुआ है, उसे जब भी अवसर मिलता है, वह औरतों पर हमले करने से बाज नहीं आता. युद्ध का समय, दंगों का समय उसका असली रूप उजागर करता है, जैसे इन दिनों मणिपुर में उजागर हो रहा है.

उपन्यास की पात्र भी इन हमलों का शिकार होती है और इस कारण पति द्वारा त्याग दी जाती है. इस हमले में इस पात्र की बेटी पर हुए यौन हमलों का विवरण पढ़कर फूट-फूटकर रोने का जी होता है. यह रोना वर्तमान की घटनाओं के साथ मिल जाता है. हमारे ही 'राष्ट्र' के अंदर मौजूद एक राज्य तीन महीने से युद्ध झेल रहा है, युद्ध में औरतें बलात्कार और कई तरीके से

यौन हिंसा झेल रही हैं, अपने घरों से उजड़े लोग राहत कैंपों में रहने को मजबूर हैं. यह कल्पना कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि वहां भी छोटी बच्चियों के साथ वही सब कुछ हो रहा होगा, जो उपन्यास की छोटी टिया के साथ हुआ. पितृसत्तात्मक सरकारें ऐसी हिंसा पर चुप रहती हैं. यहां भी चुप हैं. क्या यह चुप रहना सामान्य क्रिया है?

इस उपन्यास को पढ़ने के दौरान ही 'ओपेनहाइमर' फिल्म को लेकर विवाद शुरू हुआ, कि इसका नायक परमाणु बम बनाने वाला, भगवद गीता से प्रेरणा लेने वाला वैज्ञानिक अपने अंतरंग क्षणों में गीता के श्लोक क्यों पढ़ रहा है? संयोग है कि इस उपन्यास में भी एक यहूदी वैज्ञानिक रेनाटा अपनी पत्नी के साथ के अंतरंग क्षणों में अचानक यहूदी प्रार्थना 'कादिश' पढ़ने लगता है, मानो मृतात्माओं से माफी मांग रहा हो. उसकी पत्नी डर जाती है. इस विख्यात यहूदी वैज्ञानिक की स्मृतियों में 1939-45 तक जर्मनी में चली नस्लीय फासिस्ट हिंसा के शिकार बाप-दादाओं की कहानियां मौजूद हैं. इन स्मृतियों के कारण उसका जीवन सामान्य नहीं रह पाता है, उत्साहविहीन, आवेगविहीन जीवन.

यह पीड़ित नस्ल की स्मृतियां है, जबकि फिल्म में परमाणु बम बनाने वाला वैज्ञानिक है, जिसकी स्मृतियां पीड़क ही हैं, जो भगवद गीता के उपदेशों से अपने कृत्यों के लिए सहारा खोज रहा है, लेकिन सामान्य वह भी नहीं रह पाया.

फासीवादी राजनीति ने राष्ट्र, धर्म, नस्ल, जाति लिंग, यौनिकता के आधार पर लोगों के दिमाग को क्रूर और हिंसक बनाया है, औरतें इस हिंसा का दोहरा शिकार होती आई हैं, वे इंसान नहीं, बल्कि पुरुषों की संपत्ति मानी जाती हैं, इसलिए दुश्मन की संपत्ति के साथ उन्हें भी रौंदना हिंसक दिमाग वाले अपना कर्तव्य समझते हैं. मणिपुर से तो और भी दुखद खबर यह आ रही है कि मेईतेई समुदाय की औरतों का संगठन 'मीरा पाइबी' जिन्होंने 2004 में भारतीय सेना की यौन हिंसा के खिलाफ नग्न प्रदर्शन किया था, इस समय वे कुकी औरतों को खोजकर उनसे बलात्कार करने के लिए अपने समुदाय के पुरुषों को उकसा रही हैं. फासीवादी क्रूरता बढ़ती जा रही है, सत्ता से प्रभावित लोगों के दिमाग पूरी तरह इसकी गिरफ्त में है. यह उपन्यास शायद इस क्रूर बनाने वाली राजनीति को इतिहास का सबक सिखा सके.

प्रेमचंद के लिए साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल थी

प्रेमचंद का समय बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध रहा है. उनका निधन 1936 में हुआ. अर्थात करीब 8 दशक से अधिक का समय गुजर गया. लेकिन उनकी प्रासंगिकता और जरूरत प्रगतिशील और जनवादी साहित्य आंदोलन में हमेशा से रही है और आगे भी रहेगी.

प्रेमचंद को याद करने का खास महत्व है. बीता वर्ष हमारी आजादी का 75वां वर्ष रहा है. इसे अमृत महोत्सव वर्ष के रूप में मनाया गया, जा रहा है. प्रेमचंद के संदर्भ में 'अमृत' की चर्चा करना आवश्यक है. कैसा है अमृत और किसके लिए है?

क्या यह समाज के बहुसंख्यक श्रमजीवियों, दलितों, शोषितों, स्त्रियों, आदिवासियों अर्थात हाशिए के समाज के लिए है या यह अमृत उन मुट्ठी भर लुटेरों, दलालों, शोषकों, धनपशुओं के लिए है जिन्होंने इन 75 वर्षों में देश को लूटा, दूहा और हर आपदा का इस्तेमाल अपनी तिजोरी भरने में किया. आजादी के स्वप्न के साथ क्या हुआ?

प्रेमचंद ने भी आजादी का सपना देखा था. उनकी आजादी का मतलब 'जान की जगह गोविंद' को बिठाना नहीं था. उनकी आशंका निर्मूल नहीं थी. आज की हकीकत क्या यही नहीं है?

स्वाधीनता संघर्ष के दौरान आजादी को लेकर कई धारणाएं थीं. बहुतों की समझ अंग्रेजों का भारत छोड़ चले जाने तक सीमित थी. प्रेमचंद के सामने आजादी का अर्थ साफ और स्पष्ट था. उनकी समझ इस संदर्भ में गांधी और दूसरे से अलग भगत सिंह के करीब थी. भगत सिंह ने भी तो यही कहा था कि आजादी का मतलब गोरे अंग्रेजों से काले अंग्रेजों के हाथों में सत्ता का

हस्तांतरण नहीं है. इसका एकमात्र आशय यही है कि भारत की आजादी का मतलब लुटेरों से लुटेरों के हाथों में सत्ता के हस्तांतरण की जगह भारत की उस विशाल किसान, मजदूर, शोषित उत्पीड़ित वर्गों के हाथों में वास्तविक सत्ता का होना है.
प्रेमचंद का साहित्य इसी वर्ग के संघर्ष, हर्ष-विषाद, पक्षधरता और मुक्ति-स्वप्न का अप्रतिम उदाहरण है. इसलिए आजादी के 75 साल के बाद जब हम प्रेमचंद को याद करते हैं, तो उस स्वप्न के नजरिये से 75 साल के हिंदुस्तान पर हमारी नजर जाती है कि यहां जिस अमृत की बात हो रही है, वह चंद लोगों के हिस्से में क्यों रहा और समाज का बड़ा वर्ग उससे वंचित क्यों? उसके हिस्से विष तो नहीं?

प्रेमचंद का रचनाकाल करीब तीन दशक का रहा है. उनकी शुरुआत उर्दू में कथा लेखन से हुई. 1907 में उन्होंने पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' लिखी. यह उर्दू रिसाला 'जमाना' में छपी. इस पत्रिका में उनकी कई अन्य कहानियां भी प्रकाशित हुईं. 1909 में उनकी पांच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' नाम से आया. ये देश प्रेम से ओतप्रोत थीं. इसे राजद्रोह मानते हुए सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया. यह दौर था जब देश में बंगाल विभाजन के विरोध में आंदोलन चल रहा था. देश में आजादी की भावना आलोड़ित हो रही थी.
इस घटना से दो बातें हुईं. पहली, उर्दू की जगह प्रेमचंद ने हिंदी में कहानियां लिखनी शुरू की. दूसरी, उन्हें अपना नाम बदलने को बाध्य होना पड़ा. वे नवाब राय के नाम से उर्दू में लिखते थे. अब प्रेमचंद के नाम से हिंदी में कहानियां लिखनी शुरू की. वे उर्दू भाषा और उसके सांस्कृतिक संस्कार लेकर हिंदी में आए. उनकी कहानियां हिंदी खड़ी बोली में थीं.

एक तरफ जहां इन कहानियों की विषयवस्तु में आम जीवन खासतौर से किसान, शोषित, उत्पीड़ित वर्गों का जीवन संघर्ष व यथार्थ था, वहीं ये आमलोगों की भाषा व जुबान में थीं. इनका पाठकों पर असर हुआ. कहानियां लोगों से जुड़ती गईं. इस तरह प्रेमचंद ने कथा साहित्य की जमीन ही बदल डाली. समाज के वे हिस्से जिन्हें हाशिए पर डाल दिया गया था, जो उपेक्षित और अवहेलित थे, उन्हें साहित्य में नायकत्व मिला. साहित्य की दुनिया में एक नए सौंदर्यशास्त्र की रचना हुई. प्रेमचंद ने उसकी कसौटी को बदलने का काम किया.
प्रेमचंद के काल और रचना संसार पर गौर किया जाए तो हम पाते हैं कि प्रेमचंद ने जब लिखना शुरू किया, उस समय पहले विश्व युद्ध की काली घटा छा रही थी. वहीं, उनका निधन ऐसे समय में हुआ जब दूसरे विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी. यह दौर राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही उथल-पुथल भरा था. सोवियत रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई थी. जर्मनी-इटली में फासीवादी-नाजीवादी सत्तारूढ़ हो चुके थे. भारत में भी स्वाधीनता आंदोलन और उसकी कई धाराएं काफी सक्रिय थीं. भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद और उनके साथियों के नेतृत्व में क्रांतिकारी आंदोलन अपने उठान पर था. गांधी जी स्वाधीनता आंदोलन के केंद्रीय व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित थे. इन सब का प्रेमचंद के लेखन और उनकी वैचारिकी की निर्मिति में योगदान था. सबसे अधिक उन पर गांधी जी के विचारों का प्रभाव था.

प्रेमचंद के विचारों की अभिव्यक्ति उनके पात्रों के माध्यम से होती है. यह रूसी क्रांति का असर था कि वे यहां तक कहते हैं कि मैं बोल्शेविक उसूलों का कायल हूं. उन्होंने पूंजीवाद-साम्राज्यवाद को 'विष की गांठ' माना. उनकी समझ थी कि दुनिया में अन्याय व अत्याचार, शोषण व उत्पीड़न, द्वेष व मालिन्य, अज्ञानता और मूर्खता सभी का स्रोत यही है. उन्होंने रूस की समाजवादी क्रांति में एक नई सभ्यता के उदय को देखा.
'हंस' के अंतिम संपादकीय में वे लिखते हैं 'धन्य है वह सभ्यता जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अंत कर रही है. जल्दी या देर से दुनिया उसका अनुसरण अवश्य करेगी. ... हां, महाजनी सभ्यता और उसके गुट के लोग अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे. पर जो सत्य है एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी.'

प्रेमचंद की वैचारिकी और उनके दृष्ट बिंदु में जो परिवर्तन घटित हुआ, वह अद्भुत ही नहीं आश्चर्यजनक भी है. वे आर्य समाज के सुधार आंदोलन से प्रभावित हुए, उससे जुड़े और जैसे ही उसके सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी कार्यों का भास हुआ, जल्दी ही उनका मोहभंग हुआ. वे उससे अलग भी हो गए.

गांधीजी उनके लिए महान राष्ट्रनायक थे. उनके विचारों से वे सर्वाधिक प्रभावित थे. लेकिन जब उनकी विसंगतियां और सीमाएं उजागर हुईं, वे उसकी आलोचना करने में भी पीछे नहीं रहे. उनकी साहित्यिक यात्रा समाज और जीवन में आदर्श की प्रतिष्ठा से शुरू हुई. वहीं, सामाजिक स्थितियों व जीवन संघर्ष ने उनकी रचनाशीलता को यथार्थवादी बना डाला.

प्रश्न है के प्रेमचंद के यहां यह परिवर्तन कैसे घटित हुआ? इसके पीछे भारतीय किसान के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति और भावनात्मक लगाव है. वे किसान जीवन के चितेरे थे. उनका हित ही प्रेमचंद का हित था. उनके विचारों में गतिशीलता व प्रगतिशीलता का यही मूल कारण था. उनके साहित्य के केंद्र में किसान, शोषित, उत्पीड़ित, दमित, स्त्रियां और दलित समाज था और इसके शोषक-उत्पीड़क उनके निशाने पर थे. इसी दृष्टि बिंदु के कारण प्रेमचंद में हम क्रमिक विकास पाते हैं. उनकी चेतना की दिशा हमेशा उर्ध्वगामी रही. आधुनिकता और प्रगतिशीलता उनके लिए जीवन मूल्य ही नहीं जीवन व्यवहार भी था.

प्रेमचंद की मान्यता थी कि न सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेश के अधीन भारत है बल्कि एक आंतरिक उपनिवेश भी है जो यहां के विशाल श्रमिक समाज को अपना गुलाम बनाए हुए है. इसीलिए जहां वे पूंजीवादी शोषण से मुक्ति की बात करते हैं, वही सामंती जकड़न, पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, सांप्रदायिकता, धर्मांधता, ईश्वरवाद जैसे पुनरुत्थनवादी विचारों से भी उनका अनवरत संघर्ष चलता रहा है. इस तरह प्रेमचंद की नजर में भारत की आजादी का आशय इस दोहरी गुलामी से मुक्ति में था.

प्रेमचंद का निधन 1936 में हुआ. उस समय उनकी उम्र मात्र 56 वर्ष थी. यह वक्त है जब वे अपनी रचनाशीलता के शीर्ष पर थे. इसी वर्ष उनका मशहूर उपन्यास 'गोदान' का प्रकाशन हुआ. उन्होंने 'महाजनी सभ्यता' और 'सांप्रदायिकता और संस्कृति' जैसा महत्वपूर्ण लेख लिखा.

1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने जो भाषण दिया, उसे साहित्य का घोषणा पत्र माना जाता है. यह मान्यता है कि उनका अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' उनकी साहित्य यात्रा में एक नया मोड़ है. इस उपन्यास का मुख्य पात्र देव कहता है 'दरिंदों से निपटने के लिए हथियार भी बांधना पड़ेगा'. यहां हमें एक नए प्रेमचंद का दर्शन होता है.

हम जानते हैं कि उसके बाद का दौर आंदोलनों का दौर रहा है. तेभागा व तेलंगाना जैसे किसानों के संघर्ष हुए. देश को बंगाल के दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा. नेताजी के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज का संघर्ष, नाविक विद्रोह और भारत छोड़ो जैसे आंदोलन हुए. इन सबकी परिणति साम्राज्यवादियों से समझौते के तहत देश की आजादी के रूप में हुई. 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हुआ.

प्रश्न है कि यदि प्रेमचंद जीवित होते तो आजाद भारत में उनकी भूमिका क्या होती? हिंदी कविता में जिस भूमिका में मुक्तिबोध थे, क्या प्रेमचंद की भूमिका ऐसी और इसी तरह की नहीं होती? इससे इनकार नहीं किया जा सकता है. मुक्तिबोध ने आजाद भारत के विकास को साम्राज्यवाद परस्त पूंजीवादी विकास के रूप में देखा था. वे अपनी कविता में कहते हैं:

'साम्राज्यवादियों के/पैसे की संस्कृति/भारतीय संस्कृति में ढलकर/दिल्ली को
वाशिंगटन व लंदन का उपनगर/बनाने पर तुली है
भारतीय धनतंत्री/जनतंत्री बुद्धिवादी/स्वेच्छा से उसी का कुली है.'

मुक्तिबोध ने अपने जीवन काल में फासिज्म के बीज का अनुभव किया था. उनकी इतिहास पर लिखी पुस्तक प्रतिबंधित कर दी गई थी. आज हालत ज्यादा खराब है. यह अचानक घटित होने वाली घटना नहीं है.

फासीवाद पूंजीवाद का ही सबसे निकृष्ट, बर्बर और हिंसक रूप है. वे सारे मूल्य संकट में हैं जिन्हें आजादी के संघर्ष में अर्जित किए गए. प्रेमचंद ने रचना और विचार के द्वारा इन्हें प्रतिष्ठित किया था. सारी जिंदगी संघर्ष किया. उनका संघर्ष पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पुरोहितवाद, सांप्रदायिकता से था. उन्होंने लोगों को जगाने का काम किया. उनके लिए साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल थी. प्रगतिशीलता को साहित्यकार का स्वभाव माना था. उन्होंने कहा भी कि अब और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है. निःसंदेह यह स्वयं के जागने और दूसरों को जगाने का वक्त है.

जिस विचार-विरोधी उपक्रम में कई तबके शामिल हैं, उसमें लेखक-कलाकार निश्चिंत नहीं बैठ सकते

अशोक वाजपेयी

दो शामों में आपको ऐसे तीन आयोजन मिलें जिनमें जाकर आप कृतकृत्य अनुभव करें, ऐसा कम होता है. पर होता है. दिल्ली में कला-प्रेमियों के लिए ऐसे अवसर होते हैं अगर वे अपनी आवाजाही थोड़ी व्यवस्थित करें और उनकी रुचि हो. 14-15 जुलाई को मुझे उर्दू कविता की एक महफ़िल, एक वयोवृद्ध चित्रकार की पुनरावलोकी प्रदर्शनी और तुलसीदास के रामचरितमानस की कंचन चित्रित पांडुलिपि पर विशद व्याख्यान सुनने मिले तो इसे तिहरा सौभाग्य ही कहा जाएगा.

पहली शाम पत्रकार और उर्दू कविता के अद्भुत और बेहद प्रभावशाली प्रस्तोता सईद नकवी ने उर्दू कविता का लगभग डेढ़ घंटे, बिना थके या उबाए, शुद्ध याददाश्त से असंख्य अशआर पर ध्यान देते हुए जो सरस सफ़र कराया उसने बहुत अभिभूत किया. उर्दू में आम ज़िंदगी, वक़्त की सचाई, इश्क, नाउम्मीदी, उम्मीद, व्यंग्य आदि की कितनी बारीकियां हैं यह स्पष्ट हुआ. ऐसे कई शायरों के कलाम से हम वाकिफ़ हुए जिनका या तो हमने नाम ही नहीं सुना या जिन्हें हम भूल गए हैं.
यह भी स्पष्ट हुआ कि उर्दू कविता में मुल्ला-मौलवी के पक्ष में शायद एक भी शेर नहीं है: वे ज़्यादातर उर्दू कवियों द्वारा व्यंग्य के शिकार हुए हैं. यह भी नज़र आया कि उर्दू जैसी बेहद नागर लगती भाषा ने कविता में बोलियों को कितना शामिल किया है.

शांति दवे का नाम समकालीन कला-दृश्य से ग़ायब-सा है. सत्तर के दशक में वे एक बड़े चित्रकार माने जाते थे. जेसल ठकार के संयोजन में उनकी जो विशाल पुनरावलोकी प्रदर्शनी उसी शाम जाकर देखी वह इस चित्रकार के पुनर्वास जैसा है. उनकी कला का स्वभाव अमूर्तन में भी अधिक से अधिक कहने का है जबकि उनके समवयसी गायतोंडे और अम्बा दास अपने अमूर्तन में अल्पभाषी रहे हैं.

THE CORE IAS

कैनवास पर देवनागरी अक्षरों को भी अंकित करने की युक्ति का सबसे प्रभावशाली प्रयोग शांति दवे ने ही किया. दशकों पहले वे हमारे निमंत्रण पर भोपाल आए थे और उस संक्षिप्त प्रवास को अब भी याद करते हैं. 52 की उम्र में वे अब अशक्त हैं पर उनका जीवन उनकी कला में अब भी बचा और स्पंदित है.
16 की शाम प्रख्यात कलाविद् कविता सिंह ने बनारस में वहां के एक नरेश उदय नारायण सिंह द्वारा आयोजित तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के कंचन चित्र संस्करण की पांडुलिपि पर जो सोदाहरण व्याख्यान दिया वह अद्भुत था. इस पांडुलिपि में, जो कई खंडों में है, हर पृष्ठ पर मानस की इबारत है और सामने के पृष्ठ पर एक चित्र. सोने के प्रयोग की वजह से मानस का यह संस्करण कंचन चित्र रामायण कहलाता है.
कई नए तथ्य पता लगे. मानस की बनारस में अठारहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठा हो चुकी थी जबकि स्वयं महाकवि का उनके जीवनकाल में वहां के ब्राह्मणों ने घोर विरोध किया था. यह मान्यता कि मुगलों के ज़माने में पनपी-व्यापी मिनिएचर शैली अठारहवीं शताब्दी के अंत तक अस्त हो चुकी थी सही नहीं है, क्योंकि इस पांडुलिपि का चित्रांकन मिनिएचर शैली में ही है.

काशी नरेश ने इस काम में जिन कलाकारों को लगाया था वे देश के कई भागों- फ़ैज़ाबाद, मुर्शिदाबाद, दिल्ली, राजस्थान आदि से आए थे और यद्यपि उन्होंने अपने अलग-अलग मुहावरों में तालमेल बैठाया, उनकी विशिष्टता बरक़रार रही. चित्रों में मानस की इबारत से जब-तब कला-उचित छूट भी ली गई है और कहीं-कहीं कलाकार ने अलग उड़ान भरी है. व्यक्तिगत प्रतिभा के इस इज़हार के लिए राजकीय कमीशन में जगह थी.

दुर्भाग्य यह है कि कंचन चित्र रामायण के पृष्ठ कई जगह, कई संग्रहों में बिखरे पड़े हैं और उन्हें एकत्र कर पाना लगभग असंभव है. कुछ पृष्ठ हो सकता है हमेशा के लिए नष्ट या ग़ायब हो चुके होंगे. लिपिकार और कलाकार भी अनाम हैं. उनमें निश्चय ही मुसलमान कलाकार भी थे. पांडुलिपि के आवरण पर काशी नरेश का नाम फ़ारसी में भी लिखा था जिसे मिटा दिया गया है. 'टूटी हुई, बिखरी हुई' होने का हश्र कई मध्यकालीन चित्रित पांडुलिपियों का रहा है.

प्रतिबद्धता का नया अर्थ

बहस तो फ्रांस के ज़्यां पाल सार्त्र ने उठाई थी कि लेखक को प्रतिबद्ध होना चाहिए. यहां तक कि उस समय चल रहे वियतनाम युद्ध के सिलसिले में वे यह तक कह गए थे कि लेखकों को लिखने के बजाय वियतनाम जाकर युद्ध में सही पक्ष की ओर से लड़ना चाहिए.

प्रतिबद्धता का प्रश्न हमारे यहां भी साठ के दशक में उठा. प्रतिबद्ध, जिससे ज़्यादातर आशय वामपंथ से प्रतिबद्ध ही होता था, संगठित भी हुए और उन्होंने अप्रतिबद्ध या प्रतिबद्धता-विरोधी लेखकों को अप्रासंगिक, समाज-विरोधी आदि क़रार देकर साहित्य से देशनिकाला तक देने की कोशिश की. उन्हें कलावादी कहकर उनका मानमर्दन भी खूब किया गया.

धीरे-धीरे प्रतिबद्धता पर यह आक्रामक आग्रह शिथिल पड़ गया और इन दिनों इस अवधारणा की बहुत सक्रिय उपस्थिति नहीं रह गई है.

कभी वीएस नॉयपाल ने यह कहा था कि कुछ लोग लेखक होते हैं, कुछ लोग मिशनरी: लेखक मिशनरी नहीं हो सकता. साहित्य और मिशन दो ध्रुवांत हैं ऐसी उनकी धारणा थी. स्थिति इतनी पैनी नहीं होती, न है.

आज भारत में सभ्यतागत संकट है: समावेशी-बहुल-उदार-खुला-ग्रहणशील भारतविचार लगातार हमलों का शिकार हो रहा है. यह विचार भारतीय परंपरा, इतिहास, चिंतन और संस्कृति का प्रतिफल भी है और उसका मूल आधार भी. अगर वह नष्ट या विकृत या अशक्त हुआ तो साहित्य का औचित्य, उसकी प्रेरणाभूमि, उसका उत्तराधिकार सभी नष्ट या ग़ायब हो जाएंगे.

इस समय, इसलिए, प्रतिबद्धता अपना नया रूप लेकर उभरती है. अब यह किसी राजनीतिक विचारधारा के लिए प्रतिबद्धता नहीं है- वह इस भारतविचार के लिए प्रतिबद्धता है. उसकी अपेक्षा यह है कि लेखक, अपने राजनीतिक और वैचारिक मतभेदों को क़ायम रखते हुए भी, अपने सृजन-चिंतन-व्यवहार-सामुदायिकता में भारत विचार को पुष्ट-सक्रिय-सशक्त-सत्यापित करें. साहित्य में भी, साहित्य से बाहर व्यापक समाज में भी.

धर्मों के लगातार अपने को विकृत और राजनीति में इस्तेमाल होने देने की प्रवृत्ति और शोर में साहित्य को मनुष्यता के पक्ष में आपद्धर्म बनकर उभरना चाहिए. अगर यह मिशन है तो ऐसा जिसमें उदार समावेशिता होगी, कोई 'दूसरे' नहीं होंगे, निजीपन के लिए जगह होगी और जो साहित्य की अपनी शर्तों और ज़मीन पर ही विकसित होगा: उसमें सूक्ष्मता-जटिलता-असहमति-वक्रता का सम्मान होगा.

जो हो रहा है और जिसकी हिंसक आक्रामकता बढ़ती ही जा रही है और जिस विचार-विरोधी उपक्रम में कई सामाजिक शक्तियां और तबके शामिल हैं, उसमें लेखक और कलाकार निश्चिंत और निष्क्रिय नहीं बैठ सकते. उन्हें साहित्य को एक तरह का अहिंसक सत्याग्रह बनाना ही होगा और यही नए अर्थ में प्रतिबद्ध होना है.

THE CORE IAS

यहां साहित्य और समाज के प्रतिबद्धता में किसी भी क़िस्म का द्वैत ध्वस्त हो जाता है. साहित्य के साथ होना और समाज के साथ होना एक बात हो जाती है. हम लेखक और मिशनरी साथ-साथ हो सकते हैं- आज लेखक होने का अर्थ कुछ न कुछ मिशनरी होना भी अनिवार्यतः है.
(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं.)

हिंदी के प्रति इतनी हिकारत कहां से आई?

अब तो सोचना भी असुविधाजनक लगता है कि इस देश में हिंदी का इतना बुरा हाल क्यों हो गया है-यहां तक कि इसके हिंदीभाषी प्रदेशों में भी हिंदी के प्रति इतनी हिकारत की नजरें क्यों पैदा हो गई है? क्या यह हमें नाना प्रकार के अनर्थों के हवाले करती जा रही आर्थिक गैरबराबरी की ही तर्ज पर भाषाई गैरबराबरी का जाया कोई अनर्थ है? या कि आत्ममुग्ध 'हिंदी वाले' खुद ही अपने पांवों पर कुल्हाड़ियां मारकर इसका मार्ग प्रशस्त करते आ रहे हैं?

ये सवाल मध्य प्रदेश में इंदौर स्थित एक सरकारी कॉलेज की बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग प्रथम वर्ष की हिंदी माध्यम से पढ़कर आई दीप्ति मंडलोई नाम की छात्रा द्वारा गत एक जून को अपने कॉलेज में प्रायः उड़ाए जाने वाले मजाक से क्षुब्ध होकर कर ली गई आत्महत्या से पैदा हुए हैं. आत्महत्या से पहले यह छात्रा पहले सेमेस्टर की परीक्षा में फेल भी हो गई थी क्योंकि चुभते हुए तंजों के बीच अंग्रेजी माध्यम की कक्षाएं उसकी सोच-समझ पर भारी थीं. इससे समझा जा सकता है कि इस सुविदित तथ्य के बावजूद कि छात्र अपनी मातृभाषा में ही 'अपना सर्वश्रेष्ठ' दे सकते हैं, उन पर शिक्षा का गैर-मातृभाषा माध्यम थोपकर देश में हर साल कितनी प्रतिभाओं का संहार कर दिया जा रहा है!

यहां कह सकते हैं कि शिक्षा संस्थानों में हिंदी के प्रति हिकारत की ऐसी वारदात न पहली बार सामने आई है, न इसके अंतिम होने के ही आसार हैं. हिंदी में पढ़ाई-लिखाई की बात तो दूर रहे, अंग्रेजी माध्यम के प्रभुत्व वाले कई संस्थानों में पानी या उसे पीने जाने की इजाजत मांगने तक में हिंदी बरतने पर भी छात्रों को दंड दिया जाता है. जब भी ऐसा होता है, दो चार दिन चर्चाएं होती हैं, फिर बात आई-गई हो जाती है.
लेकिन इंदौर की ताजा वारदात इतना तो कहती ही है कि अब पानी सिर से ऊपर हो रहा है और तुरंत निकासी की मांग करता है. इस मांग को पूरा करना है तो सबसे पहले हमें इसी सवाल का सामना करना होगा कि हिंदी की हालत इतनी पतली क्यों हो चली है कि वह अपने बोलने व बरतने वालों के आत्मसम्मान और स्वाभिमान की रक्षा भी नहीं कर पा रही?

इसीलिए तो कि गुलामी के दौर की बात न भी की जाए तो आजादी के बाद के पचहत्तर वर्षों में भी, जब हम कहते हैं कि 'आजादी के अमृतकाल' में आ पहुंचे हैं, हिंदी ज्ञान-विज्ञान, तकनीक, गणित, तर्क, चिंतन व अनुसंधान वगैरह और इन सबकी शिक्षा की भाषा नहीं ही बन पाई है.
पहले तो उसके क्षेत्र में जड़ें जमाए बैठे वैज्ञानिक चेतना के अभाव और पोंगापंथी जकड़नों ने इनकी दिशा में उसकी यात्रा को सख्ती से रोके रखा, फिर अंग्रेजी के वर्चस्व वाली सरकारी नीतियां कोढ़ में खाज पैदा करती रहीं. फिर जैसे इतना ही काफी न हो, खुद को हिंदी का हितैषी कहने वालों का एक समुदाय 'हिंदी-हिंदी' के बेहिस शोर में हिंदी को अंग्रेजी की जगह लेने लायक बनाने की फिक्र किए बगैर 'हिंदी लाओ, अंग्रेजी हटाओ' के नारो में मगन होता रहा- इस विवेक से दूरी बनाए रखते हुए कि 'लगभग अपरिहार्य' अंग्रेजी को कहां-कहां से और कैसे हटाना है या कहां-कहां बनाए रखना और जहां से हटाना है, वहां हिंदी को कैसे प्रतिष्ठापित करना है. हां, दूसरी भारतीय भाषाओं से सहज संवाद व आदान-प्रदान से परहेज रखते हुए भी.
इस समुदाय की श्रेष्ठता ग्रंथि की हद यह है कि यह दूसरी भारतीय भाषाएं बोलने वालों से इसकी अपेक्षा तो रखता है कि वे फौरन से पेश्तर हिंदी सीखकर उसे 'देश की भाषा' बना दें, लेकिन हिंदी भाषी क्षेत्र में उनकी भाषाओं को कतई कोई अवसर नहीं

@THECOREIAS | Himalika Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09 | 8800141518
www.thecoreias.com | 53/18, ORN, DELHI-60 | THE CORE IAS

मिलने देता- उनकी राह में बाधाएं खड़ी करता है. एक समय बहुचर्चित त्रिभाषा फार्मूला आया तो भी यह उन भाषाओं की जगह संस्कृत को आगे करके मगन था.

इसका फल यह हुआ कि देश में अंग्रेजी का वर्चस्व घटाने और उसे उन जगहों से, जो उसकी नहीं हैं, हटाने के लिए सारी भारतीय भाषाओं की जो साझा मुहिम चलाई जानी जरूरी थी, परस्पर अविश्वास के कारण वह आज संभव ही नहीं हुई. उलटे, दूसरी भारतीय भाषाओं को हिंदी का अंग्रेजी जैसा ही साम्राज्य बन जाने का डर सताने लगा. इससे पैदा हुई स्थिति का ही अनर्थ है कि हिंदी अब अपने प्रभाव क्षेत्र में भी इस अंदेशे का सामना करने लगी है कि एक दिन अंग्रेजी उसे बच्चों की प्राथमिक शिक्षा की भाषा भी नहीं रह जाने देगी.
यह अंदेशा साल दर साल बढ़ता ही जा रहा है क्योंकि हिंदी प्रदेश जैसे-जैसे दूषित सांप्रदायिक चेतनाओं के हवाले होते गए हैं, 'हिंदी वालों' में हिंदी को हिंदू और हिंदुस्थान से जोड़ने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है. हिंदी से जुड़े अपने आत्मसम्मान के आधे-अधूरे, अधकचरे व दूषित बोध के कारण वे हिंदी की अपील के विस्तार के बजाय संकुचन में ही भूमिका निभा रहे हैं.

क्या आश्चर्य कि इससे 'साधो घर में झगड़ा भारी' की स्थिति में पहुंच गई हिंदी अपने लोकतंत्र व जनांदोलनों की भाषा होने को लेकर भी आश्वस्त नहीं हो पा रही. अंग्रेजी को हटाने की बात कहती-कहती खुद बहुत-सी जगहों से हटती जा रही है और बाजार, विज्ञापन, धर्म-कर्म और चुनाव आदि में ही उसका सिक्का चल पा रहा है. सरकारी नीतियां तो खैर पहले से ही अंग्रेजी के पक्ष में हैं और बड़ी नौकरियां भी ज्यादातर उसके लोगों के लिए ही हैं. इसलिए अब हिंदी प्रदेशों में भी हिंदी माध्यम वाले स्कूलों के लिए 'ढूंढ़ो तो जानें' जैसी स्थिति बन रही है.

विडंबना यह कि 'हिंदी, हिंदू और हिंदुस्थान' की बात करके हिंदी की मुश्किलें बढ़ाने वाले फिर भी समझने को तैयार नहीं हैं कि जब तक भारतीय भाषाओं में एक दूसरे से दूरी, द्रोह और ईर्ष्यालु बने रहेंगे, उन सबकी जगह कब्जा किए बैठी अंग्रेजी मौज मनाती और उन्हें हिकारत का पर्याय बनाकर रुलाती रहेगी. और चूंकि समझ नहीं रहे, उत्तर-दक्षिण की भाषाओं में ही नहीं, हिंदी और उर्दू में भी, जिन्हें आम तौर पर बहनें कहा जाता है, नाइत्तेफाकी पैदा करने और दूरियां बढ़ाने का कोई मौका नहीं छोड़ते.
इसकी एक मिसाल उन्होंने 1989 में बनाई थी, जब उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव की जनता दल सरकार ने उर्दू को प्रदेश की दूसरी आधिकारिक भाषा का दर्जा देने का फैसला किया. तब दोनों भाषाओं में दूरी बढ़ाने के इच्छुक उक्त 'हिंदी वालों' द्वारा इस फैसले का भरपूर संप्रदायीकरण कर ऐसा जताया गया था, जैसे इससे उनकी 'प्राणों से भी प्यारी' हिंदी का बहुत बड़ा नुकसान हो गया है.

THE CORE IAS

और तो और, उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन इस फैसले को लेकर मुकदमेबाजी पर उतर आया था- इस तर्क पर कि संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार हिंदी के साथ किसी भी दूसरी भाषा को आधिकारिक दर्जा नहीं दिया जा सकता. इसके लिए उत्तर प्रदेश राजभाषा कानून में किया गया संशोधन अवैध है क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण है. सम्मेलन के तर्क ऐसे थे जैसे उसकी निगाह में उर्दू महज अल्पसंख्यकों की भाषा हो, जबकि भाषाएं आमतौर पर अपने को ऐसी दीवारों में कैद नहीं करतीं.
इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सम्मेलन की दलील को अस्वीकार्य करार देकर सम्मेलन की याचिका खारिज कर दी तो भी उसने सद्भावना दिखाकर उर्दू से दुश्मनी का अंत करने के बजाय सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर दी. वह तो भला हो सर्वोच्च न्यायालय का कि उसके तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश आरएम लोढ़ा की अध्यक्षता वाली पांच जजों की पीठ ने चार सितंबर, 2014 को सम्मेलन की अपील खारिज कर दी और साफ कह दिया कि संविधान का अनुच्छेद 345 हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं को दूसरी आधिकारिक भाषा का दर्जा देने से नहीं रोकता.

संविधान की मूल भावना के अनुसार ही, देश के भाषाई कानून कठोर नहीं, बल्कि भाषाई पंथनिरपेक्षता का लक्ष्य पाने के लिए बहुत उदार हैं.
यकीनन, सम्मेलन द्वारा 25 सालों तक लड़ा गया उक्त मुकदमा व्यर्थ ही था क्योंकि प्रदेश में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाए जाने से उर्दूभाषियों को थोड़ी सहूलियतें भले मिलने वाली थीं, हिंदी का कोई अहित होने नहीं जा रहा था. इसलिए सम्मेलन से 'बड़ा दिल' दिखाने की अपेक्षा की जाती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया.

हिंदी को हिंदू और हिंदुस्थान से जोड़कर बड़ी भाषा बनाना चाहने वालों के पास तो वैसे भी ऐसा कोई बड़ा दिल नहीं है. वे विभिन्न भाषाओं में दूरियां बढ़ाने में ही अपनी सुरक्षा देखते हैं. सो, कई लोग ठीक ही कहते हैं कि ऐसे प्रेमियों के रहते हिंदी को दुश्मनों की भला क्या दरकार?

सवाल है कि इन 'दुश्मनों' को क्योंकर समझाया जाए कि हिंदी का भविष्य अंग्रेजी जैसे एकाधिकार के मंसूबे पालकर दूसरी भारतीय भाषाओं की हेठी करने से नहीं, उनसे बड़ी बहन जैसा बर्ताव करके अपनी ज्ञान-संपदा से उन्हें और उनकी ज्ञान-संपदा से खुद को लाभान्वित करने से ही बेहतर होगा.
हां, इसकी शर्म महसूस करने से भी कि आजादी के 75 साल बाद भी ज्ञान-विज्ञान, इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी और गणित आदि की पढ़ाई की बेहतर पाठ्यपुस्तकें कौन कहे, बेहतर अनुवाद भी क्यों नहीं सुलभ है और क्यों दीप्ति जैसे छात्र इसके बावजूद हिंदी को अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई का माध्यम बनाते हैं तो प्रशंसा करने के बजाय उनका मजाक उड़ाया जाता है- इतना कि उन्हें जीने से मर जाना बेहतर लगने लगता है.

लेकिन लगता नहीं कि अभी ज्योतिष को विज्ञान सिद्ध करने में जमीन-आसमान एककर ग्रंथ पर ग्रंथ लिख रहे 'हिंदी वाले' इसकी किंचित भी शर्म महसूस करेंगे.

बनारस रा मगर दीदस्त दर ख़्वाब...

बनारस- गलियों का शहर, मंदिरों का शहर, रबड़ी-लस्सी का शहर, हींग कचौरियों का शहर, भीड़ का शहर, देश के कोने-कूचों से आए श्रद्धालुओं का शहर, सुदूर देशों के सैलानियों का शहर, बनारसी कपड़ों का शहर, गंगा के अनगिनत घाटों का शहर, मोक्ष का शहर, राजाओं का शहर, सड़क किनारे हाथ पसारे याचकों का शहर, गति का शहर, घंटों ठहरे ट्रैफिक का शहर, सत्ता का शहर, विद्या का शहर...

THE CORE IAS

न जाने ऐसे कितने ही विशेषण बनारस को उत्तर भारत का एक ऐसा शहर बना देते हैं, जिसे चाहकर भी अनदेखा नहीं किया जा सकता. मिर्ज़ा ग़ालिब ने भी इस ऐतिहासिक शहर से प्रभावित हो, फ़ारसी में एक मसनवी 'चराग़-ए-दैर' नाम से लिखी थी और बनारस को दुनिया के दिल का नुक्ता माना था. मसनवी में ग़ालिब लिखते हैं:

'कि मी आयद ब दावा गाह ए लाफ़श
जहानाबाद अज़ बहर ए तवाफ़श.
बनारस रा मगर दीदस्त दर ख़्वाब
कि मी गरदद ज़ नहरश दर दहन आब.'

(ये वो फ़ख्र करने वाली जगह है, जिसके चक्कर काटने ख़ुद दिल्ली भी आती है. शायद दिल्ली ने बनारस को ख़्वाब में देखा है, तभी तो उसके मुंह में नहर का पानी भर आया है.)
गंगा के अथाह विस्तार के किनारे बसा बनारस उर्फ वाराणसी, उत्तर प्रदेश के दक्षिणी-पूर्वी हिस्से में फैला एक बड़ा शहर है. वाराणसी, जिसे प्राचीन समय में काशी कहते थे, का नामकरण ही गंगा की दो सहायक नदियों, वरुणा और असी जिनका संगम यहां होता है, के योग से किया गया है. वरुणा, तो आज भी बनारस के उत्तरी भाग में बहती है और दक्षिणी भाग में बहने वाली असी, के नाम पर ही असी घाट गंगा के प्रमुख घाटों में से एक है.

जिस तरह नदियों के किनारे सभ्यताएं अपना निर्माण करती हैं, उसी आधार पर यह माना जाता है कि बनारस भी विश्व के उन प्राचीनतम शहरों में हैं जहां सभ्यताएं सदैव बसती रहीं हैं. तकरीबन 4,000 साल पुरानी एक शहरी सभ्यता के भग्नावशेष वाराणसी के बभनियांव में अभी हाल ही में मिले हैं तो वहीं महाजनपदों के युग में काशी एक महत्वपूर्ण और विशाल महाजनपद रह चुकी थी.
भगवान बुद्ध ने अपना पहला उपदेश वाराणसी के पास ही सारनाथ में दिया था. इस प्रकार, आरंभ से ही बनारस धर्म, संस्कृति और व्यापार के प्रमुख केंद्र के रूप में जाना जाता रहा है.

शैव मत के केंद्र के रूप में आदि शंकराचार्य ने आठवीं शताब्दी में इसे प्रसिद्ध किया और शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक काशी विश्वनाथ बनारस में ही स्थित है, जो हिंदुओं के प्रमुख तीर्थों में से एक माना जाता है. एक बड़े से भू-भाग में फैले विश्वनाथ मंदिर के वर्तमान स्वरूप के निर्माण का कार्य इंदौर की रानी अहिल्याबाई होल्कर के कार्यकाल में शुरू हुआ. मंदिर परिसर से जुड़ा हुआ ही प्रसिद्ध ज्ञानवापी मस्जिद भी है जिसे मुग़ल शासक औरंगजेब ने बनाया था और एक बड़े वर्ग द्वारा यह माना जाता है कि मस्जिद का निर्माण एक शिव मंदिर को ध्वस्त करके किया गया था.

इस प्रकार आधुनिक भारत में बाबरी मस्जिद-रामजन्मभूमि इत्यादि की तर्ज पर ही काशी विश्वनाथ मंदिर और ज्ञानवापी मस्जिद के सह-अस्तित्व को भी राजनीतिक-सांप्रदायिक रंग देकर कभी न खत्म होने वाले कानूनी विवादों की शक्ल दे दी गई है. पर जिस उद्देश्य के लिए मंदिर या मस्जिद होते हैं वह अपनी गति से अपनी रोज की नियमितता के साथ पूरे होते ही हैं. जहां मंदिर में भक्त कतारों में घंटों खड़े रहकर विश्वनाथ के दर्शन को लालायित रहते हैं, वहीं मस्जिद में भी नियम से नमाज़ पढ़ने वालों की भीड़ होती है.

मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन के कई बड़े और महत्वपूर्ण संतों और भक्तों की नगरी के रूप में बनारस विख्यात रहा. बनारस साहित्य की उर्वर भूमि रहा है. कबीर, रैदास से लेकर तुलसीदास ने भी अपने रामचरितमानस की रचना बनारस में ही की. आधुनिक समय में कुछ प्रमुख व्यक्ति जो साहित्य और कला से जुड़े हुए बनारस ने दिए, उनमें से भारतेन्दु हरिश्चंद्र, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकी नंदन खत्री, मुंशी प्रेमचंद, आगा हश्र कश्मीरी, जयशंकर प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, बेढब बनारसी, धूमिल, नामवर सिंह इत्यादि प्रसिद्ध हुए.
इस प्रकार, उत्तर भारत के एक प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र के रूप में बनारस को जाना जाता है, जहां धर्म, साहित्य, भक्ति, संगीत, कला का वह वृत्त बनता है जो पूरे हिंदुस्तान में एक ही स्थान पर कम ही देखने को मिलता है.

प्राचीन समय से ही शिक्षा के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध इस शहर में आधुनिक काल में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना पंडित मदन मोहन मालवीय ने सन 1916 में की. इससे पहले इसी स्थान पर थियोसोफिकल सोसाइटी की प्रमुख एनी बेसेंट ने सेंट्रल हिंदू कॉलेज की स्थापना की थी, जो आगे चलकर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का हिस्सा बना.

संगीत की दृष्टि से बनारस घराना, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की चुनिंदा परिपाटियों में से एक रहा है, जिसने संगीत के बड़े-बड़े पुरोधा, संगीत जगत को दिए हैं. शास्त्रीय संगीत में रसूलन बाई, गिरिजा देवी, सिद्धेश्वरी देवी, राजन-साजन मिश्रा तो प्रसिद्ध हुए ही, यह घराना अपने तबला वादन की परंपरा के लिए भी प्रसिद्ध रहा है. समता प्रसाद, लच्छू महाराज, किशन महाराज इस दृष्टि से प्रमुख तबला वादक हुए.

शास्त्रीय नृत्यों में प्रमुख, कथक, के लिए भी बनारस घराना अपनी विशिष्ट शैली और प्रस्तुति के लिए जाना जाता है. काशी के राजदरबार से संरक्षण प्राप्त इस नृत्यशैली को काशी घराना भी कहा जाता है. पंडित कालका प्रसाद जो इस घराने के पहले नर्तकों में से थे को स्वयं काशी नरेश से संरक्षण और अनुदान प्राप्त होता था. गुरु जानकीप्रसाद द्वारा शुरू किए गए इस घराने में ही आगे चल कर सितारा देवी, पंडित बिरजू महाराज, जितेंद्र महाराज, शोभना नारायण जैसे विश्वप्रसिद्ध कथक नर्तक हुए.

इन सबके साथ ही यह शहर गंगा के घाटों के लिए भी प्रसिद्ध है. 84 से भी ज़्यादा घाट गंगा की लंबाई के समानांतर, किनारों पर बनाए गए हैं, जिनकी ऊंची-ऊंची सीढ़ियां गंगा स्नान करने आए श्रद्धालुओं और गंगा आरती देखने आए दर्शनार्थियों से खचाखच भरी रहती हैं. दशाश्वमेध घाट इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जो काशी विश्वनाथ मंदिर की तरफ जाता है, और जिसकी गंगा आरती देखने आई भीड़ कुंभ मेलों की याद दिला देती है.

कहते हैं जो जीते जी काशी नहीं आ पाते, प्रायः मरने के बाद आते हैं, क्योंकि गंगा के किनारे बसे घाटों पर अंतिम क्रिया होना, हिंदू मिथकों के हिसाब से, सीधे मोक्ष की ओर ले जाता है. मणिकर्णिका घाट पर रात के निविड़ अंधकार में होते दाह संस्कार अनंत आकाश और अथाह बहती गंगा के विस्तार में मनुष्य की क्षणभंगुरता और उसकी लघुता का आभास दिलाते-से लगते हैं. गौर से देखने पर इस घाट से लगी गंगा की रंगत भी दिन-रात होने वाले दाह संस्कारों से उड़ती राख से मिल थोड़ी काली लगती है.

बनारस की लोकप्रियता दक्षिण भारत से आने वाले श्रद्धालुओं में इतनी अधिक है कि इनसे सही से संवाद किया जा सके, इसके लिए यहां के दुकानदारों ने भी तेलुगु, तमिल जैसी भाषाएं सीख लीं हैं, जो विशेषकर उत्तर-भारत में विरल है. कतारों में बड़े-बड़े समूहों में चलते हुए भक्त लगभग बनारस के हर मंदिर, हर घाट के परिवेश का सबसे प्राकृतिक हिस्सा लगते हैं. कई विशेष अवसरों पर तो अकेले काशी विश्वनाथ के परिसर में ही एक दिन में दस लाख से ज्यादा श्रद्धालु उमड़ पड़ते हैं.
जहां तक नज़र जाती है वहां मानो जनसमुद्र ही बहता चला आता हो. पूरे शहर के सामाजिक-आर्थिक संदर्भ में इस प्रकार देश-विदेश से आए भक्तों और सैलानियों का प्रमुख स्थान रहता है. महंगे-से-महंगे होटलों के साथ ही बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं पूरे शहर में जाल की तरह बिछी हुई हैं जो शहर की अर्थव्यवस्था का ज़रूरी हिस्सा हैं. इस दृष्टि से दुकानों की लंबी-लंबी कतारें भी सड़क के दोनों ओर मन लुभाने की हर वो चीजें जुटा लेती हैं, जिस पर न चाहते हुए भी नजर पड़ ही जाती है. बड़े धीर संयमी ही शायद इन दुकानों के मायावी इंद्रजाल से बच कर चल पाते हैं.

बनारसी साड़ियों के लिए विश्वप्रसिद्ध शहर में फुटपाथ की दुकान भी असली बनारसी कपड़े बेचने का दावा करती नजर आती है. सोने और चांदी की महीन जरी का काम, जब चटख रंगों की सिल्क और चंदेरी के कपड़ों पर जाल और बूटियों की तरह उभरता है, तो बनारसी साड़ियों और दुपट्टों पर की गई दस्तकारी देखने लायक होती है. जितना बारीक और घना काम, उतना ही ज़्यादा दाम. पर बुनकर की कुशल और साफ कारीगरी को देखते हुए दिया जाने वाला दाम भी कम लगता है.

सच ही कहा गया है, एक कलाकार की कला का मूल्य तो कोई नहीं चुका सकता. बनारसी काम भी तो पारंपरिक रूप से हथकरघे पर की जाने वाली कष्टसाध्य कला ही है, जिसे बुनकरों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने परिवार में करती चली आ रही है.

हालांकि, गुरु-शिष्य परंपरा का सुंदर नमूना जो विरासत में सिखाई जाती है, उसके धीरे-धीरे खत्म होते जाने की प्रक्रिया भी इसी शहर में देखी जा सकती है. बिजली से चलने वाली मशीनों ने हाथ और धैर्य का जब से स्थान ले लिया है, तब से पारंपरिक बुनकरों की स्थिति दुखद है जिन्हें न केवल गिरते दामों से मुकाबला करना पड़ता है, बल्कि प्रामाणिक काम की दौड़ में भी शामिल होना पड़ता है.

बनारस, के सामाजिक परिवेश में आज भी काशी नरेश की पदवी पर आसीन महाराज और उनके राज परिवार की उपस्थिति का अनुभव किया जा सकता है, हालांकि अब सारी राजशाही महज़ नाम की ही है, और उत्तरोत्तर आने वाले राज-परिवार अपने पूर्वजों से आदर्शों और सामाजिक प्रतिष्ठा में कहीं दूर गिर चुके हैं. पर रामनगर के क़िले के एक बड़े हिस्से को, जिसे संग्रहालय में तब्दील कर दिया गया है, देखने दूर-दूर से सैलानी आते हैं.

नारायण साम्राज्य के प्रमुख बलवंत सिंह ने साल 1740 में मुग़लों से अपनी संप्रभुता सिद्ध की थी और स्वयं को काशी नरेश घोषित किया. 1911 में एक रजवाड़ा के रूप में राजकीय पहचान मिलने के बाद रामनगर ही काशी नरेश की राजधानी बना. काशी नरेश जो शहर के सांस्कृतिक प्रतिनिधि थे, वाराणसी के सामाजिक पहचान के भी प्रतीक थे, और सर्व-सम्मानित थे. आधुनिक समय में काशी नरेश विभूति नारायण सिंह जन-सामान्य में सबसे अधिक प्रचलित और प्रतिष्ठित महाराजा हुए. पर उनके बाद आने वाली पीढ़ी में संपत्ति और संसाधनों पर अधिकार की लड़ाइयों में काशी नरेश की भावात्मक पदवी से जुड़ी लोगों की आस्था का पूरा लोप आज के समय में दिखाई पड़ता है.

इसी का प्रमाण है कि रामनगर का क़िला जो कभी अपनी बुलंदी के लिए जाना जाता था, वह अब भग्नावशेष से कुछ ही बेहतर स्थिति में है. यह शहर के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को न सहेजे जाने की स्थिति का ही प्रतीक है, जिसे वर्तमान सरकारें भी नज़रअंदाज कर चुकी हैं.
बनारस को उसकी भीड़ भी मशहूर बनाती है. सड़क पर प्रशासन द्वारा मुस्तैद किए गए पुलिस और ट्रैफिक पुलिस के मौजूद होने के बावजूद आवागमन की कोई सुव्यवस्थित योजना यहां नहीं दिखती. गोदोलिया चौक और नंदी चौराहे के पास से मानो सभी दिशा में यातायात चलता रहता है, और किसी को रोका नहीं जा सकता. पुलिस भी बस वहीं खड़े यह पूरी गतिविधि देखती रहती है, क्योंकि लोगों के बहते समुद्र को थाम पाना असंभव हो जाता है.

ज्यादा-से ज्यादा बस यह ताक़ीद कर दी गई है कि एक निश्चित सीमा के बाद गाड़ियों और ऑटो-रिक्शा के प्रवेश करने पर रोक लगा दी गई है. पर इससे कुछ विशेष फ़र्क नहीं पड़ता और सड़कों पर दिन के हर पहर लंबे जाम लगे रहते हैं. भीड़ और लंबी जाम का आलम यह है कि गोदोलिया से महज़ आठ किलोमीटर की दूरी पर बसे सारनाथ पहुंचने में यात्रियों को दो घंटे लग जाते हैं. पर इस भीड़-भाड़ और ठहरे हुए शहर में भी जीवन अपनी गति से ज़ारी रहता है.
शहर के रिहायशी इलाकों तक तो केवल गलियां ही गलियां जाती हैं. एक गली के भीतर दसियों गलियां फूटती हैं. पूरा बनारस गलियों में बंटा दिखाई पड़ता है, और इसलिए अपनी गलियों के लिए विख्यात भी है. महानगरों में जिस तरह मोहल्लों के बीचों-बीच पार्क इत्यादि की व्यवस्था कर दी जाती है, बनारस की गालियां ही पार्कों का काम करती दिखाई पड़ती हैं. रिक्शों और गाड़ियों के लगातार गुजरते रहने के बीच ही, बच्चों के क्रिकेट भी साथ-ही-साथ इन गलियों में चलते रहते हैं. मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ियां गलियों में ही अपनी आम-सभा लगाती हुई दिख जाएंगी और मिर्चें और बड़ियां भी सड़कों पर ही सूखते दिखेंगे.

इसलिए बनारस गति और ठहराव का अनोखा मिश्रण है. यातायात भले ही मंथर गति से चलता हो, जीवन की गति अबाध है. जीवन की गति की झलक आधुनिकता के दबावों में भी दिखलाई पड़ती है. किसी भी आधुनिक शहर की तरह यहां भी

भूमंडलीकरण के प्रभाव से बड़े-बड़े ब्रांड और दुकानें अपनी जड़ें जमा चुकी हैं. इसलिए अगर बनारसी पूड़ियों और रबड़ियों के लिए मशहूर शहर में, मैकडोनॉल्ड के बर्गर और डोमिनोज़ के पिज़्ज़ा भी धड़ल्ले से मिले तो कोई बड़ी बात नहीं.
और यह भी असाधारण मंज़र नहीं कि इन बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय दुकानों के अंदर-बाहर भीड़-ही-भीड़ दिखाई पड़े. कहने का मतलब यह कि शहर और उसकी सामाजिकता भी परिवर्तन के, समय के दबावों के आगे बदलती रहती हैं और इस तरह इनकी शिनाख्त के जो चिह्न थे, ज़रूरी नहीं की उसी प्रकार मौजूद हों. अक्सर शहरों की निशानियां भी बदल जाया करती हैं.

बनारस की एक गली, काशी विश्वनाथ मंदिर के पीछे का एक बाज़ार और एक गली में बने मंदिर. (फोटो: द वायर)
बनारस वर्तमान सत्ता का भी शहर है. इसलिए तथाकथित विकास की गति किसी भी आम भारतीय शहर से बेहतर है. रेलवे के स्टेशन भव्य बनाए हुए हैं, बड़ी-बड़ी कंपनियों की आवाजाही बढ़ी हुई है, रिहायशी परियोजनाएं अपने-अपने चरणों में विकसित दिखती हैं और सड़कों पर सत्ता के चिह्न भी हर कहीं दृश्यमान हैं. कुल मिलाकर सत्ताधीशों के शहर होने से जितनी भौतिक सुविधाएं किसी शहर को मिल सकती हैं, वह हमें बनारस में सहज ही दिख जाया करती हैं.
केंद्र सरकार द्वारा शुरू किए गए काशी विश्वनाथ कॉरीडोर प्रोजेक्ट के तहत गंगा के घाटों का सौंदर्यीकरण और उन्हें मंदिर से जोड़े जाने का काम दर्शनीय हुआ है. पर तमाम परियोजनाओं और भौतिक प्रयासों के बावजूद भी अपने घाटों से कोसों दूर चली गई गंगा के पानी को तो नहीं लौटाया जा सकता. प्रकृति जो अब कंक्रीट के जंगलों में बदली-बदली-सी है उसे तो हरे-भरे सुरम्य जंगलों से फेरा नहीं जा सकता.

बहरहाल,अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप की 2 महीनों की यात्राओं से Following the Equator (1897) किताब लिखी, बनारस के संदर्भ में जब लिखते हैं 'Benares is older than history, older than tradition, older even than legend, and looks twice as old as all of them put together', तब यह वाकई लगता है कि 100 साल से भी अधिक समय पहले लिखे गए इस विश्लेषण को आज भी तो उतना ही सटीक पाया जा सकता है.
जहां हर गली के भीतर सौ गलियां फूट जाएं और हर कंदरा, हर खोह में किसी न किसी देवी-देवता की मूर्ति दिख जाए, जहां बड़ी-बड़ी मटकियों में हाथों से घंटों मथकर दही की लस्सी बनाई जाए, जहां घाटों पर स्थित भवन सालों पुराने हों और जिसमें जीवन उसी प्रकार चलता हो, जहां जीवन की गति ही एक धीमी लय पर चलती हो, तब यह एकबारगी विश्वास हो जाता है कि हम हैं किसी प्राचीन शहर में ही. जिसे आधुनिकता ने, समय की धारा ने ऊपर-ऊपर से ही बदला है, पर जिसकी रूह शायद उन्हीं महाजनपदों की है, या शायद उससे भी पहले किसी आदिम सभ्यता की.
कवि केदारनाथ सिंह की बनारस पर लिखी प्रसिद्ध कविता 'बनारस' अब तक कही बातों को ही लय में बांधती प्रतीत होती है:
'इस शहर में धूल
धीरे-धीरे उड़ती है
धीरे-धीरे चलते हैं लोग
धीरे-धीरे बजाते हैं घंटे
शाम धीरे-धीरे होती है
यह धीरे-धीरे होना
धीरे-धीरे होने की एक सामूहिक लय
दृढ़ता से बांधे है समूचे शहर को
इस तरह कि कुछ भी गिरता नहीं है
कि हिलता नहीं है कुछ भी
कि जो चीज़ जहां थी

वहीं पर रखी है
कि वहीं पर रखी है तुलसीदास की खड़ाऊं
सैकड़ों बरस से.'
(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं.)

लौटना है "व्हाट झुमका" से झुमका गिरा रे" तक

अभी कुछ दिनों पहले एक फिल्म आई थी, "की और रानी की प्रेम कहानी" उसका एक गीत जो तुरंत ही लोगों की जुबान पर चढ़ गया वो था "व्हाट झुमका"। इस गीत के साथ ही जो कालजयी गीत याद आया, वो था मेरा साया फिल्म का "झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में"। मदन मोहन के संगीत, राजा मेहंदी आली खान के गीत और आशा भोसले जी की आवाज में ये गीत आज भी लोगों की जुबान पर चढ़ा हुआ है। इसके साथ ही द्विटर पर बहस भी छिड़ गई कि इन दोनों में से बेहतर कौन है, और निश्चित तौर पर पुराना गीत विजयी हुआ। उसने ना सिर्फ अपने को इतने समय तक जीवित रखा बल्कि हर नए प्रयोग के बाद वो गीत याद लिया। गीत-संगीत के अतिरिक्त इसके एक कारण के तौर पर गीत के फिल्मांकन में हमारी ग्रामीण संस्कृति, लोक से जुड़ाव और स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग।

जब में इसी तराजू पर तौलती हूँ तो मुझे लगता है कि हमारी हिंदी भाषा को भी "व्हाट झुमका" से उसी देसी मिठास की ओर लौटने की जरूरत है। यूँ भाषा एक नदी कि तरह होती है और बोलियाँ, बानियाँ उस नदी को जीवंत करता परिस्थिति तंत्र है। क्योंकि भाषा सतत प्रवाहशील और जीवंत है तो उसमें विदेशी शब्दों की मिलावट को गलत नहीं कहा जा सकता क्योंकि वो उसकी सार्थकता और प्रासंगिकता को बढ़ावा देते है। आज भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी में अंग्रेजी ही नहीं फ्रेंच, कोरियन, स्पैनिश शब्दों का मिलना उसके प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है। आम बोलचाल की भाषा के आधार पर साहित्य में भी नई वाली हिन्दी का समावेश हुआ और तुरंत ही लोकप्रिय भी हुई। इसने भाषा के साथ- साथ साहित्य की पुरानी शैली, शिल्प और उद्देश्य की परिधि को भी लाँघा ।

किसे अंतर्राष्ट्रीय भाषा की जरूरत है?

नई किताबों पर हिंगलिश की फसल लहलहा रही है। इस हिंगलिश के लोकप्रिय होने की वजह हमें अपने घरों में खंगालनी होगी। हाल ये है कि ना अंग्रेजी ही अच्छी आती है ना हिंदी। शहरी क्षेत्र में शायद ही कोई सा घर अब बचा हो जहाँ पाँच पंक्तियाँ पूरी-पूरी हिंदी में बोली जाती हों। यही नहीं हमारी टर को सब्जी में गार्तिक बिल्कुल पसंद नहीं है, जैसे हास्यास्पद प्रयोग भी सुनने को खूब मिलते हैं। किसी दीपावली पर मैंने अपनी घरेलू सहायिका के लिए दरवाजा खोलते हुए कहा, "दीपावली की शुभकामनायें"। उसने मेरी तरफ देखते हुए कहा, "हैप्पी दीपावली भाभी, हैप्पी दीपावली।" गली की सफाई करने वाला "उस्टबिन" बोलता है, सब्जी वाला सेब को एप्पल ही कहता है।

जिसे जितना आत्म विश्वास अपने ऊपर होगा उतना ही आत्म विश्वास अपनी भाषा पर होगा

अक्सर अंग्रेजी के पक्ष में ये तर्क दिया जाता है कि ये अन्तरराष्ट्रीय भाषा हे और इसे सीखना विकास के लिए जरूरी है।परंतु हमारे सब्जी वाले, गली की सफाई करने वाले, घरतु, महायिकाओं, आम नौकरी करने वाले मध्यम वर्गीय परिवारों को कौन से अन्तराष्ट्रीय आयोजन में जाना है? यह मात्र हमारी गलत परिभाषाओं का नतीजा है. जहाँ सुंदर माने गोरा और पढ़-लिखा माने अंग्रेजी आती है माना लिया गया।

भाषा होती है का कला और संस्कृति की वाहक

भाषा केवल भाषा नहीं होती, वो कोई निर्जीव वस्तु नहीं है। वो कला संस्कृति, जीवन शैली की वाहक होती है। जब हम हिन्दी के पर अंग्रेजी चुनते हैं तो हम लस्सी के पर पेप्सी चुनते हैं, समोसे के पर बर्गर चुनते हैं और आध्यात्म को छोड़कर क्लब संस्कृति चुनते हैं। बाजार को इससे फायदा है वो अंग्रेजी के रैपर में ये सब बेच रही है। हर देश, हर संस्कृति एक मूल सोच होती है। हम "थोड़े में संतोष" करने वाली जीवन शैली के बदले में सुख सुविधाओं के बीच अकेलापन खरीद रहे हैं। हम ना सिर्फ

स्वयं उस दौड़ में दौड़ रहे हैं बल्कि हमने अपने उन बच्चों को भी इस रेस में दौड़ा दिया है जिनहोने अभी अपने पाँव चलना भी नहीं सीखा है।

लिपि को भी संरक्षण की जरूरत है

बाल साहित्य पर विशेष ध्यान देना होगा। ताकि बच्चे प्रारंभ से ही अपनी भाषा से जुड़े रहें।आज एक बड़ा खतरा हिंदी की देवनागिरी लिपि को भी हो गया है। आज इंटरनेट पर यू ट्यूब पर, व्हाट्स एप पर नई पीढ़ी हिन्दी में बोलती तो दिखाई दे रही है पर लिपि रोमन इस्तेमाल करने लगी है।। इससे देवनागिरी लिपि को खतरा हुआ है। हमारा प्रचुर साहित्य, हमारा आध्यात्म, दर्शन जो हमारे भारत की पहचान है, अंग्रेजी में अनुबाद हो कर हमारी अगली पीढ़ियों तक पहुंचेगा। अनुवादका की गलती पीढ़ियों पर भारी पड़ेगी। भाषा को बचाना केवल भाषा को बचाना संस्कृति, संस्कार, देश की मूल भावना को बचाना है, उस साहित्यिक संपदा को बचाना है जिसमें हमारी मिट्टी से जुड़ी जीवन गाथाएँ है। कोई भी भाषा सीखना बुरा नहीं है। पर जो समर्थ हैं, दो चार भाषाएँ जानते है, हिन्दी के प्राचीन वैभव को उत्पन्न कर सकते हैं। इस काम का बीड़ा उन पर कहीं ज्यादा है। उन्हें देखकर आम जन भी अपनी भाषा पर गर्व कर पाएगा। जिन-जिन कामों को करने में अंग्रेजी की जरूरत नहीं है, उनके प्रश्न पत्र हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में होने चाहिए। रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर उपलबद्ध कराने होंगे। यू ट्यूब और अब फेसबूक इंस्टाग्राम पर भी ये के साधन उपलबद्ध होने के कारण कितने लोग हिन्दी की ओर लौटे हैं। लेकिन इतने से काम नहीं चलेगा। साहित्य में हमे बोलियों, लोक संस्कृति, और हिदी के साथ तत्सम शब्दावली युक्त भाषा को भी लाना होगा। ये काम साहित्य कर सकता है। कुछ साहित्यकारों ने इस दिशा में लौटना शुरू कर दिया है।

हिन्दी के संदर्भ में अक्सर नए और गंभीर प्रयोग करने आगे आए साहित्यकारों को बाजार का भय दिखा दिया जाता है। हम ये सोच कर हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठ सकते कि आगे आने वाले समय में पाठक गरिष्ठ और बोली-बानियों वाली हिन्दी से ही दूर हो जाएगा।

बाल पत्रिकाओं की भूमिका और दायित्व

–देवेन्द्र कुमार 'देवेश'

वे पत्रिकाएँ जिनमें बच्चों के अनुकूल साहित्य प्रकाशित होता है, बाल पत्रिकाएँ कही जाती हैं। मनोरंजन, शिक्षा और बच्चों की भावना - इन तीन बिंदुओं के इर्द-गिर्द ही बाल पत्रिकाओं के उद्देश्य का निर्धारण उनके संपादकों द्वारा होता रहा है। बाल पत्रिकाओं में जो कुछ भी प्रकाशित होता है, वह कमोबेश इन्हीं तीन दृष्टिकोणों से आप्लावित होता है। यह फिर एक अलग मुद्दा है कि प्रकाशकों का व्यावसायिक दृष्टिकोण भी इस निर्धारण में अपना दखल रखता है।

साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन ही है - यह मानने वालों की कमी नहीं है। ऐसे लोग यह भी मानते हैं कि बच्चों की पत्रिकाओं का उद्देश्य मनोरंजन ही होना चाहिए, क्योंकि बच्चा हर कहीं परिवार में, समाज में, कक्षा में विविध प्रकार की शिक्षाओं से घिरा होता है तथा उन्हें शिक्षित करने के असामान्य तरीके उन्हें अन्यमयस्क बनाते हैं।

दूसरी तरफ़, एक ऐसा वर्ग भी है जो मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा को भी बाल पत्रिकाओं का उद्देश्य मानता है। इस वर्ग की नज़र में, ठीक है कि बच्चों का मनोरंजन हो, लेकिन अंततः बच्चों को शिक्षा की सीख की ज़रूरत है, ताकि वे समाजानुकूल बन सकें। इस प्रकार यह वर्ग मानता है कि बाल पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य शिक्षा ही है, मनोरंजन तो उस पर लिपटा हुआ आकर्षक रैपर मात्र है।

एक तीसरा वर्ग भी है, जो बाल पत्रिकाओं के उद्देश्य का निर्धारण 'बच्चों की भावनाओं' के इर्द-गिर्द करना चाहता है। इसके अनुसार बच्चों को मनोरंजन और शिक्षा, दोनों की ज़रूरत तो है, लेकिन वे उनकी रुचि, परिवेश और भावना के अनुकूल हों, यह

सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। आज के बच्चों का परिवेश क्या है? वे वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, लोकतांत्रिक समाज में रह रहे हैं तथा उनकी निष्कलुष भावना सबको समान नज़रिए से देखना चाहती है। ऐसे में उनके नज़रिए को विकसित करने की आवश्यकता है, न कि इसे कुंद करके उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के विपरीत अलग नज़रिया प्रतिस्थापित करने की।

पूर्वोक्त तीन बिंदुओं के अंतर्गत ही मुझे पिछले पाँच वर्षों के दौरान प्रकाशित बाल पत्रिकाओं की भूमिका पर विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।
मनोरंजन बाल साहित्य में मुख्यतः दो रसों का परिपाक होता है... हास्य रस और अदभुत रस। इनसे जुड़ी बाल रचनाएँ हैं- चुटकुले, हास्य से परिपूर्ण कहानियाँ, कार्टून और चमत्कारिक ह्यभूत-प्रेत, राक्षसों, परियों और अदभुत घटनाओं वालीह्व कहानियाँ या ऐसी कहानियों पर चित्रकथाएँ।

हास्य बाल साहित्य कमोबेश सभी बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं। यहाँ विशेष रूप से लोटपोट और मधु मुस्कान का नाम लिया जा सकता है। ये दोनों पत्रिकाएँ लंबे अरसे से निकल रही हैं। उन्होंने अपने नाम के अनुरूप ही बच्चों के लिए अधिकाधिक मनोरंजक सामग्री पेश करने का प्रयास किया है, जो चुटकुलों, हास्यकथाओं और चित्रकथाओं के रूप में हैं। बालहंस पत्रिका ने भी समय-समय पर हास्य रचनाओं का विशेष रूप से समायोजन किया है।

दूसरी तरफ़, कुछ इनी-गिनी पत्रिकाओं को छोड़कर प्रायः सभी बाल पत्रिकाएँ चमत्कारपूर्ण मनोरंजक बाल साहित्य का प्रकाशन नियमित रूप से करती हैं। इस संदर्भ में विशेष रूप से चंदामामा, गुड़िया, नव मधुवन, नन्हे सम्राट, दोस्त और दोस्ती तथा नंदन पत्रिकाएँ उल्लेखनीय हैं। इन पत्रिकाओं ने बड़ी संख्या में भूत-प्रेत, राक्षस और परियों से जुड़ी रचनाएँ प्रकाशित की हैं, जिनमें जादुई और चमत्कारपूर्ण घटनाओं का आधार लिया गया है। इस बीच नंदन और बालहंस ने परी कथा विशेषांक भी प्रस्तुत किए हैं।

शैक्षिक बाल साहित्य के मुख्यतः तीन रूप हैं - सूचनात्मक, विचारात्मक और भावनात्मक। सूचनात्मक रचनाएँ वे हैं, जिनमें सीधे-सीधे सूचनाएँ दी जाती हैं। ऐसी रचनाएँ 'क्या आप जानते हैं?' 'इसे भी जानें' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत चित्ररहित या चित्रसहित प्रकाशित होती हैं। विचारात्मक शैक्षिक साहित्य के अंतर्गत विविध संदर्भों से जुड़े जानकारीपूर्ण आलेख आते हैं। जबकि भावात्मक शैक्षिक बाल साहित्य वे रचनाएँ हैं, जिनके द्वारा बच्चों की मनोभावना को कुरेद कर उन्हें मनोवांछित शिक्षा या सीख देने का प्रयास किया जाता है।

THE CORE IAS

सूचनात्मक शैक्षिक साहित्य प्रायः सभी बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं। जबकि विचारात्मक बाल साहित्य प्रकाशित करने वाली कुछेक पत्रिकाएँ ही हैं। इस संदर्भ में प्रमुखतः सुमन सौरभ, बालहंस, बाल भारती, समझ झरोखा, बालवाणी, शिशु सौरभ और चकमक का नाम लिया जा सकता है। इस मायने में चकमक विशिष्ट है। यह बच्चों के लिए संभवतः एकमात्र विज्ञान पत्रिका है। यह एक महत्वपूर्ण शैक्षिक पत्रिका है, जिसमें सरल ढंग से विज्ञान संबंधी जानकारियाँ दी जाती हैं, जो सहज ही बच्चों तक संप्रेषित हो जाती हैं।

भावात्मक शैक्षिक साहित्य सभी बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित होता है, हालाँकि व्यक्ति सर्वदा सीखता ही रहता है। परंतु बच्चों के बारे में ख़ास कर यह धारणा रूढ़-सी हो गई है कि उन्हें तो बस सीखना ही सीखना है। इसलिए इस तरह का साहित्य कमोबेश सभी पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं, जिनमें कविता, कहानी या एकांकी के ज़रिए कहीं न कहीं किसी न किसी तरह की शिक्षा प्रदान किए जाने का उद्देश्य होता है। यह ज़रूर है कि इस तरह की साहित्य-रचना में सर्वदा यह सावधानी बरती जाती है कि

जो भी शिक्षा हो वह सहज, सरल और रोचक ढंग से रचना में पिरोई जाए, ताकि बच्चों को वह बोझिल न करें। फिर भी ज्ञान-विज्ञान की जानकारियों से बोझिल कुछेक रचनाएँ आ ही जाती हैं।

बच्चों की भावनाओं से जुड़ा बाल साहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हो रहा है। यहाँ उल्लेखनीय है कि बच्चों की भावनाओं जुड़ा बाल साहित्य से मेरा मतलब ऐसे बाल साहित्य से है जो बड़ों की आरोपित इच्छाओं और मान्यताओं से मुक्त और बच्चों की नैसर्गिक मनोभावना से संपृक्त हो। ऐसा साहित्य अधिकाधिक रचा जाए और वह प्रकाशित होकर बच्चों तक पहुँचे। यह एक लंबे समय से बाल साहित्य-समालोचकों के बीच गंभीर चर्चा का विषय रहा है। इस चर्चा से जुड़े समालोचकों ने अपने द्वारा संपादित बाल पत्रिकाओं में ऐसे बाल साहित्य को प्रमुखता से सामने लाने के प्रयास भी किए हैं। कुल मिलाकर इन चर्चाओं और प्रयासों का यही प्रभाव रहा है कि किसी अन्य बाल पत्रिका के लिए ऐसा साहित्य संपूर्णतः या अंशतः प्राथमिकता तो नहीं बना, परंतु बिल्कुल हाशिए पर भी नहीं गया। ऐसे साहित्य से संपादकों को विरोध नहीं है। यह साहित्य प्रायः बाल पत्रिकाओं में छिटपुट रूप से छपता रहता है।

'बच्चों की भावना' का आधार लेकर ही पिछले दशक में एक रचनात्मक आंदोलन भी बाल साहित्य-जगत में चर्चा का विषय रहा है। यह आंदोलन है... बच्चों की भावना से जुड़ा बाल-साहित्य अधिकाधिक रचा जाए, इसके लिए बाल किशोरों को रचना-क्रम से जोड़ा जाए। उनकी रचनात्मकता को प्राथमिकता और महत्ता के साथ सामने लाया जाए। पिछले दशक में इस आंदोलन का वैचारिक आधार तैयार करने का श्रेय 'किशोर लेखनी' पत्रिका को जाता है। 'किशोर लेखनी' ने इस संदर्भ में अपने अंक निकाले हैं और इस वैचारिक चर्चा में साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों को भी शामिल किया है। विभिन्न आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच इसने बाल किशोरों की रचनात्मकता की महत्ता के लिए संघर्ष किए हैं। इसकी वैचारिक अवधारणा के अनुसार 'बाल-किशोर' अपनी भावनाओं और समस्याओं के सबसे ज़्यादा क़रीब होते हैं, इसलिए उनसे जुड़ा श्रेष्ठ बाल साहित्य उनकी लेखनी में निश्चय ही पाया जाता है।'

यों बाल पत्रिकाओं या बाल परिशिष्टों में बाल किशोरों की घुसपैठ प्रतियोगिताओं के माध्यम से होती रही है, परंतु 'किशोर लेखनी' ने यह सवाल उठाया कि प्रतियोगिताओं के माध्यम से बच्चों की रचनात्मकता का उचित प्रस्तुतीकरण नहीं हो पाता है, क्योंकि उनकी अधिकांश अच्छी रचनाएँ इस आधार पर प्रतियोगिताओं से हटा दी जाती हैं कि ये रचनाएँ हो ही नहीं सकतीं, जबकि प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए बच्चे अपनी रचनात्मकता की बेहतर से बेहतर प्रस्तुति करने के प्रयास करते हैं, ताकि वे सर्वश्रेष्ठ घोषित किए जाएँ। दूसरी तरफ़, यदि उनकी बेहतर रचनात्मकता प्रतियोगिताओं के माध्यम से स्थान पा जाती है तो वह प्रतियोगिताओं के अंतर्गत प्रकाशित होने के कारण समुचित महत्ता प्राप्त नहीं कर पातीं। यही कारण है कि 'किशोर लेखनी' ने बाल किशोरों की रचनात्मकता को प्रतियोगिताओं से इतर भी स्थान दिए जाने पर बल दिया।

व्यावहारिक रूप से बाल-किशोरों की रचनात्मकता को अधिकाधिक सामने लाने का श्रेय चकमक, बालहंस और समझ झरोखा को जाता है। इन पत्रिकाओं में छपी अधिकांश रचनाएँ बाल-किशोर वय के रचनाकारों द्वारा रचित होती हैं, हालाँकि प्रायः रचनाओं पर बड़ों की इच्छाओं, मान्यताओं के प्रभाव स्पष्ट नज़र आते हैं। फिर भी, बच्चों की निष्कलुष भावनाओं से जुड़ी रचनाएँ भी अवश्य आई हैं। चकमक द्वारा बच्चों की रचनाओं की संकलन पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की गई हैं। ये पत्रिकाएँ बच्चों की तमाम सृजनात्मकता को सामने लाने के प्रयास में निरंतर सक्रिय हैं।

उक्त आंदोलन से प्रायः बाल पत्रिकाएँ प्रभावित रही हैं। इस दौरान अख़बारों के परिशिष्टों पर भी बच्चों की रचनाओं ने प्रमुखता से स्थान पाया है। उक्त पत्रिकाओं के अलावा कुछ अन्य पत्रिकाओं ने भी बच्चों की रचनाओं के विशेषांक प्रकाशित किए हैं और सामान्य अंकों में भी उनकी रचनात्मकता को भी प्राथमिकता से स्थान दिया है। इस संदर्भ में बाल दर्शन, चमाचम और चौथी

दुनिया साप्ताहिक अख़बारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्रायः बच्चों की रचनात्मकता को सामने लाने के प्रयास किए हैं और उन्हें प्रेरित, मार्गदर्शित करना चाहा है। बाल दर्शन और चौथी दुनिया ने अपने बाल परिशिष्टों के संपादन तक बाल-किशोर वय के रचनाकारों से इसे कराने के सफल प्रयोग किए हैं।

इस दौरान पत्र-पत्रिकाओं ने प्रतियोगिताओं की विविधता पर भी ध्यान दिया है। यों तो 'चित्र बनाओ', 'रंग भरो', 'शीर्षक बताओ', 'कहानी लिखो', 'कविता लिखो', 'सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता', 'पहेली प्रतियोगिता' जैसी प्रतियोगिता एक-दो की संख्या में प्रायः बाल पत्रिकाओं द्वारा आयोजित होती रही हैं, परंतु कुछेक पत्रिकाओं ने नये-नये ढंग से प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं, ताकि बच्चों की रचनात्मकता का कोई भी पक्ष किसी भी रूप में सामने आने से वंचित न रह जाए। इस संदर्भ में बाल हंस, चकमक, समझ झरोखा और बालदर्शन के नाम लिए जा सकते हैं।

लेकिन खेद का विषय है कि शिशु वर्ग के बच्चों की कोई प्रतिनिधि पत्रिका नहीं है। चंपक की कुछेक रचनाएँ इस वर्ग के अनुकूल होने के बावजूद वह इस रूप से स्वीकार्य नहीं हैं। हालाँकि इस वर्ग के बच्चों के लिए प्रायः पत्रिकाएँ कुछ न कुछ छिटपुट रूप में प्रकाशित करती रही हैं। पराग पत्रिका अपने प्रकाशन के दौरान 'नन्हे मुन्नों के लिए' शीर्षक के अंतर्गत इस वर्ग के बच्चों का साहित्य प्रकाशित किया करती थी जिसे पाठकों से अपने नन्हें भाई-बहनों को सुनाने का आग्रह भी होता था। परंतु इधर की पत्रिकाओं में इस तरह की प्रवृत्ति नज़र ही नहीं आती।

किशोर बच्चों के लिए एकमात्र नियमित पत्रिका 'सुमन सौरभ' है। 'पराग' पत्रिका का स्तर भी किशोर बच्चों के अनुकूल था, परंतु वर्तमान में इसका प्रकाशन स्थगित है। किशोरों की पत्रिका के रूप में 'किशोर लेखनी' पत्रिका के भी कुछ अंक आए हैं। इसमें प्रकाशित रचनाएँ किशोर मानसिकता के अनुकूल तो है, परंतु इसका प्रकाशन नियमित नहीं है, और दूसरी तरफ़ इसमें बाल किशोर साहित्य के वैचारिक पक्ष पर अधिक ध्यान रहता है। किशोरों की पत्रिका के रूप में 'कच्ची धूप' के कुछेक अंक भी प्रकाशित हुए हैं।

दृश्य मीडिया के प्रसार के समानांतर बाल साहित्य में चित्र कथाओं का महत्व विशेष रूप से बढ़ा है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रकाशकों द्वारा चित्र कथाओं के विविध प्रस्तुतीकरण विभिन्न सीरीज़ों के अंतर्गत निरंतर हो रहे हैं। यह चित्रकथा साहित्य बच्चों के एक बड़े वर्ग के बीच लोकप्रिय है। परंतु चित्रकथाओं की कोई विशिष्ट बाल पत्रिका नहीं है। टिंकल नाम की एक पत्रिका अवश्य निकला करती थी, जिसमें बच्चों के लिए बच्चों के पसंद की कहानियों के आधार पर भी चित्रकथाएँ छपा करती थीं, लेकिन वर्तमान में इसका प्रकाशन स्थगित है। यह अलग बात है कि अंग्रेज़ी में उसका प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है।

हाँ, यह अवश्य है कि प्रायः बाल पत्रिकाओं में कुछेक चित्रकथाएँ नियमित रूप से छपा करती हैं। बाल हंस, नंदन, बाल भारती, चंपक, सुमन सौरभ, नन्हे सम्राट, लोटपोट, मधु मुस्कान, शिशु सौरभ आदि पत्रिकाओं में चित्रकथाओं के कुछ नियमित स्तंभ हैं। बाल हंस और चंपक के चित्रकथा विशेषांक भी निकलने शुरू हुए हैं।

इधर इतर भाषाओं के बाल साहित्य से बच्चों को परिचित कराने के प्रयास बहुत ही कम हुए हैं। पराग पत्रिका अपने प्रकाशन के दौरान विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से अनूदित बाल कहानियाँ प्रायः छापा करती थीं। परंतु वर्तमान में कोई पत्रिका इस परंपरा को आगे बढ़ाती नहीं दीख पड़ती है। एकमात्र नंदन पत्रिका ही लंबे अरसे से अपने हर अंक में किसी न किसी विदेशी कृति का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया करती है। विदेशी लोक साहित्य पर आधारित रचनाएँ भी इसमें प्रायः छापी जाती हैं। वस्तुतः इस दिशा में बाल पत्रिकाओं की उदासीनता खटकती है।

बाल किशोर साहित्य की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए उसके विकास क्रम को समझा जा सके और उसमें निरंतर गुणात्मक परिवर्धन लाया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि इस साहित्य का समालोचनात्मक पक्ष भी सामने लाएँ। परंतु देखने में आया है कि हिंदी की स्तरीय पत्र-पत्रिकाएँ तो इस संदर्भ में लगभग उदासीन हैं ही, बाल पत्रिकाएँ भी कुछ विशेष करती नज़र नहीं आतीं।

प्रतिनिधि कही जाने वाली पत्रिकाएँ कुछेक बाल साहित्य पुस्तकों की केवल सूचनात्मक जानकारियाँ ही उपलब्ध कराती हैं। परंतु कुछ लघु बाल पत्रिकाओं ने बेहतर ढंग से समालोचनात्मक रूप में बाल साहित्य पुस्तकों की समीक्षाएँ अवश्य छापी हैं। इस संदर्भ में देवपुत्र, बालवाणी, बालदर्शन, लल्लू-जगधर बाल वाटिका और बाल साहित्य समीक्षा के नाम उल्लेख्य हैं। बाल साहित्य समीक्षा इनमें सर्वाधिक विशिष्ट है। यह पत्रिका नियमित रूप से बाल साहित्य की रचनाओं का प्रकाशन तो कराती ही है, बाल साहित्य पुस्तकों की बेहतर समीक्षाएँ भी छापती है। समय-समय पर यह पत्रिका महत्वपूर्ण बाल साहित्यकारों पर केंद्रित विशेषांक भी प्रकाशित करती है जिसमें उस बाल साहित्यकार के संपूर्ण साहित्यिक अवदान पर समालोचनात्मक निबंध प्रकाशित किए हैं। बाल साहित्य समीक्षा के अलावा किशोर लेखनी पत्रिका का योगदान भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसके कुछ अंक ही प्रकाशित हुए हैं, परंतु उनमें बाल किशोर साहित्य की रचनात्मक चेतना को समझने, परखने और दिशा देने का प्रयास करते निबंध प्राथमिकता से प्रकाशित हुए हैं। बाल साहित्यिक समीक्षा के लिए एक समय में चर्चित रही पत्रिका परिकल्पना का प्रकाशन भी इस बीच आरंभ हुआ है। बाल साहित्य लोचना के लिए इससे निश्चय ही उम्मीद की जा सकती है।

हिंदी के महत्वपूर्ण दैनिक समाचार-पत्रों में बाल साहित्य के लिए परिशिष्ट तो हैं ही, वे प्रायः बाल साहित्य के विविध पहलुओं पर समालोचनात्मक निबंध भी प्रकाशित किया करते हैं, परंतु ये चर्चाएँ राष्ट्रीय फलक पर नहीं आ पातीं, क्योंकि प्रत्येक समाचार-पत्र के अपने अलग-अलग व्यावसायिक क्षेत्र हैं, जहाँ वे बिकते हैं और इसलिए उनमें प्रकाशित रचनाएँ भी उस क्षेत्र-विशेष के पाठकों तक ही सीमित रह जाती हैं।

साहित्य की स्तरीय पत्रिकाएँ तो इस दिशा में लगभग मौन हैं। 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में बाल साहित्य के परिशिष्ट प्रकाशित होते थे। परंतु आजकल 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' तो बंद है ही, 'धर्मयुग' का परिशिष्टि भी अनियमित हो गया है। आजकल पत्रिका साल भर में दो-तीन लेख प्रकाशित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती है। अन्य स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं . . .हंस, वागर्थ, पहल, कादंबिनी आदि को इस संदर्भ में मानों कोई रुचि ही नहीं।

THE CORE IAS

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि इतनी सारी बाल पत्रिकाओं के रहते बाल साहित्य की परंपरा और स्थिति को समझने, परखने तथा विकास की दिशा तय करने के लिए बाल साहित्यकारों को किसी और का मुंह जोहने की क्या ज़रूरत है? हालाँकि कुछ समालोचक पूर्वोक्त वर्णित बाल पत्रिकाओं में से चार-पाँच को छोड़कर अन्य किसी को महत्व नहीं देते। लेकिन यह बात भी शोचनीय है कि ये चार-पाँच इनी-गिनी पत्रिकाएँ, जो राष्ट्रीय स्तर की होने का दावा करती हैं और विश्व मंच पर भारतीय हिंदी बाल साहित्य का प्रतिनिधित्व करने में भी आगे-आगे हैं, किसी तरह की वैचारिक चर्चा में शामिल होने से पीछे रहना चाहती हैं तो आख़िर क्यों?

मुझे लगता है कि हिंदी की बाल पत्रिकाओं को बाल साहित्यालोचना का दायित्व गंभीरतापूर्वक स्वीकार करना होगा . . .भले ही इस वैचारिक चर्चा में उनके द्वारा प्रकाशित किया जाने वाला बाल साहित्य और उससे जुड़ी उनकी भूमिका ही क्यों न ख़ारिज हो जाए। यह वैचारिक चर्चा न केवल बाल साहित्य के दिशा-निर्धारण के लिए आवश्यक है, वरन इसलिए भी ज़रूरी है कि इस

तरह की चर्चाओं में शामिल होने का पाठकीय हक बाल किशोर वर्ग को निश्चय ही है, जिससे उन्हें अब तक लगभग वंचित रखा गया है।

भारत के हिंदीतर रामकाव्य

आर्य धर्म के रक्षक, मानवता के त्राता, प्रजाप्राण लोकनायक श्रीराम भारत-भूमि के कण-कण में रमे हुए हैं। समय की विषम एवं दुराक्रांत स्थितियों ने श्रीराम को उत्पन्न किया, तब से लेकर हर युग के संक्रांति काल में उनका आदर्श और प्रेरक जीवन कवि-प्रतिभा के गर्भ से पुनः-पुनः अवतीर्ण होकर जनमानस को सत्पथ दिखलाता आ रहा है।

यह माना जाता है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकि से अनेक शताब्दियों पूर्व ही रामकथा को लेकर आख्यान-काव्य की रचना होने लगी थी किंतु, उस साहित्य के अप्राप्य होने से वाल्मीकि कृत रामायण को ही प्राचीनतम उपलब्ध रामकाव्य माना जाता है। इसकी रचना संभवतः ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी के अंत में हुई। अधिक समय तक मौखिक रूप में प्रचलित रहने के कारण इसका रूप स्थिर नहीं रह सका और रामकथा के प्रारंभिक विकास के साथ-साथ इसमें परिवर्तन व परिवर्धन होता रहा। अनेक विद्वानों का यह भी मत है कि वाल्मीकि ने चारणों के गाथागीति के रूप में लोक प्रचलित वीराख्यान को ही प्रबंध का रूप देकर रामायण महाकाव्य की रचना की।

रामकथा और रामकाव्य के नायक राम के व्यक्तित्व में कितनी ऐतिहासिकता और कितनी कवि-कल्पना है, यह कहना बहुत कठिन है। परंतु, इस बात मे कोई संदेह नहीं है कि वाल्मीकि के महाकाव्य 'रामायण' ने ही सर्वप्रथम महामानव राम को लोकनायकत्व प्रदान किया। राम का जो गौरवपूर्ण चरित्र जगविख्यात है, उसका श्रेय महर्षि वाल्मीकि को ही है। उनके बाद रामकाव्य की परंपरा को आगे बढ़ाया जयदेव, कालिदास और तुलसीदास आदि महान कवियों ने। उन्होंने वाल्मीकि रामायण की ही कथावस्तु का अपनी-अपनी शैली में उपयोग कर रामोपाख्यान प्रस्तुत किए। हिंदी और संस्कृत साहित्य की इस रामकाव्य परंपरा ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को और अधिक व्यापक बनाया।

रामकथा ने प्रत्येक कवि को प्रभावित किया है। इसीलिए आज विश्व की लगभग प्रत्येक भाषा में रामकथा उपलब्ध है। विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रथम महाकाव्य या सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य ग्रंथ प्रायः कोई रामायण ही है। इसके अतिरिक्त बहुत-सी अन्य रचनाएँ भी रामकथा से संबंधित है। कुछ महत्वपूर्ण अहिंदी भाषी रामकाव्यों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

THE CORE IAS

पउम चरिउ

लगभग छठी से बारहवीं शती तक उत्तर भारत में साहित्य और बोलचाल में व्यवहृत प्राकृति की उत्तराधिकारिणी भाषाएँ अपभ्रंश कहलाईं। अपभ्रंश के प्रबंधात्मक साहित्य के प्रमुख प्रतिनिधि कवि थे- स्वयंभू (सत्यभूदेव), जिनका जन्म लगभग साढ़े आठ सौ वर्ष पूर्व बरार प्रांत में हुआ था। स्वयंभू जैन मत के माननेवाले थे। उन्होंने रामकथा पर आधारित पउम चरिउ जैसी बारह हज़ार पदों वाली कृति की रचना की। जैन मत में राजा राम के लिए पद्म शब्द का प्रयोग होता है, इसलिए स्वयंभू की रामायण को 'पद्म चरित' (पउम चरिउ) कहा गया। इसकी सूचना छह वर्ष तीन मास ग्यारह दिन में पूरी हुई। मूलरूप से इस रामायण में कुल ९२ सर्ग थे, जिनमें स्वयंभू के पुत्र त्रिभूवन ने अपनी ओर से १६ सर्ग और जोड़े। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' पर महाकवि स्वयंभू रचित 'पउम चरिउ' का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

असमी रामायण

लगभग सातवीं शताब्दी में असमिया साहित्य के प्रथम काल के सबसे बड़े कवि माधव कंदलि ने कछारी राजा महामाणिक्य के प्रोत्साहन से १४ वीं शताब्दी में वाल्मीकि रामायण का सरल अनुवाद असमिया छंद में किया। एक गीति कवि दुर्गावर ने १६वीं

शती में लौकिक वातावरण में गेय छंद में गीति-रामायण की रचना की। असमिया साहित्य के द्वितीय काल (वैष्णवकाल में) माधव कंदलि द्वारा अनूदित रामायण का कुछ अंश खो जाने के कारण इस काल के एक प्रमुख कवि और साहित्यकार शंकरदेव ने उत्तर कांड को पुनः अनूदित किया। शंकरदेव ने ही 'रामविजय' नामक नाटक की भी रचना की।

उड़िया रामायण

उड़िया-साहित्य के प्रथम प्रतिनिधि कवि सारलादास ने 'विलंका रामायण' की रचना की। अर्जुनदास ने 'राम विभा' नाम से रामोपाख्यान प्रस्तुत किया। परंतु, कवि बलरामदास द्वारा रचित रामायण उड़ीसा का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ माना जाता है। बलरामदास की 'जगमोहन रामायण' अपने अनूठे प्रसंगों के लिए भी विख्यात है। उनकी यह कृति 'दक्षिणी रामायण' भी कहलाती है। इसके बाद १९वीं शती में आधुनिक युग में फकीर मोहन सेनापति ने 'रामायण' का पद्यानुवाद किया।

कन्नड़ः पंप रामायण

दक्षिण भारत की पाँच भाषाओं में से एक है- कन्नड़। कन्नड़ साहित्य के सन ९५० से ११५० तक के पंप युग में एक अत्यंत प्रसिद्ध कवि हुए नागचंद्र, जिन्होंने 'पंप भारत' का अनुसरण करते हुए रामायण की रचना की। रामचंद्रचरित पुराण अथवा पंप रामायण कन्नड़ की उपलब्ध रामकथाओं में सबसे प्राचीन है।

तत्पश्चात १५वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी के 'कुमार व्यास काल' में नरहरि अथवा कुमार वाल्मीकि नामक एक कवि ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर तोरवे रामायण की रचना की। कन्नड़ साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति के रूप में यह आज भी जानी जाती है। इसी युग की अंतिम उन्नीसवीं शती में देवचंदर नामक एक जैन कवि ने 'रामकथावतार' लिखकर जैन रामायण की परंपरा को आगे बढ़ाया। इस शती के अंत में मुद्दण नामक एक अत्यंत सफल कवि ने अद्भूत रामायण नामक सरस काव्य-कृति की रचना की।

कश्मीरी रामायण

तेरहवीं सदी में कश्मीरी भाषा में साहित्य सृजन आरंभ हुआ। सन १७५० से १९०० के मध्य के प्रेमाख्यान काल में प्रकाश राम ने रामायण की रचना की। १८वीं शती के अंत में दिवाकर प्रकाण भट्ट ने भी 'कश्मीरी रामायण' की रचना की।

गुजराती रामायण

१४वीं शती में आशासत में गुजराती में रामलीला विषयक पदावली की रचना की। फिर १५वीं शती में भालण ने सीता स्वयंवर अथवा राम-विवाह नामक रामकाव्य प्रस्तुत किया। गुजराती साहित्य में यही प्राचीनतम रामकाव्य माने जाते हैं। वर्तमान में समूचे गुजरात में १९वीं शताब्दी की गिरधरदास 'रामायण' सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक लोकप्रिय मानी जाती है।

तमिल रामायण

तमिल भाषा द्रविड़ भाषा परिवार की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है और महर्षि अगस्त्य इसके जनक कहे जाते हैं। तमिल साहित्य के प्रबंधकाल में आज से लगभग १२ सौ वर्ष पूर्व चक्रवर्ती महाकवि कंबन हुए, जिन्होंने 'कंब रामायण' नामक प्रबंध काव्य की रचना की। कुछ विद्वान कंबन और उनकी रामायण को १२वीं शताब्दी का मानते हैं और यह भी माना जाता है कि महाकवि कंबन गोस्वामी तुलसीदास से कम से कम चार सौ वर्ष पूर्व हुए थे।

तेलुगू रामायण

तेलुगू साहित्य के दूसरे पुराण युग (सन १०५० से ११५०० तक) में सबसे पहले रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) और फिर भास्कर रामायण(१४वीं शती) की रचना हुई। भास्कर रामायण को तेलुगू का सबसे कलात्मक रामकाव्य माना जाता है। तेलुगू साहित्य के स्वर्ण युग (प्रबंध युग) में अनुवादों की परंपरा रुक गई और कवियों की रुचि मौलिक प्रबंध लिखने की ओर बढ़ी। उसी क्रम में

तेलुगू की चार महिला रामायणकारों ने अपनी-अपनी कृतियाँ प्रस्तुत कीं। ये थीं- मधुरवाणी की 'रघुनाथ रामायण', शीरभु सुभद्रमांबा की 'सुभद्रा रामायण', चेबरोलु सरस्वती की 'सरस्वती रामायण' तथा मोल्ल की 'मोल्ल रामायण'। १६वीं शताब्दी में मोल्ल नामक कुम्हारिन द्वारा रचित 'मोल्ल रामायण' जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय है।
तेलुगू साहित्य की सर्वप्रथम कवयित्री आतुकूरि मोल्ल तुलसीदास से लगभग २०० वर्ष पूर्व हुई थीं। अपने गुरु गोपवरम के श्रीकंठ मल्लेश की कृपा से मोल्ल कविता करना सीख गई। राज्याश्रय के लिए शिव और राम भक्त मोल्ल के पास भी निमंत्रण आया था परंतु उन्होंने उसे विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया। मोल्ल कहती थीं कि वे तो प्रभु रामचंद्र के कहने से उनका गुणगान करती है और उसे उन्हीं के चरणों में समर्पित कर देती हैं। 'मोल्ल रामायण' का अब हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है।

पंजाबी रामायण

सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह जी न केवल धर्म गुरु थे वरन वे एक महान संत, योद्धा और कवि भी थे। उनके द्वारा रचे गए कुल ११ ग्रंथों में से एक 'रामावतार' को गोविंद रामायण कहा जाता है। पंजाबी भाषा की यह महान रचना संभवतः सन १६९८ में पूर्ण हुई थी। गुरु जी की रामकथा में धर्म युद्ध के घाव का भाव ही खूब उजागर हुआ है। 'गोविंद रामायण' से कुल ८६४ छंद है जिनमें ४०० से अधिक छंदों में केवल यूद्ध का ही वर्णन है।

बंगाली रामायण

तुलसीदास से एक शताब्दी पूर्व बंगला के संत कवि पंडित कृत्तिवास ओझा ने 'रामायण पांचाली' नामक रामायण की रचना की। १५वीं शताब्दी में रचित यह रामायण बंगला जनजीवन का कंठहार है। पाँच साल में उन्होंने अपने इस अमर ग्रंथ को पूरा किया। बंगाली रामकाव्य की कुछ अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं- नित्यानंद आचार्य (अद्भुताचार्य) की आश्चर्य रामायण, कविचंद्र कृत अंगद रायबार, रघुनंदन गोस्वामी कृत राम रसायन तथा चंद्रावती की रामायण गाथा। बंगाल के एक क्षेत्र विशेष में चंद्रावती की रामकथा के पद बेहद लोकप्रिय हैं।

मराठी रामायण

महाराष्ट्र में पैठण नामक स्थान में जन्मे संत एकनाथ गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। उन्होंने काशी में तुलसीदास जी से भेंट की थी। उन्होंने 'भावार्थ रामायण' की रचना की थी। जिसे वह पूर्ण नहीं कर पाए और इसे पूरा किया उनके शिष्य गाववा ने।

मलयालम रामायण

चौदहवीं शताब्दी में 'रामायण' के युद्ध कांड की कथा के आधार पर प्राचीन तिरुवनांकोर के राजा ने रामचरित नामक काव्य ग्रंथ की रचना की। इसे मलयालम भाषा का प्रथम काव्य ग्रंथ माना जाता है। इसी शती में कवि राम प्पणिकर ने गेय छंदों में 'कणिश्श रामायण' की रचना की। इसके बाद रामकथा-पाट्ट रचा गया। फिर वाल्मीकि रामायण के अनुवाद के रूप में 'केरल वर्मा रामायण' की रचना हुई। मलयालम भाषा के सर्वाधिक लोकप्रिय राम काव्य के रूप में सन १६०० के लगभग एजुत्त चन द्वारा 'अध्यात्म रामायण' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया।
अहिंदी भाषी रामकाव्य में 'रावणवहो' (रावण वध) महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसकी रचना कश्मीर के राजा प्रवरसेन द्वितीय ने की थी। प्राकृत साहित्य की इस अनुपम रचना का संस्कृत भाषा में सेतुबंध के नाम से अनुवाद हुआ।

नेपाली रामायण

१९वीं शताब्दी में कवि भानुभट्ट ने नेपाली भाषा में संपूर्ण रामायण लिखी। इस रामायण का आज नेपाल में वही मान है, जो भारत में तुलसीकृत रामचरितमानस का है।

अन्य रामायण

इस बात के प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि मुगल शासनकाल में रामायण का फारसी भाषा में अनुवाद हुआ। राम कथा साहित्य की एक प्रसिद्ध रचना 'तोरवे रामायण' है, जिसकी रचना १६वीं शती में तोरवे नामक ग्राम के निवासी नरहरि द्वारा की गई।

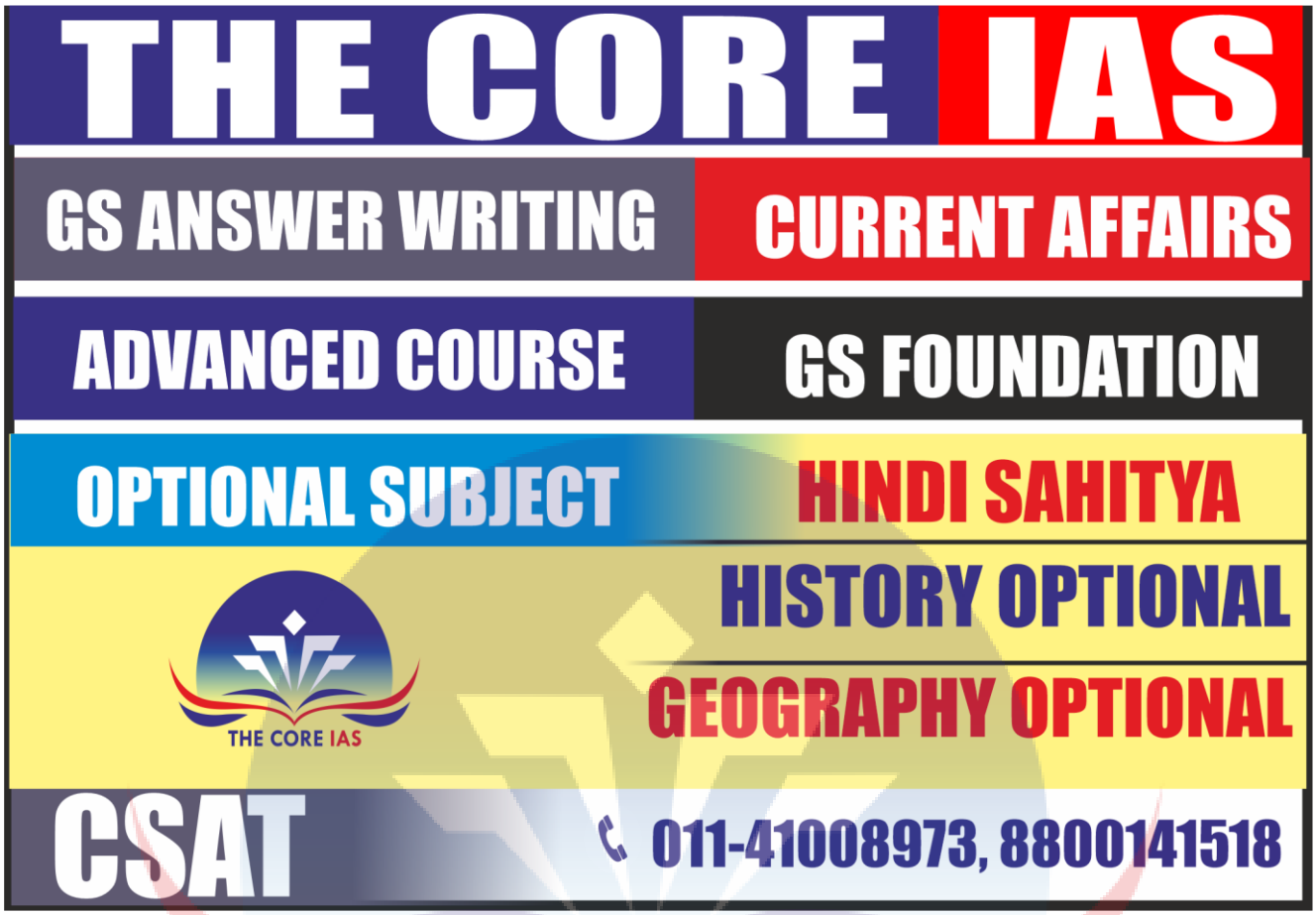

साहित्य सामाजिक शून्य में नहीं रचा जाता। वह समाज में रहकर ही लिखा रचा-समझा- सराहा जाता है। लेखक भाषा का उपयोग करता है जो सामाजिक सम्पदा होती है। एक तरह से तो भाषा में कुछ करना अपने आप में सामाजिक होना है। फिर, समाज साहित्य नहीं लिखता। लिखता तो कोई व्यक्ति ही है। समाज किसी से अपेक्षा भी नहीं करता कि वह साहित्य रचे। लिखने रचने का काम तो कोई व्यक्ति ही अपनी जिम्मेदारी पर करता है। दूसरे शब्दों में, साहित्य और समाज का रिश्ता कहीं अधिक जटिल है और उसका सरलीकरण नहीं किया जा सकता।)

भाषा में कुछ करना अपने आप में सामाजिक होना है

उनकी सूक्ष्मताओं और जटिलताओं को नजरंदाज कर देते

एक विचारधारी कविमित्र को बातचीत सुन रहा था जिसमें ये अपनी पीढ़ी को कविता और उसके द्वारा लाये गये बदलाव को देश में घट रही राजनैतिक घटनाओं और प्रवृत्तियों से सहज और आश्वस्त भाव से जोड़ रहे थे। राजनैतिक परिवर्तन पहले और स्वतंत्र भाव से हो रहा था और कविता में परिवर्तन उसकी प्रतिक्रिया में हो रहा था। अशोक वाजपेयी हिन्दी में कविता पर इन दिनों विचार और विधेषण करते हुए यह धारणा बहुत प्रचलित और लगभग स्वयंसिद्ध मान ली गया है कि साहित्य में परिवर्तन समाज में हो रहे परिवर्तनों है। का प्रतिबिम्ब होता है और साहित्य के किसी भी परिवर्तन को बिना इस समझ के समझा ही नहीं जा सकता। इस समय में यह विचार दबाया है कि साहित्य में अपने से परिवर्तन सम्भव नहीं है- उसके सभी परिवर्तन बाहरी परिवर्तन पर निर्णायक रूप से निर्भर है। चूंकि ज्यादातर बाहरी परिवर्तनों पर साहित्य का बस नहीं होता साहित्य की मानी परिवर्तन करने का न तो अधिकार है, न ही जरूरत साहित्य और समाज का यह रिश्ता आधुनिक काल में ही चना-बढ़ाया गया है। परम्परा में देश-काल का विचार तो होता था पर साहित्यिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन को अभिव्यक्ति अनिवार्यतः नहीं माना जाता था। साहित्य का अपना समाज था और उससे संवाद और प्रतिक्रिया का एहतराम होता था लेकिन साहित्य को अपने से बदलने का लिए किया। भी अवकाश था। अकसर साहित्य ऐसे बदलता ही रहा है। अलबत्ता, वह परिवर्तन पहले धीमे-धीमे होता था। आधुनिक काल में उसकी गति और अवधि दोनों ही तेज हो गयी है। इन दिनों ठहराव और धीरज साहित्य के गुण और कारक नहीं रह गये हैं। हम तेजी से, अधीर समाज में तेज भागते समय में अधीर साहित्य हो गये हैं। अब तो

साहित्य सामाजिक शून्य में नहीं रचा जाता। वह समाज में रहकर हमें लिखा- रचा-समझय सराय जाता है। लेखक भाषा का उपयोग करता है जो सामाजिक समय होती है। एक तरह से तो भाषा में कुछ करना अपने आप में सामाजिक होना है। फिर, समाज साहित्य नहीं लिखता लिखता तो कोई व्यक्ति हो है। समाज किसी से अपेक्षा भी नहीं करता कि यह साहित्य रचे लिखने रचने का काम तो कोई व्यक्ति ही अपनी जिम्मेदारी पर करता है। दूसरे शब्दों में, साहित्य और समाज का रिश्ता कहीं अधिक जटिल है और उसका सरलीकरण नहीं किया जा सकता। इसी तरह परिवर्तन का व्याकरण भी जॉटल है और उसे इकतरफा नहीं बनाया जा सकता। कई बार अब हम किसी लेखक या कृति के बारे में यह कहते हैं कि वह अपने समय या समाज मैं कहीं आगे की रचना है तो उसका आशय यहीं है कि उसका परिवर्तन आगामी है जिससे समाज और समय तासमय पीछे हैं। कई बार लगता है कि साहित्य और समाज परिवर्तन और व्यक्ति के संबंध में भूमिकाओं को हम बहुत जल्दी सामान्यीकृत करने के वैचारिक उत्साह में

मण्डला का नाम इसलिए ऐसा पड़ा कि वह नर्मदा से कई और घिरी है। उसी मण्डला में जब धरना स्मृति के अन्तर्गत लगभग पचास कवियों ने, जिनमें पाँच पीढ़ियों लोग शामिल थे, दो दिनों में लगभग दस से ग्यारह घण्टे कविताएँ सुन मुझे लगता रहा कि थोड़ी देर के लिए नर्मदा के साथ-साथ कविता ने भी मण्डला को घेर लिया है। सचाई अक्सर कविता को घेरती रहती है, कभी-कभी कविता बनी रहे। कविता को भी सचाई को घेरने का अवसर मिलना चाहिये। ऐसे मण्डल से सचाई स्थति या नहीं हो जाती जैसे नर्मदा अपने मण्डल से मण्डला शहर को दोप्त और मोहक हराभरापन, उच्छलता देती है वैसे ही कविता ने सचाई के

हिन्दी कविता का वितान विपुल है। उसके लिखे जाने के पिछले पचत्तर वर्ष लोकतंत्र के अन्तर्गत बोते हैं जैसे कि. सकल भारतीय कविता के भी अभूतपूर्व है कि कई बार हम उन बहुत सारी स्वतंत्रताओं को स्वाभाविक मान लेते हैं जो दरअसल हमें लोकतंत्र के कारण मिली है। इस लोकतंत्र के संविधान ने कई पारम्परिक मूल्यों और स्वतंत्रता संग्राम में विकसित मूल्यों को समाहित किया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रश्नांकन और आलोचना की वृत्ति, प्रश्नवाचकता संवाद और विवाद, असहमति के अवसर और आदर आदि सभी में आज दैनिक कटौती हो रही है। यह प्रश्न उठता है कि ऐसे समय में कविता किस हद तक लोकतंत्र की चौकसी कर रही है और कवि कितनी

लोकतात्रिक नागरिकता के कर्तव्य निभा रहा है। राजनैतिक आर्थिक व्यवस्थाएँ, राजनीति और धर्म को दुरभिसन्धि जैसे नागरिकों को वैसे ही कवियों को निहत्था लाचार और विकल्प बनाने पर तुली हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे लोकतांत्रिक संकट में क्या कविता भी लाचार और नित्य हो रही है? इसका सीधा-सरल उत्तर न संभव है, न मण्डला में मिला। प्रतिरोध और उदासीनता दोनों ही नजर आये कभी लगा कि अपने प्रतिरोध को जाहिर करने में कविता को शर्तों किनारे रख रहा है और कभी लगा कि प्रतिरोध का नया शायद कुछ अटपटा या किसी हद तक बीहड़ स्थापत्य उभर रहा है। मानवीय स्थिति और नियति मानना और सम्भावना के कुछ रूपाकार प्रगट हुए और जब-तब बड़बोलापन और सम्वेदना और विवेक से रिक्त भोलापन भी कविता का संकट यह है कि करना चाहते थे। वह जटिलताओं के बीच, सभ्यतागत संकट के सामने कैसे मानवीय हो, गवाही दे सके, बाद और याद दिला सके और
मण्डला की सड़कों पर से निकलिये तो जाहिर होगा कि एक नाम स्मृतिहीन शहर बन बिगड़ रहा है। स्थानीयता को एक नागर सामान्यता कर रही है। किसी कल्पित शहर का संस्करण बनने की राजनैतिक प्रशासनिक नागरिक होड़ सी लगी है। ऐसी ही सामान्यता कविता में भी लगातार बढ़ रही से स्थानीयता घट रही है। स्वान भौतिक स्तर पर बदले और ध्वस्त किये जा रहे हैं। दुर्भाग्य से कविता उन गायब हो रहे स्थानों का शरद या जगह अकसर नहीं हो पा रही है। वह भी अस्थान हो रही स्थान, शहर और कविता दोनों से अपदस्थ
घृणा के राज्य नेलसन मण्डेला के 105 के जन्मदिन पर आयोजित एक समारोह में व्याख्यान देते हुए समाज-चिन्तक आशीष नन्दी ने कहा कि घृणा पर आधारित राजव्यवस्था स्थापित करने और चलाने का प्रयत्न सदियों से चलता रहा है। उन्नीस सदी में जब चार्ल्स डारविन, कार्ल मार्क्स, सिंगमण्ड फ्रायड और किसी हद तक अलबर्ट आइन्स्टाइन ने विज्ञान को

हिन्दी कविता का वितान विपुल है। उसके लिखे जाने के पिछले पचत्तर वर्ष लोकतंत्र के अन्तर्गत बीते हैं जैसे कि सकल भारतीय कविता के भी। यह अभूतपूर्व है, हालाँकि क लिए सक्रिय-सजग रहना चाहिये । कई बार हम उन बहुत सारी स्वतंत्रताओं को स्वाभाविक मान लेते हैं जो दरअसल हमें लोकतंत्र के कारण मिली हैं। इस लोकतंत्र के संविधान ने कई पारम्परिक मूल्यों और स्वतंत्रता संग्राम में विकसित मूल्यों को समाहित किया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रश्नांकन और आलोचना की वृत्ति, प्रश्नवाचकता, संवाद और विवाद, असहमति के हो सकने के लिए अभिशप्त है। अवसर और आदर आदि सभी में आज दैनिक कटौती हो रही है।

मानव जीवन और व्यापार के केन्द्र में स्थापित कर दिया तो शी सब कुछ का प्रतिमान बना दिया गया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में ही इस रेशूनेलिटी के मानव- विरोधी परिणाम मिलने लगे। पश्चिम ने विकासवाद का सहारा लेकर कई समूह आदिवासी सम्प्रदायों और जातियों को सभ्य जीवन विकसित करने में असमर्थ कर देकर उनके संहार का उपक्रम किया। ऐसे सभी उपक्रम विकास के वैज्ञानिक तर्क पर आधारित थे। नाजियों द्वारा स्थापित गैसचैम्बर और हिरोशिमा पर अणु बम गिराना इसी रेशनेलिटी की परिणतियाँ थी। अब यह बात प्रमाण सिद्ध हो चुकी है कि हिरोशिमा पर अणु बम गिराने पर इसरार सेना ने नहीं बल्कि वैज्ञानिकों ने किया था जो बड़े क्षेत्रफल को पूरी तरह से नष्ट करने को चमको क्षमता का परीक्षण

आशीषदा ने यह भी बताया कि यूटोपिया कल्पना में तो बहुत वाचनीय होता है पर जब उसे अमल में बदला जाता है तो यह अकसर एकाधिपत्य में बदल जाता है। यूटोपिया तो ध्वस्त हो जाता है पर बच्चा रह जाता है घृणा पर आधारित और उससे स्वयं को पोसता और सशक्त बनाता राज्य एक समाजचिन्तक के रूप में आशीषदा, कन्नड़ साहित्यकार यू आर अनंतमूर्ति से सहमत होते हुए कहते आये हैं कि असली और सच्चा लोकतंत्र ढोला- ढाला राज्य ही हो सकता है, सत राज्य नहीं। एकाधिपत्व को अपने को सक्रिय और सशक्त बनाये रखने के लिए वा लाजिम होता है कि वह घृणा हिंसा और प्रतिशोध को लेकप्रिय और लोकमान्य बनाता रहे। समाज के बड़े और प्रभावशाली हिस्से को यह सफलतापूर्वक "छूटलाइज' करता है।

याद आता है कि कुछ समय पहले एक अन्य अवतार पर आशीषदा ने हमारी परम्परा में अर्द्धनारेश्वर को जो अवधारणा है उसका एक रूपक की तरह इस्तेमाल करते हुए कहा था कि लोकतांत्रिक राज्य को अर्द्धनारीश्वर होना चाहिये। उनका मत है कि लोकतंत्र में राज्य पर नहीं समाज पर अधिक आग्रह, उससे अधिक अपेक्षा होना चाहिये। साधारण नागरिक के विवेक-समझ सम्वेदना को तंत्र में अधिक जगह होना चाहिये और समाज को राज्य को कुछ मदाओं में रहने और उनका उल्लंघन करने से रोकने

यह तो हर बार स्पष्ट होता है कि आशीष नन्दी हमेशा जो भी विचार करते हैं उसमें हमारे देश में जे हो रहा है आका सीधा या परोक्ष सन्दर्भ होता है। ये उन बुद्धिजीवियों में से हैं जो सत्ता से और उसके बारे में साथ कहने से संकोच नहीं करते। ऐसे निर्भय बुद्धिजीवी को मुखरता और उपस्थित हमें आश्वस्त करती है कि भारतविचार अदम्य है और उसे दाने हराने के सारे प्रयत्न और यन्त्र अन्ततः सफल न
(लेखक वरिष्ठ कवि एवं सांस्कृतिक साहित्यिक चिंतक हैं)

भारतेंदु हरिश्चंद्र और मल्लिका

यह सच है कि एक लेखिका की जीवन-कथा उसके लेखन के बराबर महत्वपूर्ण हो जाती है. उसका अपना वजूद, चाहे वह कितना भी धुंधला क्यों न हो, एक तरह से उसके लेखन का ही हिस्सा बन जाता है. उसकी अपनी खुद की कहानी उसके कथा-लेखन में कहीं न कहीं आकर बैठ ही जाती है और उसकी कृतियों के विषय सामाजिक व्यवस्था की कगार पर उसके अपने संकटपूर्ण अस्तित्व को मार्मिक तरीके से गौरतलब बना देते हैं. जब हम हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र की ज़िंदगी के बारे में बात करते हैं, तो उनकी प्रेमिका मल्लिका के नाम के पन्ने अपने आप खुलते चले जाते हैं.

THE CORE IAS

कवि और उपन्यासकार के रूप में जानी जानें वाली मल्लिका की ज़िंदगी में एक वक्त ऐसा भी आया जब वह उपन्यास लिखने की कोशिश कर रही थीं. ये वही समय था जब आंतरिक अनुभूतियों, व्यक्तिगत द्वंद्व और सामाजिक मंच की भाषा हिंदी में ईज़ाद की जा रही थी. मल्लिका बंगाल से थीं और बनारस की गलियों में अपने साथ कोलकाता की प्रगतिशील धाराओं का ज्ञान लेकर आई थीं. मल्लिका का शुरुआती काम भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850- 1885) से अन्तरंग रूप से जुड़ा हुआ था. भारतेंदु ही मल्लिका के रक्षक थे और वे ही संरक्षक.

परंपरा, नवाचार और पुराने अभिजन का हिस्सा होने के बावजूद भारतेंदु रीति-रिवाजों का विरोध करते थे. यही वजह थी कि उन्होंने स्त्री के जुड़े सवालों पर अपने कई तरह के मत प्रकट किए थे. उन्होंने अपने एक उपन्यास में उन प्रगतिशील रीति-रिवाजों का पक्ष लिया है, जो उनके अपने समय में संभव ही नहीं था, हालांकि बाद में इसका श्रेय मल्लिका को दिया गया.

वसुधा डालमिया की पुस्तक 'मल्लिका का रचना-संसार' के अनुसार, हरिश्चंद्र की बनारस में बहुत विशिष्ट स्थिति थी. वे शहर के व्यापारिक प्रभुवर्ग से थे. अपने पिता की तरह उन्होंने शहर के सांस्कृतिक जीवन में एक नेतृत्वकारी भूमिका निभाई और उनके यहां जमने वाली कवियों की महफ़िलें और संगीत संध्याएं अपने समय में मशहूर थीं. मल्लिका अकेली स्त्री नहीं थीं जिनके साथ उनके सम्बन्ध थे, लेकिन मल्लिका का उनके जीवन में विशेष स्थान था.

गौरतलब है, कि मल्लिका संभवत: भारतेंदु की स्त्री-केंद्रित अल्पायु पत्रिका 'बालाबोधिनी' के कई लेखों में सह-लेखिका होने के साथ-साथ 'कुलीन कन्या' अथवा 'चंद्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' का पूरी तरह से तो नहीं, लेकिन निश्चित रूप से सह-लेखन अवश्य किया था. उन्होंने जिस तरह का प्रगतिशील साहित्यिक लेखन किया, उसके लिए उन्हें निस्संदेह हरिश्चंद्र के नाम और समर्थन की ज़रूरत थी. अपने औपन्यासिक लखन में मध्यवर्गीय गृहिणी, शिक्षित और सुसंस्क-त जीवनसाथी तथा माता (वास्तव में बमगाली उपन्यासों और कहानियों की भद्र महिला) के नए घरेलू आदर्शों की सिफारिश करती हैं. लेकिन व्यक्तिगत रूप में उन्हें इनमें से किसी भूमिका को निभाने का मौका नहीं मिला.

पुस्तक 'मल्लिका का रचना-संसार' के अनुसार, हरिश्चंद्र की कई साहित्यिक कृतियां मल्लिका के साथ लिखी गई हैं. कहा जाता है, कि दोनों एक ही उम्र के थे- जब हरिश्चंद्र 23 साल के थे, और कुछ लोगों के अनुसार 15 के, तभी से मल्लिका उनके संरक्षण में आई थीं. उनके प्रारंभिक जीवन के बारे में हमारी जानकारी लगभग नगण्य है. वे संभवत: बाल-विधवा या परित्यक्ता थीं, जो शायद बनारस या शायद बंगाल में उनसे मिली थीं- जैसा कि प्रसिद्ध सौन्दर्यशास्त्री और कला आलोचक, भारतेन्दु के जीवन के अधिकारी विद्वान, रायकृष्ण दास (1976) मानते हैं. मल्लिका के उपन्यासों में से दूसरा उपन्यास बाल-विधवा के भाग्य की मार्मिक कथा कहता है. हो सकता है, विधवा जीवन की व्यथा की जानकारी उन्हें अपने जीवन से मिली हो. वे अपने साथ शिक्षा, संस्कृति और एक संस्कारी लेखनी लाई थीं.

हरिश्चंद्र के करीबी सहयोगी और फुफेरे भाई रायकृष्ण दास के अनुसार, हरिश्चंद्र ने अपने छोटे भाई गोकुलचंद्र को 1882 में लिखे एक पत्र में यह स्वीकार किया था कि उन्होंने मल्लिका को अपने जीवन में विधिपूर्वक अपनाया था. वे चंद्रिका के नाम से लिखती थीं, जो कि हरिश्चंद्र के नाम के आख़िरी हिस्से से ही व्युत्पन्न था. उनके नाम पर ही हरिश्चंद्र ने अपनी पहली पत्रिका का नाम हरिश्चंद्र मैगजीन से बदलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया था. लिहाज़ा, यह अनुमान लगाना शायद ग़लत न होगा कि वे इस उद्यम में, और साथ ही अनेक ऐसे उद्यमों में भारतेन्दु की सहयोगी थीं. भारतेन्दु की अनेक साहित्यिक रचनाओं में उनके नाम को लेकर शब्द-क्रीड़ा की गई है. अपनी कविताओं के संग्रह प्रेम तरंग (1877) में भारतेन्दु ने छियालीस बंगाली पदों को शामिल किया जो मल्लिका द्वारा रचे गए थे. ये प्रेम कविताएं हैं, जिनमें से कुछ कविताएं कृष्ण को संबोधित हैं और अक्सर रचनाकार के नाम के तौर पर इनमें 'चंद्रिका' का उल्लेख है, हालांकि कहीं-कहीं हरिश्चंद्र का नाम भी है.'

आपको बता दें, कि मल्लिका का अपना अपेक्षाकृत आश्रित जीवन 3 जनवरी, 1885 को हरिश्चंद्र के गुज़रने के साथ ही समाप्त हो गया. राधाकृष्ण दास की फरवरी 1885 की मासिक डायरी से मल्लिका के बारे में कुछ सूचनाएं भी मिलती हैं. इस डायरी में हरिश्चंद्र के छोटे भाई गोकुलचंद्र के एक पत्र की प्रतिलिपि भी है, जो उन्होंने हरिश्चंद्र की मृत्यु के दिन लिखी थी. हरिश्चंद्र ने अपनी वसीयत में कहा था कि माधवी (उनकी एक और रक्षिता) और मल्लिका को हरिश्चंद्र के हिस्से की संपत्ति बेचकर वित्तीय मदद की जाए. हालांकि गोकुलचंद्र ने माधवी के दावे को फालतू

बताया था, क्योंकि वह एक वेश्या थी जिसके और भी ग्राहक थे. वे बताते हैं, कि हरिश्चंद्र को मल्लिका से 'यथार्थ स्नेह' था. हरिश्चंद्र उसे प्रति माह 21 रुपये दिए जाने का प्रावधान चाहते थे, जिसका पालन करने के लिए गोकुलचंद्र राज़ी थे, हालांकि यह सवाल अपनी जगह है कि यह भुगतान अगर किया भी गया तो कब तक उसका निर्वाह किया जा सका.

हरिश्चंद्र की मृत्यु से पहले मल्लिका ठठेर बाज़ार के भिखारीदास लेन में हरिश्चंद्र परिवार के मुख्य घर के दक्षिण में बने हुए एक घर में आराम से रहती थीं. वह घर हरिश्चंद्र के अपने भव्य भवन से एक पुल द्वारा जुड़ा हुआ था. हरिश्चंद्र की मृत्यु के समय वे उनकी मृत्यु-शय्या के पास मौजूद थीं और आगे के कुछ वर्ष बनारस में भी रहीं. लेकिन उसके बाद वह ओझल हो जाती हैं और यह संभव है कि उन्होंने जल्द ही लिखना छोड़ दिया होगा... मुमकिन है, उन्होंने हरिश्चंद्र के गुज़रने के बाद विधवा का जीवन जिया हो, और मुमकिन है, वे वृंदावन चली गई हों... जो कि परित्यक्ता और अभागी विधवाओं का अंतिम शरण माना जाता है. मल्लिका का अपना दुर्भाग्य संभवत: उसी व्यथा को प्रतिबिंबित करता है जिसका दर्दनाक चित्रण उन्होंने 'सौन्दर्यमयी' जैसों के सन्दर्भ में किया था.

यह सच है, कि मल्लिका अपने पीछे स्थायी महत्त्व की साहित्यिक थाती छोड़ गईं. उनकी मौलिकता का विस्तार या सीमाएं जो भी हों, वे निश्चित रूप से आधुनिक हिंदी की पहली स्त्री उपन्यासकार के सम्मान की हक़दार हैं और ऐसी पहली लेखिका होने के सम्मान की भी, जिन्होंने स्त्री के भाग्य को, उसके भावनात्मक अस्तित्व को, उसके नज़रिये को अपने लेखन का केंद्र बनाया और शायद ऐसी पहली लेखिका होने के सम्मान की भी, जिसने स्त्रियों के दुर्भाग्य के चित्रण में चुनौती और अवज्ञा का एक सुर जोड़ा.

'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार' के लिए राजस्थान के युवा कवि को देवेश पथ सारिया का चयन

इस वर्ष के भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार के लिए राजस्थान के युवा कवि देवेश पथ सारिया को चुना गया है. देवेश को उनके कविता संग्रह 'नूह की नाव' के लिए इस सम्मान से सम्मानित किया जाएगा. रजा फाउंडेशन के प्रबंध न्यासी अशोक वाजपेयी ने दी.

पुरस्कार के लिए कविता संग्रह का चयन आनद हर्षुल ने किया है. इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आनंद हर्षुल ने कहा कि यह सुखद था कि इस बार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त कविता संग्रहों में स्त्री कवियों की संख्या ज्यादा थी. अंतिम रूप से जिन पांच कवियों को चुना गया उनमें दो स्त्रियां थीं. पर कविता को जीवन में रच दी गई

सीमाओं का उल्लंघन करना आना चाहिए. जब हम यह नहीं कर पाते हैं तो कविता में, मनुष्य-जीवन की व्यापकता का अन्वेषण नहीं कर पाते हैं.

उन्होंने कहा, 'हमेशा स्त्री या पुरुष होने से बड़ा, कवि होना होता है और यह होना, हमें आना चाहिए. मैंने देवेश पथ सारिया के संग्रह 'नूह की नाव' को इस पुरस्कार के लिए इसलिए चुना कि उनकी कविताओं में जीवन में रच दी गई सीमाओं के उल्लंघन का प्रयत्न मुझे दिखता है. दिखता है कि वे अपनी कविताओं में 'पृथ्वी की नाभि का हाल' जानने की कोशिश कर रहे हैं.'

1986 भरतपुर में हुआ था. देवेश ने अलवर से भौतिक शास्त्र में एमएससी की है और नैनीताल ऑब्जर्वेटरी से स्टार क्लस्टर्स पर पीएच.डी. की है. वर्तमान में वह ताइवान में पोस्ट डॉक्टरल रिसर्चर हैं. उनकी रचनाएं तमाम पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं. देवेश की कविताओं का अनुवाद मंदारिन चायनीज, अंग्रेजी, स्पेनिश, पंजाबी, बांग्ला और राजस्थानी भाषा-बोलियों में हो चुका है. प्रस्तुत हैं देवेश की चर्चित कविता-

पीसा की झुकी मीनार पर
कोई उसे धक्का मारकर टेढ़ी कर देने का श्रेय लेना चाहता था
कोई जुड़ जाना चाहता था उछलकर
सूरज और मीनार को जोड़ती काल्पनिक सरल रेखा से
किसी ने कोशिश की उसे अंगूठे से दबा देने की
किसी ने आइसक्रीम के शंकु में भर खा जाने की
ट्रिक फोटोग्राफी करने में जुटे सैलानियों के बीच
मैं विराटता महसूस कर रहा था
पीसा की झुकी मीनार की

अष्टावक्र के एक वक्र सी झुकी
उस मीनार के सामने मेरे पंहुच जाने में
संयोग था तो बस इतना
कि फ्रांस के उस शहर नीस से
जहां मैं काम से गया था
बहुत दूर नहीं था इटली का पीसा शहर
इतना दूर तो हरगिज़ नहीं
कि उन्नीस साल का इंतज़ार उसके सामने घुटने तक दे
और बचपन में स्वयं से किये वादे को पूरा करने के लिए
मैं फूँक ही सकता था
बचाई हुई कुछ रकम

उन्नीस साल पहले
नौवीं कक्षा की पढ़ाई के दौरान

THE CORE IAS

पढ़ा था मैंने गैलीलियो का वह प्रसिद्ध प्रयोग
वस्तुओं के द्रव्यमान और पृथ्वी के गुरूत्व के बारे में
जो पीसा की इसी झुकी मीनार से किया गया था
तभी मेरी खुद के साथ एक महत्वपूर्ण बैठक के दौरान
यह तय हुआ था कि मुझे जाना है पीसा
झुकी मीनार पर चढ़ना है
हालांकि तब मेरे पास नहीं होते थे साइकिल का पंक्चर जुड़वाने के भी पैसे
और कई बार जुगाड़ के पीछे लटककर आता था मैं स्कूल

यह जानकर कि जब तक मीनार के द्रव्यमान केंद्र से डाला गया लंब
गिरता रहेगा आधार पर मीनार के
तब तक ही खड़ी रहेगी मीनार
मैं करता रहा हूं
पीसा की मिट्टी की पकड़ मजबूत होने की प्रार्थना

मीनार तक पंहुचना
मेरी प्रार्थनाओं और अदम्य कोशिशों का फल था
मीनार के ऊपर चमकता वह सूरज
किताबों और टेलिस्कोप डोम में किये
सर्द रतजगों के बाद हुआ था नसीब

चढ़ते हुए मीनार की संकरी सीढ़ियां
मैंने हवा में तैरता हुआ महसूस किया
गैलीलियो का झीने परदे जैसा अस्तित्व
बीच से घिस चुके सीढ़ियों के पत्थरों पर
मैंने ढूँढा उन्हें घिसने में गैलीलियो के पांवों का योगदान
यह उम्मीद रखते हुए
कि चार सौ साल से ज़्यादा के इतिहास में
काश कि ना बदले गए हों सीढ़ियों के पत्थर

मैं नहीं जानता कि
गुरूत्व के अपने प्रयोग के बाद महान गैलीलियो
मीनार के ऊपर से हंसे होंगे या रहे होंगे अविचल
यूं भी दुनिया के सामने सिद्ध करने से पहले
वे स्वयं तो जानते ही थे निपट सच, गुरूत्व के उस पहलू का
वैसे भी यह नहीं था गैलीलियो का एकमात्र प्रयोग
यह एक पड़ाव भर था उनकी अनगिनत उपलब्धियों की यात्रा का

THE CORE IAS

कभी किसी उदासी के दौर में
जब दबाया बजा रहा था विज्ञान को पोंगी आवाज़ों के द्वारा
शायद कभी उदास बैठने आए हों गैलीलियो मीनार पर
तब शायद हंसे हों वे पूरी दुनिया की मूर्खता पर
मीनार की दीवार से पीठ सटाकर
या, हँसते-हँसते चढ़ीं हों मीनार की सीढ़ियां शायद

उन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद
लटके हुए, बड़े-से ऐतिहासिक घंटे के सामने
चुपचाप चला आया था मेरे सामने
कितने ही जीवित बिम्बों का सैलाब
कुछ मेरे हिस्से का इतिहास
कुछ गैलीलियो के बारे में पठित-कल्पित का फ्यूज़न

पीसा की झुकी मीनार के सबसे ऊपर पंहुचकर
मैं तनकर नहीं खड़ा था, जरा सा भी
मेरी आँखें थीं नम
और मैं फिर नौवीं कक्षा में था।

भारत भूषण अग्रवाल सम्मान

हिंदी काव्य के क्षेत्र में दिया जाने वाला 'भारत भूषण अग्रवाल सम्मान' बहुत ही प्रतिष्ठित पुरस्कार है. पहले यह पुरस्कार एक कविता के लिए दिया जाता था, लेकिन अब कविता संग्रह पर दिया जाता है. रज़ा फाउंडेशन यह पुरस्कार प्रतिष्ठित कवि भारत भूषण अग्रवाल की स्मृति में प्रदान करता है. इस पुरस्कार के अंतर्गत सम्मानित कवि को 21,000 रुपए प्रदान किए जाते हैं.

THE CORE IAS

हिंदी के चर्चित कवि भारत भूषण अग्रवाल का जन्म 3 अगस्त, 1919 उत्तर प्रदेश के मथुरा में हुआ था. उन्होंने आगरा और दिल्ली से अपनी तालीम हासिल की. तालीम पूरी करने के बाद उन्होंने आकाशवाणी और कई साहित्यिक संस्थानों में अपनी सेवाएं दीं. पैतृक व्यवसाय से दूर उन्होंने साहित्य लेखन को ही अपना कार्य माना. अपने पहले कविता संग्रह 'छवि के बंधन' (1941) के प्रकाशन के बाद वे मारवाड़ी समाज के मुखपत्र 'समाज सेवक' के संपादक बनकर कलकत्ता चले गये. यहीं पर उनका परिचय बंगाली साहित्य और संस्कृति से हुआ. भारत भूषण 'तार सप्तक' (1943) में एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में शामिल हुए और अपनी कविताओं के लिए प्रसिद्ध हुए. 'जागते रहो' (1942), 'मुक्तिमार्ग' (1947) लिखने के दौरान वे इलाहाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'प्रतीक' से भी जुड़े रहे और 1948 में ऑल इंडिया रेडियो में कार्यक्रम अधिकारी बन गये. उनकी कविता 'उतना वह सूरज है' के लिए 1978 में साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया था. 23 जून, 1975 में उनकी मृत्यु हो गई.

वरिष्ठ पत्रकार और लेखक परवेज़ अहमद का निधन

वरिष्ठ पत्रकार और लेखक परवेज़ अहमद का आज सुबह निधन हो गया. वे 75 वर्ष के थे और पिछले कुछ दिनों से अस्वस्थ्य चल रहे थे. वरिष्ठ पत्रकार फरहत रिज़वी ने बताया कि हॉस्पिटल में इलाज के दौरान उन्होंने अंतिम सांस ली. पत्रकारिता और लेखन जगत ने परवेज़ अहमद के निधन पर शोक व्यक्त किया है.

फरहत रिज़वी ने परवेज़ अहमद के बारे में बातों को साझा करते हुए बताया कि उनका जन्म मध्य प्रदेश के उज्जैन शहर में हुआ था. उर्दू में एमए करने के बाद 1977-78 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एम. फिल. में दाखिला लिया और पढ़ाई के साथ-साथ सांध्य समाचार में काम भी करने लगे थे.

फरहत रिज़वी बताते हैं कि परवेज़ अहमद ने कुछ समय तक उर्दू दैनिक क़ौमी आवाज़ में काम किया और फिर नवभारत टाइम्स से जुड़ गए. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर शुरू हुआ तो परवेज़ विभिन्न चैनलों से भी जुड़े. खेल उनकी प्रिय बीट थी. उज्जैन और फिर दिल्ली में पढ़ाई के साथ साथ क्रिकेट में उनकी विशेष रुचि थी और पिच पर भी उनका बल्ला कमाल दिखाता था. पत्रकारिता की व्यस्तता के बावजूद साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में परवेज़ हमेशा सक्रिय रहते थे.

फरहत बताते हैं कि परवेज़ ने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे. शुरुआती दौर में संघर्ष बहुत था लेकिन धीर-गंभीर व्यक्तित्व के मालिक ने हर चुनौती का सामना हँसते हुए किया. परवेज़ ने हिंदी के मशहूर लेखक गुलशेर शानी की लड़की सोफिया शानी से शादी की. उनकी दो बेटियां रूही और सुबूही हैं और मीडिया में सक्रिय हैं.

पत्रकारिता के साथ उन्होंने लेखन में भी अपनी अलग पहचान कायम की. परवेज़ का हिंदी में उपन्यास 'मिर्ज़ावाडी' और एक नाटक 'छोटी डेवढी बालियाँ' प्रकाशित हुए. इन पुस्तकों को उर्दू में भी अनुवाद हुआ. नाटक और क्रिकेट पर उनकी एक-एक पुस्तक प्रकाशन प्रक्रिया में हैं.

सिने साहित्यकार डॉ. राजीव श्रीवास्तव 'जेपी सम्मान' से सम्मानित

सिनेमा के साहित्य पर गहरी पकड़ रखने वाले और तमाम कलाकारों तथा सिनेमा के अनछूए पहलुओं को साहित्य के पन्नों पर उजागर करने वाले वरिष्ठ पत्रकार और लेखक डॉ. राजीव श्रीवास्तव को 'जेपी राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय सम्मान समारोह' से सम्मानित किया गया है. राजीव श्रीवास्तव की लोक, कला, संस्कृति, संगीत और सिनेमा में खासी रुचि है. उन्होंने गायक मुकेश पर 'मुकेशः सुरीले सफर की कहानी', संगीतकार कल्याणजी-आनंद पर पर पुस्तकें लिखी हैं.

नई दिल्ली स्थित डॉ. आम्बेडकर अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र 'जेपी राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय सम्मान समारोह' का आयोजन किया गया. कार्यक्रम में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य, सेवा और उपलब्धियों के लिए विशिष्ट व्यक्तियों को सम्मानित किया गया. पूर्व राष्ट्रपति राम नाथ कोविंद ने ये सम्मान प्रदान किए. विधि एवं न्याय के क्षेत्र में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता डॉ. गोविन्द कुमार सक्सेना को भी सम्मानित किया गया.

संगीत को समर्पित आदमी के दुख-दर्द और सुखों की संगीतमय दास्तां है नाटक 'बाबूजी'

मिथिलेश्वर हिंदी के प्रमुख कथाकार हैं. ग्रामीण जीवन पर आधारित कहानियों को सीधी-सादी शैली में प्रस्तुत करने वाले मिथिलेश्वर का ताल्लुक बिहार के भोजपुर से है. मिथिलेश्वर मुख्यतः कथाकार हैं. उन्होंने कहानियां लिखी हैं उपन्यास लिखे हैं. प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के बाद ग्रामीण अंचल पर लिखने वाले मिथिलेश्वर प्रमुख कथाकार हैं. 'बाबूजी', 'बंद रास्तों के बीच', 'दूसरा महाभारत', 'मेघना का निर्णय', 'गांव के लोग', 'विग्रह बाबू', 'हरिहर काका', 'छह महिलाएं', 'चल खुसरो घर अपने' उनके चर्चित कहानी संग्रह हैं.

एनएसडी रिपर्टरी के अध्यक्ष राजेश सिंह ने बताया कि 'बाबूजी' एक संगीतमय नाट्य प्रस्तुति होगी. इसका का संगीत रंगऋषि स्वर्गीय बीवी कारंथ के द्वारा सृजित किया गया है. कहानी का नाट्य रूपांतरण विभांशु वैभव ने किया है. नाटक के लिए प्रकाश परिकल्पना अवतार साहनी और वेशभूषा नलिनी जोशी ने तैयार की है. नाटक का निर्देशन रिपर्टरी प्रमुख यानी राजेश सिंह खुद कर रहे हैं.

राजेश सिंह बताते हैं कि यह नाटक बाबूजी यानी लल्लन सिंह पर केंद्रित है. बाबूजी संगीत और नृत्य के प्रेमी हैं, सारंगी बजाते हैं. सारंगी के प्रति उनका जुनून है. लेकिन इस जुनून के चलते उन्हें अपने ही परिवार में उपेक्षित होना पड़ता है. बाबूजी की पत्नी ही उनकी उपेक्षा करती है. परिवार से उपेक्षित व्यक्ति का समाज भी दुश्मन हो जाता है. लेकिन बाबूजी इस सब की परवाह किए बिना घर-द्वार छोड़कर नौटंकी कंपनी बनाते हैं और जगह-जगह नृत्य-संगीत का प्रदर्शन करते हैं. एक बार उन्हें अपनी ही बेटी की शादी में नौटंकी प्रदर्शन करने का निमंत्रण मिलता है. यह नाटक बाबूजी के दर्द, खुशी और आकांक्षा की विविध अनुभूति को संगीतमय रूप में प्रदर्शित करता है.

नारी की व्यथा कहता है संजीव का साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास 'मुझे पहचानो'

1980 में सारिका में कहानी प्रतियोगिता में प्रथम आकर 'अपराध' कहानी से साहित्य के आकाश पर चमकने वाले संजीव को 43 साल बाद यह पुरस्कार मिला.

संजीव का उपन्यास 'मुझे पहचानो' भारत में प्रचलित सती प्रथा पर आधारित है. सती प्रथा को समाप्त करने वाले राजा राममोहन राय की भाभी पर सती प्रथा को लेकर हुए उत्पीड़न को लेकर केंद्र में रखकर यह उपन्यास लिखा

गया है. कथाकार संजीव ने साहित्य अकादमी की घोषणा पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि उनका यह उपन्यास स्त्रियों के शोषण की कथा कहता है. इसमें सती प्रथा, स्त्रियों के शोषण और उस समय के सामाजिक परिवेश के बारे में कई मुद्दों को शामिल किया गया है.

'मुझे पहचानो' उपन्यास भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत और सती प्रथा जैसी कुप्रथा के उन्मूलक राजा राममोहन राय की भाभी पर केंद्रित है. कहानी बताती है कि जब राजा राममोहन राय के भाई जगनमोहन की पत्नी को पति की मृत्यु के बाद जबरदस्ती सती किया जा रहा था, उसे जबरन चिता पर जिंदा जलाया जा रहा था, तभी बारिश होने के कारण वह अधजली रह गई. अगले दिन इस पर समाज ने विचार-विमर्श किया और उसे फिर से सती किया गया. 'मुझे पहचानो' की कहानी बेहद मार्मिक और रोंगटे खड़े कर देने वाली है. प्रस्तुत है इस उपन्यास का एक अंश-

मुझे पहचानोः संजीव

हर दिन की तरह आज भी समापन पर अलोक मंजरी के सतीदाह का हैल्युसिनेशन-मंचन. राममोहन के बड़े भाई जगन्मोहन की मृत्यु, भाभी अलोक मंजरी को ढोल नगाड़े, तुरुही के बीच लाया जाना. पति के शव को लेकर 'सहमरण' के लिए बैठना, चिता की आग. लोगों का चला जाना. सुबह फिर लौटना, झाड़ियों में छुपती अलोक को लाकर पुन: चिता के हवाले करना.

जलती हुई ज्वाला/लपलपाती लपटें

अलोक मंजरी की जलती लाश-लगा, आसमान से बिजली चमकी और भयंकर गड़गड़ाहट के बीच अलोक मंजरी की चिता से एक सुंदरी औरत प्रकट हुई. उसके दोनों ओर 5-5 वर्ष के दो बच्चे थे.

"कौन है? कौन है? कैसे आ गयी?" के रोष भरे निषेधात्मक शोर की अवमानना करती, ढीठ बन आगे बढ़ कर उसने माइक को थाम लिया-

"आप सारे विद्वान सतियों की पात्रता-अपात्रता पर फिर-फिर विचार करते रहेंगे, आज एक रक्षंदा सती पर विचार कर लीजिए."

"कौन है रक्षंदा सती?" धर्माचार्य ने टोका.

"मैं! मैं सावित्री कुंअर! इसी जगह मुझे जला कर मार डाला गया था, पांच साल पहले, इसी जगह पांच साल बाद फिर से आवभूत हो रही हूं."

"पहचानिए मुझे, जिसे उसके जन्मदाता पिता ने नहीं पहचाना, जन्मदात्री मां ने नहीं पहचाना, रियासतदारों ने नहीं पहचाना- पहचानिए मुझे. डी.एन.ए. मिला कर देख लीजिए. एक लंबी जंजीर घेर रही है हम अलोकाओं को. हां, मैं अलोक मंजरी हूं, राजा राममोहन राय की भाभी, जिसे उनके पति जगनमोहन बैनर्जी की मौत पर मार-पीट कर सती बनाया गया था, आंधी, पानी झड़-झंझा की रात सुबह देखा कि मरी नहीं तो गांव वालों ने दोबारा जलाया."

"सैकड़ों वर्षों से जलायी जाती रही धर्म और परंपरा की बेदी पर सैकड़ों वर्षों से. पर इसकी जिद देखिए यह मरी नहीं, रक्षंदा है. जलने के दाग- ये, ये, ये, ये." उसने कपड़े खोल कर दाग दिखाने शुरू किये एक-एक कर.

राय साहब ने लठैतों को बुलाया, पर धर्माचार्य ने रोक दिया.

"सिर के कुछ केश जल गये थे, चमड़े जल गये थे- ये रहे. कुछ आग बाहर थी, कुछ अंदर. इस अलोक को स्वर्ग ने नहीं रोका. स्वर्ग से उतर कर आ गयी सावित्री कुंअर के रूप में आपके सामने. अपने दो बच्चों और पति...के साथ. मेरी एक संतान पूर्व लृपति राजा उदय प्रताप के दूसरे पुत्र की है- यह लव, और दूसरी संतान इस पति से है- ये कुश, दूसरे पति अनमोल से."
"मैं आपके सामने हूं- पांच सालों से हूं आपके सामने, आपने पहचाना नहीं, क्यों? इसलिए कि आपने तो मुझे जला कर पतिलोक भेज दिया था पर मैं ढीठ लौट आयी स्वर्ग से."

"आप चाहें तो इस अलोक मंजरी को फिर से मार कर जला दें. मेरे इस दाह में आप सभी स्त्री-पुरुष, माता-पिता शामिल रहे, सारे पुण्यार्थों, धर्म, परंपराओं, समाज- मैं आपके कठघरे में खड़ी हूं. विचार कीजिए."

अंग्रेजी भाषा में नीलम शरण गौर के उपन्यास रेक्युम इन रागा जानकी, संस्कृत में अरुण रंजन मिश्र के कविता संग्रह शून्ये मेघगानम्, उर्दू भाषा के लिए सादिक़ा नवाब सहर के उपन्यास 'राजदेव की अमराई' को पुरस्कार के लिए चुना गया है. अन्य भाषाओं की बात करें तो डोगरी भाषा के लिए विजय वर्मा, गुजराती के लिए विनोद जोशी, कश्मीरी के लिए मंशूर बनिहाली, मणिपुरी भाषा के लिए सोरोख्खैबम गंभिनी, ओड़िया भाषा के लिए आशुतोष परिडा, पंजाबी के लिए स्वर्णजीत सवी, राजस्थानी के लिए गजेसिंह राजपुरोहित, सिंधी के लिए विनोद आसुदानी की कृतियों को चुना गया है. इन सभी को कविता संग्रह के लिए पुरस्कृत किया जाएगा. उपन्यास के लिए बांग्ला भाषा में स्वपनमय चक्रबर्ती, मराठी में कृष्णात खोत और तमिल में राजशेखरन को चुना गया है.

कहानी संग्रह में असमिया भाषा के लिए प्रणवज्योति डेका, बोडो में नंदेश्वर दैमारि, कोंकणी में प्रकाश एस. पर्येकार, संताली भाषा के लिए तारासीन बासकी और तेलुगु के लिए टी. पतंजलि शास्त्री को सम्मानित किया जाएगा. निबंध में बात करें तो कन्नड भाषा के लिए लक्ष्मीशा तोल्पडि, मैथिली में बासुकीनाथ झा, नेपाली में युद्धवीर राणा की कृतियों का चुना गया है. आलोचना के लिए मलयालम में ई.वी. रामकृष्णन की कृति को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया जाएगा.

पिछले साल बद्री नारायण के तुमड़ी के शब्द को मिला सम्मान

THE CORE IAS

पिछले वर्ष बद्री नारायण के कविता संग्रह 'तुमड़ी के शब्द' को यह पुरस्कार दिया गया था. हिंदी भाषा के लिए पहली बार माखन लाल चतुर्वेदी को उनके काव्य 'हिमतरंगिनी' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया था.

साहित्य अकादेमी पुरस्कार 2023

भाषा	पुस्तक एवं विधा	लेखक
असमिया	डॉ. प्रणवज्योति डेकर श्रेष्ठ गल्प (कहानी–संग्रह)	प्रणवज्योति डेका
बाङ्ला	जलेर ऊपर पानी (उपन्यास)	स्वपनमय चकबर्ती
बोडो	जिउ–सफरनि दाखवन (कहानी–संग्रह)	नंदेश्वर दैमारि
डोगरी	दऊं सदियां इक सीर (कविता–ग़ज़ल)	विजय वर्मा
अंग्रेज़ी	रेक्युम इन रागा जानकी (उपन्यास)	नीलम शरण गौर
गुजराती	सैरन्ध्री (प्रबंध काव्य)	विनोद जोशी
हिंदी	मुझे पहचानो (उपन्यास)	संजीव
कन्नड	महाभारत अनुसंधानदा भारतयात्रे (निबंध)	लक्ष्मीशा तोल्पडि
कश्मीरी	येथ वावेह हेले साँग कौस जेले (कविता)	मंशूर बनिहाली
कोंकणी	वर्सल (कहानी–संग्रह)	प्रकाश एस. पर्येंकार
मैथिली	बोध संकेतन (निबंध)	बासुकीनाथ झा
मलयाळम्	मलयाला नोवेलिंटे देशकालंगळ (आलोचना)	ई.वी. रामकृष्णन
मणिपुरी	याचंगबा नांग हालो (कविता)	सोरोख्खैबम गंभिनी
मराठी	रिंगाण (उपन्यास)	कृष्णात खोत
नेपाली	नेपाली लोकसाहित्य र लोकसंस्कृतिको परिचय (निबंध)	युद्धवीर राणा
ओड़िआ	अप्रस्तुत मृत्यु (कविता)	आशुतोष परिडा
पंजाबी	मन दी चिप (कविता)	स्वर्णजीत सवी
राजस्थानी	पळकती प्रीत (कविता)	गजेसिंह राजपुरोहित
संस्कृत	शून्ये मेघगानम् (कविता)	अरुण रंजन मिश्र
संताली	जाबा बाहा (कहानी–संग्रह)	तारासीन बासकी (तुरिया चंद बासकी)
सिंधी	हाथु पाकिदिजैन (कविता–गज़ल)	विनोद आसुदानी
तमिळ	नीरवाज़ी पडुवुम (उपन्यास)	राजशेखरन (देवीभारती)
तेलुगु	रामेश्वरम काकुलु मारिकोन्नि कथलु (कहानी–संग्रह)	टी. पतंजलि शास्त्री
उर्दू	राजदेव की अमराई (उपन्यास)	सादिका नवाब सहर

कथाकार संजीव की अन्य किताबें

कथाकार संजीव का जन्म 6 जुलाई, 1947 को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर के बांगरकलां गांव में हुआ था. उनका पूरा नाम राम सजीवन प्रसाद है. विज्ञान के छात्र रहे संजीव ने तालीम पूरी करने के बाद पश्चिम बंगाल में एक रासायनिक प्रयोगशाला में अपनी सेवाएं दीं. सरकारी सेवा में रहते हुए संजीव लगातार साहित्य सृजन करते रहे. सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने 'हंस' सहित कई साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन किया.

लेखक संजीव ने भिखारी ठाकुर के जीवन पर आधारित एक उपन्यास 'सूत्रधार' (Sutradhar) लिखा है. तमाम शोध-अध्ययन के बाद तैयार जीवनपरक उपन्यास 'सूत्रधार' काफी चर्चित रहा है. संजीव ने उपन्यास, कहानी, नाटक, रिपोर्ताज, आलोचना और सामयिक विषयों पर खूब लिखा है.

संजीव की अन्य कृतियों में तीस साल का सफरनामा, आप यहां हैं, भूमिका और अन्य कहानियां, प्रेतमुक्ति, दुनिया की सबसे हसीन औरत, ब्लैक होल, खोज, गति का पहला सिद्धान्त, गुफा का आदमी, दस कहानियां, गली के मोड़ पर सूना-सा कोई दरवाजा और संजीव की कथायात्रा: पड़ाव: 1,2,3 प्रमुख हैं. ये सभी कहानी संग्रह हैं.

संजीव के चर्चित उपन्यासों में 'किशनगढ़ के अहेरी', 'सर्कस', 'सावधान!नीचे आग है', 'धार', 'पांव तले की दूब', 'जंगल जहां शुरू होता है', 'सूत्रधार', 'आकाश चम्पा' और 'रह गईं दिशाएं इसी पार' शामिल हैं.

संजीव को उनके साहित्य सृजन के लिए 'कथाक्रम सम्मान' लखनऊ, 'इंदु शर्मा स्मृति अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान', 'भिखारी ठाकुर लोक सम्मान', 'कथा शिखर सम्मान' और 'पहल' सम्मान सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है.

आखिर क्यों नहीं मिलता दलित और मुस्लिम लेखकों को साहित्य अकादमी पुरस्कार!

- साहित्य अकादमी पुररस्कारों की बधाइयों के बीच यह सवाल किसी नहीं उठाया कि किसी दलित, आदिवासी या मुस्लिम लेखक को हिंदी में अकादमी पुरस्कार क्यों नहीं मिलता. यह सवाल लेखिकाओं के लिए भी पहले उठता था पर एक दशक में अकादमी ने मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा और अनामिका को यह अवॉर्ड देकर अपने माथे पर लगा कलंक का टीका धो लिया. लेकिन दलितों और मुस्लिम लेखकों के साथ कब न्याय होगा, यह सवाल अभी भी बरकरार है. ओम प्रकाश वाल्मीकि, तुलसी राम, मोहनदास नैमिशराय, श्योराज सिंह बेचैन, धर्मवीर सहित ऐसे तमाम लेखक रहे हैं जिनको यह साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिल सकता था. इसी तरह शानी, बदीउज़्ज़मां, असगर वज़ाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह और असद ज़ैदी जैसे मुस्लिम लेखकों को यह अवॉर्ड मिलना चाहिए था.

- बद्दीउज़्ज़मां के पत्रकार पुत्र शजी जम्मां ने अकबर पर एक विशाल उपन्यास लिखा लेकिन हिंदी जगत ने नोटिस नहीं लिया. हालांकि, साहित्य अकादमी पुरस्कार जाति, धर्म और लिंग के आधार पर नहीं मिलता. पर सवाल यह है कि हमारा साहित्य समावेशी कब होगा. आजादी के 70 साल बाद भी इन लेखकों को उनका हक क्यों नहीं मिल रहा, क्या साहित्य अकदमी स्वर्ण मानसिकता से परिचालित है?
- आखिर निर्णायक उन लेखकों के बारे में क्यों नहीं सोचते. अकादमी कहती है कि पिछले तीन साल में जो पुस्तकें शॉर्ट लिस्ट हुईं उनमें यह पुरस्कार दिया गया पर अकदमी पुरस्कार की घोषणा से पहले शॉर्टलिस्टेड किताब की घोषणा क्यों नहीं करती. जबकि बुकर पुरस्कार के लिए शॉर् टलिस्टेड किताबों की घोषणा पहले की जाती है.
- असगर वज़ाहत को संगीत नाटक अकादमी के पुरस्कार के लिए चुना गया लेकिन साहित्य अकादमी आज तक नहीं दिया गया. जबकि, दया प्रकाश सिन्हा को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार मिलने के बाद साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया. तब हिंदी के मुस्लिम लेखक क्यों वंचित रहें साहित्य अकादमी से. यह सवाल साहित्य की दुनिया में अक्सर उठता रहता है.

साहित्य अकादमी के साहित्योत्व में 150 भाषाओं पर कार्यक्रम

- साहित्य अकादमी अगले वर्ष अपनी स्थापना के 70 वर्ष पूरे करने जा रहा है. इस उपलक्ष में 11 से 17 मार्च तक साहित्योत्व का आयोजन किया जाएगा. सबसे बड़ी बात ये है कि इस साहित्योत्सव में 150 भाषाओं के साहित्यकार और कलाकार शिरकत करेंगे. इस अवसर पर संवत्सर व्याख्यान भी आयोजित किया जाएगा.
- इस बार साहित्योत्सव में 150 भाषाओं के लेखक शामिल होंगे और यह दुनिया का सबसे बड़ा साहित्य महोत्सव होगा. उन्होंने बताया कि अभी तक साहित्य का ऐसा कोई भी आयोजन नहीं हुआ है जिसमें इतनी अधिक भाषाओं को शामिल किया गया हो. 150 भाषाओं के 150 सत्र आयोजित किए जाएंगे. इसमें देश-दुनिया के लेखक और कलाकार शिरकत करेंगे

पहला संवत्सर व्याख्यान अज्ञेय ने दिया

- साहित्य अकादमी के पहले संवत्सर व्याख्यान में प्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' को आमंत्रित किया गया था. यह व्याख्यान 12 मार्च, 1986 को आयोजित किया गया था. उन्होंने स्मृति के परिदृश्य विषय पर अपने विचार व्यक्त किए थे.

भिखारी ठाकुर के जीवन से रू-ब-रू कराता संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार'

भोजपुरी के शेक्सपियर (Bhojpuri Shakespeare) के तौर पर अपनी पहचान बनाने वाले लोकनर्तक और कलाकार भिखारी कीपुण्यतिथि है. भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसंबर, 1887 को बिहार राज्य के छपरा जिले के छोटे से गांव कुतुबपुर के एक सामान्य नाई परिवार में हुआ था. उन्होंने अपने नाटक, लोकगीत व दोहा में पलायन की

कथाकार संजीव (राम संजीवन प्रसाद) के सोलह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं. किसानों की आत्महत्या पर आधारित उपन्यास 'फांस' काफी चर्चित रहा है. सरकस, सावधान! नीचे आग है , प्रत्यंचा, मुझे पहचानों, पूर्वी बयार, पांव तले की दूब, रानी की सराय (बाल उपन्यास) जैसी रचनाओं को हिंदी जगत में अलग ही स्थान प्राप्त है.

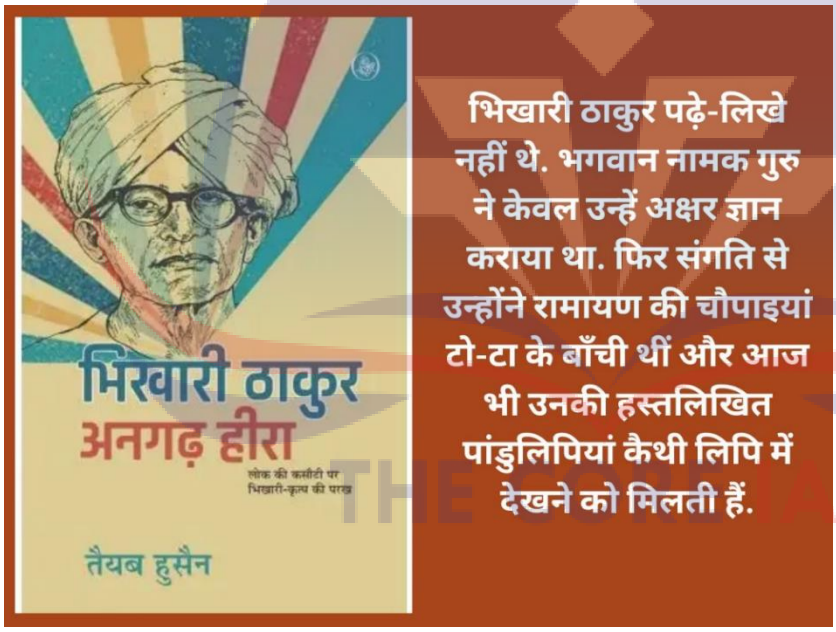

समस्या व महिला की समस्या को प्रमुखता से रखा.

किसी ने उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' कहा है तो किसी ने 'भरत मुनि की परंपरा का कलाकार' कह कर पुकारा है. राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें 'अनगढ़ हीरा' बताया है.

भिखारी ठाकुर के नाटकों का देश-विदेश मंचन किया गया है. उन पर बनी फिल्म "नाच भिखारी नाच" का कई देशों में प्रदर्शन हो चुका है.

भिखारी ठाकुर ने अपने एक नाटक 'गबरघिचोर' में गिरमिटिया, चटकलिहा मजदूरों, किसानों के पलायन की संस्कृति पर प्रहार किया है. उनकी मृत्यु 10 जुलाई, 1971 में हुई थी.

लेखक संजीव ने भिखारी ठाकुर के जीवन पर आधारित एक उपन्यास 'सूत्रधार' तैयार किया है. इस उपन्यास को राधाकृष्ण प्रकाशन ने प्रकाशित किया है. तमाम शोध-अध्ययन के बाद तैयार जीवनपरक उपन्यास 'सूत्रधार' काफी चर्चित रहा है. पेश है उपन्यास का एक अंश-

नाच!

अन्न नहीं, जल नहीं, दीन नहीं, दुनिया नहीं; जो कुछ है और जितना कुछ है, बस नाच है. उनकी एकमात्रा मंशा थी कि उनका दल सबसे ऊपर हो, अद्‌वितीय. इसके लिए जो भी सुन्दर चीज जहां भी दिख जाती, वे उठा लाने का

स्वप्न पालते. वे ऐसे डोलते मानो नचनियां न होकर कोई बादशाह हों, जो अपने विरुद्ध चल रहे षड्यंत्र का पता लगाने निकला हो!

"जोगिया के गिरोह में फिरंगी राम नचनिया पुरसे-भर उछल जाता है." एक सूचना.
"उसके समाजी भी तो देखो." कुछ देर तक गोते लगाने के बाद जैसे इस रहस्य का सूत्रा पकड़ पाते हैं शिव बालक, "वह ताल ही है जो फिरंगी राम को उछाल देता है, वरना तो वो वही फिरंगिया न है."
"तुम लोग असल पैन्ट (प्वाइंट) को छोड़ दे रहे हो." जगरूप ने टोंका.
"का है असल पैन्ट?"
"मुकुन्दी भांड़ के पास जो नचनिया है, उसकी तान सीवान तक सुनाई पड़ती है. एक बार हम और महटर साहेब आधी रात को सीवान से उस तान को सुनकर चले तो चलते गए, चलते गए, चलते गए–तीन कोस तक चलते गए एक उठनिया..."
"तीन घंटे तक तान ही नहीं टूटी?" एक चुटकी.
"बीच में नदी-नार कुछ नहीं था?" दूसरी.
"अरे ऊ तान पे न सवार थे." तीसरी.
जगरूप अपनी बात की किरकिरी होते देख कुढ़ गया, ऊपर से जब जगदेव ने यह कह दिया, "मुकुन्दी में बात तो कोई होती नहीं." तो अपने नायक की निन्दा पर खीझ गया, "तुम ही सबसे बड़े जानकार हो न?"
"ए भाई!" भिखारी ने हस्तक्षेप किया, "एकरा में 'झगरा' कवन चीज के बा...? हमको फिरंगी की पुरसे-भर की उछाल, जोगिया गिरोह के समाजी, मुकुन्दी के नचनिया की तान–सब कुछ चाहिए, और वह सारा कुछ भी जो सबसे नीमन है, जेकरा पब्लिक पसन्द करती हो."

बाबूलाल बैल की तरह जूमते, कुछ बोलते नहीं, बस गुनते और धुनते रहते. जितनी ही जानकारियां मिलतीं वे और भी ज्यादा जानकारियों के लिए उकसातीं. मंथन की इस प्रक्रिया में आखिरकार वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते कि दल को अच्छे-अच्छे नाच देखते रहना चाहिए–न सिर्फ नाच-गिरोहों के नाच, बल्कि गोंड नाच, धोबिया नाच, अहीर नाच, चमार, थारू, कुम्हार, नेटुआ, जट-जटिन के नाच भी!

सबसे पहले नटों का नाच नेटुआ! लहंगा, कुर्ती, ओढ़नी में लवंडे पखावज और करताल की धुन पर बेहद अश्लील गीत पेश कर रह थे–हमारा जोबना में दूगो चवन्नी धइल बा..., हमर जंघिया पे दू गो अठन्नी धइल बा...! वे मशाल हाथ में लिए हुए नाच रहे थे, जिसकी लपटें उनके पसीने से नहाए चेहरे पर मचल रही थीं. नाचते-नाचते वे पखावज बजानेवाले के पास चले आते, फिर नाचते हुए दूर चले जाते.

एक खास बात थी इस नाच में, बंशी. बांस की बंशी को होठों से लगाकर फूंकते हुए, छेदों को उंगलियों से बन्द करते-खोलते अजब समां बन रहा था, खासकर तब, जब पखावज और बांसुरी की जुगलबन्दी चलती और करताल धीमा पड़ जाता–धातिंगा, धातिंगा...स्वर चांड़ से धीमे पड़ते, तो बांसुरी का स्वर वल्लरी की तरह लहरा उठता, जैसे कोई मस्त मतवाली नागिन फन निकालकर अपनी लाल-लाल जीभ लपलपा रही हो.

लौटते हुए, इसी बात पर बतकही होती रही कि और जगहों पर पिपिहरी होती है पतले सुर के लिए, जबकि यहां बांसुरी थी. काश! अपने दल में भी कोई वंशी-बजवैया होता!

"एक बार अहीर-नाच देख लेते तो अच्छा रहता, वहां भी बांसुरी होती है." जगरूप ने कहा.
"मै उनका नगाड़ा नहीं सुन सकता." जगदेव भला कैसे चुप रहता.
"नगाड़ा तो कानपुरवाली नौटंकी में भी होता है. सोनपुर के मेले में नहीं देखा था?"

जब बात इतनी आगे बढ़ गई तो बाबूलाल के लिए लाजमी हो गया कि वे इसका खुलासा कर ही डालें. बोले, "नरम, गरम दूनों होता है न नगाड़ा के साथ, देखोगे क्या तो एक ठो नगाड़ा होता है और एक ठो नगाड़ा का बच्चा–ताशा, जैसे भैंस के साथ पाड़ा! एक ताशा ठंढाया नहीं कि दूसर गरम ताशा हाजिर! लेकिन, जे बा से, कि अहीर नाच में सिरिफ नगाड़ा, गरमे गरम आगे हम्म! आगे हम्म! नाचों में ठेंठ पहलवानी!"
"जे जौन रही, उहे ना ओकर नाच में आई." जगदेव को बोलने की जैसे जगह मिल गई.

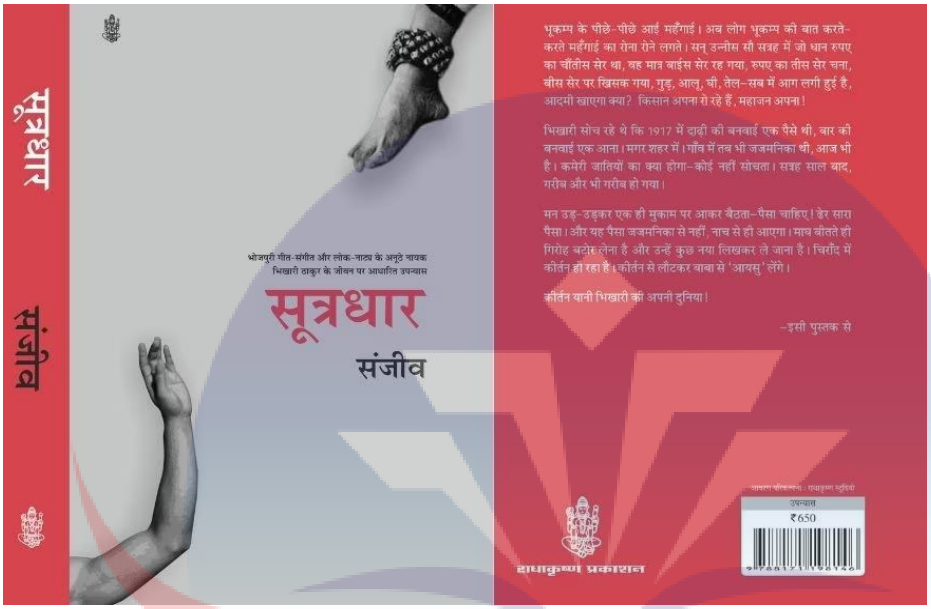

सांप बोले और नेवला चुप रहे? जगरूप ने कहा, "पहले ई समझ लो कि पहलवानी आई कहां से."
"कहाँ से ?"
"बलराम जी से."
"और बांसुरी कन्हैया जी से–यही न!"
"हां."
"तो क्या हुआ?"
"दूनो जन अहीर थे, इसलिए."

"ए चुप ना रहब-अ. कहां कन्हैया जी और बलदेव जी और कहां ई ssss! ऊ राजा, ऊ भगवान. उनकर बांसुरी के तान पे मय (सब) गोपी लोग दौड़ल चलि आवें–गाय-गोरू, चिरई-परेवा मुड़-मुड़ के ताके लागें–एकरा से तो हमरे जइसन अमदी (आदमी) भी भाग जाला."
इस नोक-झोंक से अलग भिखारी कुछ और ही सोच रहे हैं, "कन्हैया जी और बलराम अहीर थे–कितने गुमान से बोलता है यह गरीब जगरूप अहीर जिसकी तीन पुस्त लाला के यहां बनिहारी करते बीत गईं, पांव में एक रुपए का जूता तक नसीब नहीं हुआ आज तक जिसे. मैं भला किस नायक पर गुमान करूं? कहां रख दूं अपनी जातिगत हीनता को? सबका एक-एक भगवान है, मेरा भगवान कहां है?"
बाबूलाल कुछ बोलते नहीं. भिखारी को लगा, वे ढीले पड़ रहे हैं "अब...?"
"पहले एक गो गोंड़ का नाच देखेंगे."
"कहां ?"
"गांव के थोरिके दूर पर है, सितवा के नइहरवा में. अगला पाख में पंचमी के."
गोंड का नाच उनके दुआर पर ही हो रहा था. खुंटियाई हुई धोती में पुरुष नर्तक पूरे दुआर पर फैले हुए थे और रावण के दसों सिरों की तरह नाचते हुए घेर रहे थे–'झमकट, झमकट, झमकट-झमकट!' लगता, जैसे दूर से कोई लहर बढ़ती चली

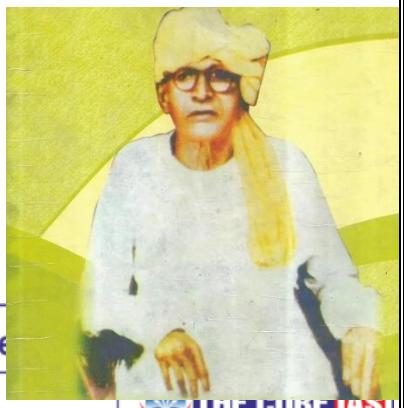

THE CORE IAS
@THECOREIAS | Himalika Complex Dr. Mukherjee Nagar, De
www.thecoreias.com | 53/18, ORN, DELHI-60
THE CORE IAS

आ रही है–गरजती-मचलती हुई. बीच-बीच में टप्पे-सा उछाल देते लय को, फिर सम पर आ जाते. लहरें आ-आकर टूट रही थीं, मगर बोल समझ में नहीं आ रहे थे. वाद्य तेज, बोल अबूझ. बाबूलाल को देखा तो वे बड़े ध्यान से नर्तकों का पग-संचालन देख रहे थे.

"का बूझे?"
"लगता है, कोई जंगली जानवर हो, जिसे मारने के लिए घेर रहे हैं."
वे लौट रहे थे. पंचमी का चांद जर्द होकर नीचे जा रहा था. धुंधली चांदनी में पेड़ किसी विशालकाय जानवर की तरह खड़े थे, जैसे गोंडों द्वारा वहां के खदेड़े गए जंगली जानवर इधर भाग निकले हों."
"ई नाच चलेगी?" अचानक बाबूलाल ने सवाल किया.
"ना" भिखारी ने कहा, "लेकिन एकर परभाव गजब के बा...जैसे बहुत दूर से कोई घेरता हो, फांस-सा कसता चला जाए–चैता में भी झाल की आवाज ऐसे ही उठान पर चलती है."

रात छपरा टेसन के मुसाफिरखाने में काटनी थी. लैंप की मरियल रोशनी में गिरोह के सदस्य जमीन झाड़कर बैठ गए. किसिम-किसिम की आवाजें थीं. कहीं इंजन संट कर रहा था, कहीं यूं ही अतिरिक्त भाप छोड़ रहा था, पान-बीड़ी-सिगरेट और चाह, कहीं किस्सा चल रहा था, कहीं गाना. कितने तरह से बोल सकता है आदमी–भिखारी गुपीचुपी मारकर सोच रहे थे. बाकी लोग गमछे ओढ़कर निढाल हो गए थे.
ई बाबूलाल कहां गए. जरूर चहवास (चाय की तलब) लगी होगी, कलकतिया आदमी हैं.
बाबूलाल ने कंधे दबाकर इशारा किया, "भांड़ का किस्सा चल रहा है हुआं, चलो चलते हैं."
बेंच पर बैठे चूड़ीदार पाजामा-शेरवानी पहने दो आदमी बात कर रहे थे.
"किबला बेग साहब, भांड़ों के बारे में अपनी भी बेहतर राय नहीं थी, बेबकूफ, भोंडे...कसम खुदा की, जब से वो वाकया हुआ, मेरे ख्याल ही बदल गए."
"कौन-सा वाकया?"
"अरे वही दाग साहबवाला–हजरत-ए-दाग जहां बैठ गए, बैठ गए."
"दाग साहब! क्या नाम लिया आपने! म्यां, अब सुना ही डालिए."
"दाग साहब खब्ती मिजाज के, एक शादी के जलसे में उन्होंने भांड़ गिरोह के मालिक, जो खुद भी एक बड़ा फनकार था, की बेइज्जती कर दी."
"तो...?"
"तो क्या बला मोल ले ली! हुआ यूं कि जल्द ही एक दूसरे जलसे में उन दोनों का फिर आमना-सामना हो गया. अब सामने बैठे हैं दाग साहब, हिन्दोस्तान के अजीम शायर, स्टेज पर खड़ा है भांड़–अजीम फनकार. बात-की-बात में भंडैती रच दी उन पर. उसने स्टेज पर एक आदमी बुलाया, उसके हाथ में बन्दूक थमा दी. निशाना दाग साहब पर."
"फिर क्या हुआ?"
"फिर उसने पूछा–'क्यों बे, शेर दिखाई पड़ा?'
"आदमी ने कहा, 'जी सरकार!'
"तो देख क्या रहा है, दाग...अंधे दाग....अरे दाग, अक्ल के दुश्मन दाग...

पूरी महफिल हंसते-हंसते लोट-पोट! और 'दाग' साहब तो पानी-पानी! भाग खड़े हुए भरी महफिल से. भांड़ सांड़ की तरह अभी भी खदेड़ रहा था, 'देख भागने न पाए दाग, अबे अक्ल के दुश्मन दाग!'

THE CORE IAS

गाड़ी आ गई थी. दोनों अजनबी ट्रेन पर सवार होकर चले गए, छोड़ गए एक दाग भिखारी, बाबूलाल के दिल में–अब भांड़ की अदाकारी देखे बिना चैन नहीं.
चाहवाले ने ही बताया कि आरा में मुकुन्दी भांड़ आ रहे हैं, वह तो जरूर देखने जाएगा.
"वही बनारसवाला?"
"हां वही. जिस शादी-वियाह में आ जाय, समझीं कि ओकर शान बढ़ गइल!"

सूचना संक्षिप्त थी. विस्तार से ब्यौरा बाद में मिला कि आरा में रामाशंकर राय के यहां पूर्णमासी को लड़की का ब्याह है. उसमें तीन गिरोह नाच है, नेटुआ, रंडी और मुकुन्दी भांड़.
पूर्णमासी, माने दस दिन हैं अभी. काश, ये दस दिन दस घंटे में बदल जाते. खैर, राम-राम करते-करते पूर्णमासी आई और दिन ढलते-ढलते रामाशंकर राय का अहाता. बड़े-से शामियाने में कांच के कशीदे हैं. मशालें गुजरती हैं तो तारे जैसे जलने-बुझने लगते हैं, मानो उल्कापात हो रहा हो. बड़े-बड़े नादों में पानी है, आग से बचाव के लिए. बरात आई. शोले दगने लगे, अनार, चरखी छूटने लगी. हाथी, घोड़े, ऊंट, पालकी, इत्रा-फुलेल!
नेटुआ नाच रैयती था, राय साहब की जमीन में ही बसे हुए लोग थे, सो द्वार पूजा से लेकर महफिल तक नाचते-गाते आए. इसके बाद दुल्हा आया. पांव पखारा गया. इत्रा-फुलेल का छिड़काव, नाई पंखे झल रहे थे. दोनों पक्ष के पंडितों ने शास्त्रार्थ किया और अब बारी थी बाईजी की. बनारस की बाईजी, जैसा रूप-रंग, वैसे नाज-ओ-अन्दाज और वैसा ही गला–उसने सबसे पहले 'सेहरा मुबारक' गाया– ये है श्रीराम का सेहरा "मुबारक हो, मुबारक हो!" बहुत ही सुन्दर, बहुत ही शालीन, मानो उसके, लौंग जड़ी नाकवाले, सुन्दर मुखड़े से हरसिंगार के फूल झर रहे हों. इसके बाद दूसरी रंडी उठी, उसने 'देवरा जोगिया' वाला गीत प्रस्तुत किया.

बाहर भीड़ का समुद्र उमड़ रहा था, भिखारी और बाबूलाल कई बार धकियाए गए, कई बार पीछे ठेले गए. रंडियां बैठ गई थीं. भिखारी अब भी उन्हें एकटक देखे जा रहे थे, कहीं ये दुनिया बाई, सुन्दरी बाई तो नहीं हैं? अब बारी भांड़ की. रईसों जैसी कमीज और अचकन, चूड़ीदार पायजामा, हाथ में टेढ़ी-मेढ़ी बकुली टेकते बहके रईस-सा आता है भांड़.

"घोड़ा है, बछेड़ा है, दिन दस बरस का, मेरे घोड़े की चाल देखो!"
वाह-वाह! भिखारी ने इस संवाद पर मन से दाद दी. लेकिन आगे चलकर उसने बाईजी को लक्षित कर वो छिछोरी भंडैती शुरू की कि लाज से गड़ गईं रंडियां. भिखारी कभी भांड़ को देख रहे थे, कभी रंडियों को, उनका मन हुआ वे रंडियों को जाकर ढांड़स बंधाएं और किसी शूर-वीर की तरह म्यान से तलवार खींचकर भरी महफिल में चिल्ला उठें– बन्द करो यह छिछोरापन, राजा भोज की नगरी में ई सब नहीं चलेगा. उन्होंने किसी से पूछा, "ई मुकुन्दी है?"
"न! उनको मौका नहीं था."
वे 'चुकी-मुकी' ऐसे लौट रहे थे जैसे चोरी करते हुए पकड़े गए हों. बाबूलाल ने पूड़ी बुंदिया झटक ली थी, रास्ते में देने लगे, "लो खाकर पानी पी लिया जाय." लेकिन नहीं. नहीं खाया गया. रात ही रात चलकर भोर तक बबुरा पहुंचे.

भिखारी गंगा में बुड़की लगाकर धो रहे थे रात का पाप. बहुत चूक हो गई. अब ना गंगा माई! मल-मलकर धो रहे हैं, खखार-खखारकर थूक रहे हैं, डुबकी पर डुबकी, फिर भी मैल नहीं धुलती. तीर पर खड़े बाबूलाल मुस्कराते हुए आगे आते हैं, "निकल भी आओ अब. अंधेरे में पक्का आम चुनते हुए लेंड़ (पाखाना) उठा लेता है आदमी. चलो, अब कहीं और भटकने की जरूरत नहीं है. मै ही सिखा दूंगा नाच!"

पानी से चिपचिपाई पलकों के बीच जिस छोटे-से गंवई आदमी का अक्स आ रहा है, क्या कहता है यह छोटा-सा आदमी?

“तुम?”

“हां, मैं. मैंने उस्तादों से भी काम-चलाऊ नाच सीख रखा है. कुछ मैं, कुछ तुम दोनों मिलकर सिखाएं तो ई मुकुन्दी क्या चीज है जी और क्या चीज है रंडी!”

घर आए तो बाप की नजर तिरछी होकर उलट गई. फिर सदा की तरह सिर उठाकर मरकहे भैंसे की तरह आसमान को संबोधित करने लगे, “बेटा-बेटी जनमा के रात-रात-भर घूम-घूम के नाच देख-अ लोग, सभे बोझा ढोए खातिर हम तो बड़ले बानी...”

बाप ने वही सारी जली-कटी बातें फिर से दुहराईं जो ऐसे अवसरों पर वह दुहराया करते थे.

आवाज सुनकर माई ओसारे में निकल आईं. बाबूलाल ने पैलगी की जिसको मन-ही-मन आशीर्वाद देकर वे भिखारी की ओर मुड़ीं, “का बबुआ, एकदम्मे से जोगी हो गए का?”

“का भइल माई ?”

“अरे शीला (नाथ) के बियाह खातिर नाऊ आइल रहल. दिन-बार धरा गइल और तोहार पते ना..”

“कब है?” भिखारी ने ऐसे नीरस भाव से पूछा जैसे किसी दूसरे के बेटे की शादी की बात चल रही हो.

“का तो...हमारा भोर (विस्मरण) पड़ गइल, बाकी एके महीना रह गया है.”

“ऐं!” बाबूलाल चिहुंककर उठ बैठे, “सिर्फ एक महीना. इतनी जल्दी का है?”

“इनके बाबू जी को डर था कि क्या पता, फिर कोई नाई दुआर झांकने आए भी कि नहीं. नचनिया का लड़का नू है. ई हो कहीं भड़क न जाय, सो पंडित जी के बोलवा के जल्दी-जल्दी, गन्ना गनाइल और दिन-वार धरा गइल!”

“क्या इतने गए गुजरे हैं हमलोग?” भिखारी ने सवाल करती आंखें बाबूलाल पर टेक दीं. बाबूलाल इस सवाल से बचने के लिए बगलें झांकने लगे.

संस्कृति मिश्र को साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार, मैथिली कविता संग्रह के लिए मिला सम्मान

- *साहित्य अकादमी ने मैथिली भाषा के लिए संस्कृति मिश्र के कविता संग्रह ‘कहबाक अछि हमरा’ को इस पुरस्कार के लिए चुना है. पिछले दिनों घोषित युवा पुरस्कार 2023 में मैथिली भाषा के लिए पुरस्कार घोषित नहीं किया जा सका था.*

साहित्य अकादमी ने इस वर्ष जून में साहित्य अकादमी युवा पुरस्कारों की घोषणा की थी. इनमें हिंदी भाषा के लिए अतुल कुमार राय को उनके उपन्यास चांदपुर की चंदा, गुजराती भाषा के लिए सागर शाह के गेट टुगेधर, अंग्रेजी भाषा के लिए अनुरुद्ध कानिसेट्टी को उनके उपन्यास लॉर्ड्स ऑफ द डेक्कन, उर्दू भाषा के लिए तौसीफ बरेलवी के कहानी संग्रह जहन जाद, राजस्थानी में देवीलाल महिया के कविता संग्रह अंतस रो ओलमो पंजाबी में संदीप के कविता संग्रह चित्त दा जुगराफिया को चुना गया था.

जब एक उपन्यासकार ने धर्मवीर भारती से कहा, “तेरी तो एक ही उपन्यास से टैं बोल गयी”

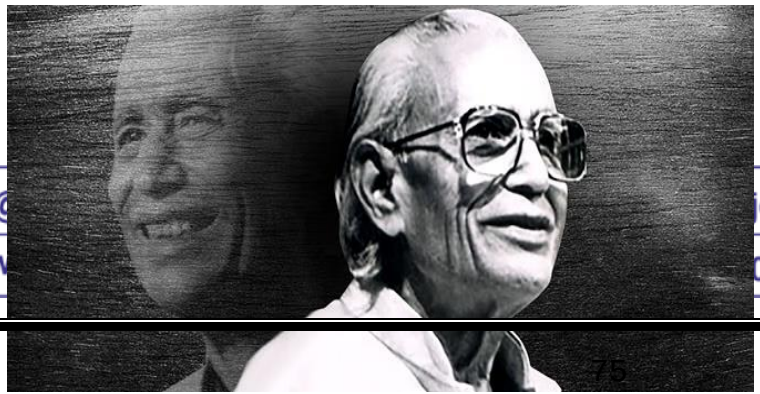

रवीन्द्र कालिया की लिखी संस्मरणात्मक किताब ‘ग़ालिब छुटी शराब’ के पन्द्रहवें

ee Nagar, Delhi-09 8800141518
ww 0 THE CORE IAS

अध्याय में उन्होंने एक दिलचस्प प्रसंग लिखा है। वह लिखते हैं कि,

उस दिन पंजाबी के उपन्यासकार हरनामदास सहराई भी मुम्बई आए हुए थे। जालन्धर में उनका नल की टोंटियां वग़ैरह बनाने का कारखाना था। वह देश भर में घूम-घूम कर नल की टोंटियां ऑर्डर लिया करते थे और कारख़ाने का कारोबार परिवार के अन्य लोग देखते थे। वह जब भी मिलते अपनी नयी किताब ज़रूर भेंट करते। व्हिस्की की बोतल हमेशा उनके ब्रीफ़केस में रहती। उन्हें कहीं से ख़बर लग गयी थी कि उनका एक हमवतनी 'धर्मयुग' में पहुंच गया है। वह अगली बार मुम्बई आए तो मुझसे मिलने दफ़्तर चले आए। फिलहाल उनका इरादा धर्मवीर भारती से मिलने का था।
"भारती को पता चला कि मैं बग़ैर मिले लौट गया तो नाराज़ होगा।" सहराई ने अपनी समस्या बतायी।
"क्या आप धर्मवीर भारती से परिचित हैं ?" मैंने पूछा
"बल्ली, कैसी बच्चों जैसी बात करते हो! वह 'धर्मयुग' का सम्पादक है। यह हो ही नहीं सकता कि वह मेरे नाम से परिचित न हो।"
"तुम नहीं जानते सहराई, वह बहुुत घमंडी किस्म का शख़्स है।" मैंने धीरे से उसके कान में कहा।
मैं चाहता था कि...
मैं चाहता था कि वह भारती जी से भेंट करने की इरादा फ़ौरन तर्क़ कर दें। मैं आश्वास्त नहीं था कि भारती उससे मिलेंगे भी या नहीं। मेरा रुख देखकर उसने हिन्दी वालों को एक भारी भरकम गाली दी और धड़धड़ाते हुए खुशवन्त सिंह के कैबिन में घुस गया, जो नए-नए इलस्ट्रेटेड वीकली के सम्पादक होकर आए थे।

ठीक पाँच बजे वह खुशवन्त सिंह के कन्धे पर हाथ रखे हुए उनके कमरे से निकला। दोनों किसी बात पर ठहाका लगा रहे थे, लग रहा था वे जैसे युगों-युगों से एक-दूसरे के दोस्त हों।
मैंने सहराई का परिचय नन्दन जी, मनमोहन सरल, गणेश मन्त्री आदि अपने सहकर्मियों से करवाया। मनमोहन सरल ने उनसे वादा किया कि आज तो पाँच बज चुके हैं, वह अगले रोज़ उन्हें भारती जी से अवश्य मिला देगे। सहराई ने हामी भरी और अगले रोज़ चार बजे आने का वादा करके लौट गया। अगले दिन ठीक चार बजे वह मुझे नहीं, मनमोहन सरल को ढूंढ़ रहा था। मुझसे वह एकदम निराश हो चुका था।
"कहां है सर्ल का पुत्तर?"
"कहां है सर्ल का पुत्तर?" उसने विभाग में क़दम रखते ही दरियाफ़्त किया, "भूतनी का भारती से मिलवाने का वादा करके कहां जा छिपा?"
मनमोहन सरल भारती के कमरे में ही थे। उन्होंने लौट कर अपनी सीट पर सहराई को पसरे देखा तो उनका माथा ठनका। सहराई आज आक्रामक मूड में था। उसके तेवर देखकर मनमोहन सरल भी टालमटोल करने लगे।
"तुम साले सब नपुंसक हो।" सहराई ने पूछा, "कहाँ बैठता है वह धर्मवीर का पुत्तर ? प्रीत लड़ी के सम्पादक नवतेज सिंह का नाम सुना है तुम लोगों ने ? वह जालंधर आता है और घर आकर मुझसे मिलता है।"

हरनाम दास सहराई अचानक उठा, जैसे उसका धैर्य जवाब दे गया हो। वह देखते ही देखते भारती जी के कैबिन की तरफ़ बढ़ गया। रामजी ने उससे विज़िटिंग कार्ड माँगा तो उसने जेब से टोंटी निकालकर दिखा दी और उसके रोकते-रोकते भारती जी के कैबिन में घुस गया। मैं भी उसके पीछे लपककर कैबिन में पहुँचा। सहराई ने तब तक भारती जी को खड़ा होने को मजबूर कर दिया था और मैं पहुंचा तो वह उनसे गले मिल रहा था। भारती जी का चेहरा मेरी तरफ़ था। उनकी खिसियाहट से साफ़ झलक रहा था कि वह मजबूरी में ही बग़लगीत हो रहे हैं।

"वाह भारती, तूने 'गुनाहों का देवता' लिख के कलम तोड़ दी। मैंने सोचा था कि, तू हिन्दी को और उपन्यास देगा, तेरी तो एक ही उपन्यास से टैं बोल गयी। ज़रा फिर से मैदान में उतरो तो मुक़ाबला हो। चाय-वाय पिलाओगे या यों ही बिज्जू की माफ़िक देखते रहोगे।"
इसके बाद जब सहराई ने भारती जी को दावत पर बुलाया तो उन्होंने "आज मुमकिन ना होगा" कहकर हाथ जोड़ दिए और सहराई बाहर निकल आए।

साभार- ग़ालिब छुटी शराब
भारतीय ज्ञानपीठ

रामधारी सिंह दिनकर : मैं माध्यम हूं, मौलिक विचार नहीं, कनफ़्युशियस ने कहा....

मैं माध्यम हूं, मौलिक विचार नहीं,
कनफ़्युशियस ने कहा।
तो मौलिक विचार कहां मिलते हैं,
खिले हुए फूल ही
नए वृन्तों पर
दुबारा खिलते हैं।

आकाश पूरी तरह
छाना जा चुका है,
जो कुछ जानने योग्य था,
पहले ही जाना जा चुका है।

जिन प्रश्नों के उत्तर पहले नहीं मिले,
उनका मिलना आज भी मुहाल है।

चिंतकों का यह हाल है
कि वे पुराने प्रश्नों को
नए ढंग से सजाते हैं
और उन्हें ही उत्तर समझकर
भीतर से फूल जाते हैं।
मगर यह उत्तर नहीं,
प्रश्नों का हाहाकार है।
जो सत्य पहले अगोचर था,
वह आज भी तर्कों के पार है।
साभार - कविताकोश

THE CORE IAS

डॉ. ओम निश्चल को हिंदी सेवी सम्मान

- हिंदी के चर्चित कवि, गीतकार, आलोचक और भाषाविद् डॉ. ओम निश्चिल को हिंदी सेवी सम्मान से सम्मानित किया जाएगा.
- डॉ. ओम निश्चल हिंदी के सुपरिचित कवि, आलोचक, निबंधकार और भाषाविद् हैं. आज उनका जन्मदिवस भी है. जन्मदिवस के मौके पर 'हिंदी सेवी सम्मान' की घोषणा हर्ष का विषय है. ओम निश्चल का जन्म 15 दिसंबर, 1958 उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के हर्षपुर में हुआ था.

- उन्होंने संस्कृत और हिंदी में एमए तथा पीएच.डी. और पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा किया है. वे उत्तर प्रदेश सूचना विभाग से प्रकाशित उत्तर प्रदेश पत्रिका के सहायक संपादक रहे. इसके बाद उन्होंने इलाहाबाद बैंक में वरिष्ठ राजभाषा प्रबंधक के पद पर लंबे समय तक अपनी सेवाएं दीं.

- कविता, कहानी, ग़ज़ल, संस्मरण और आलोचना विधा में डॉ. ओम निश्चल की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं. शब्द सक्रिय हैं (कविता संग्रह), मेरा दुख सिरहाने रख दो और ये जीवन खिलखिलाएगा किसी दिन (ग़ज़ल संग्रह), भाषा की खादी (निबंध), खुली हथेली और तुलसीगंध (संस्मरण), द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी सृजन एवं मूल्यांकन, कविता के वरिष्ठ नागरिक; कुंवर नारायण: कविता की सगुण इकाई; समकालीन हिंदी कविता: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य; चर्चा की गोलमेज पर अरुण कमल; रामदरश मिश्र: जीवन और साहित्य; कवि विवेक जीवन विवेक; कविता का भाष्य और भविष्य व शब्दों से गपशप सहित समीक्षा व आलोचना की कई पुस्तकें शामिल हैं.

कथाकार हृषीकेश सुलभ को मिला 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान'

"भारत की एकता राजनीति से नहीं, साहित्य और संस्कृति से है, किन्तु समाज के यांत्रिकीकरण के कारण आज साहित्य और संस्कृति के आस्वादन का खतरा उत्पन्न हो गया है. हर दिशा से शब्द और साहित्य पर हमले हो रहे हैं. विश्वविद्यालयों में साहित्य और संस्कृति का ऐसा संकुचन हुआ है कि आज के युवा दो-तीन सौ से ज्यादा शब्दों का उपयोग नहीं करते. यह स्थिति रही तो भविष्य के बच्चे हमारी भाषा के शब्द बोलना भी बंद कर देंगे."

"पूंजी, सत्ता और सत्ता की राजनीति तथा धार्मिक पाखंड विभाजन का काम करते हैं, जबकि कला और साहित्य मनुष्यता की हित-चिंता करते हैं तथा लोगों को आपस में जोड़ते हैं. 'शब्द' के इन पुरस्कारों का ध्येय साहित्य और साहित्यकार को समाज के विचार-केंद्र में लाने और समादृत करने की एक कोशिश है. दक्षिण की यह कोशिश उत्तर में यदि कोई हलचल ला सकी तो बाजारवाद की आपाधापी के बावजूद स्थिति बदलेगी और साहित्य एवं कला की पहुंच एवं दायरा बढ़ेगा."

गौरतलब है, कि 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान' नगर के समाजसेवी और अज्ञेय साहित्य के मर्मज्ञ बाबूलाल गुप्ता के फाउंडेशन के सौजन्य से तथा 'दक्षिण भारत शब्द हिंदी सेवी सम्मान' बेंगलूरु एवं चेन्नई से प्रकाशित अखबार समूह 'दक्षिण भारत राष्ट्रमत' के सौजन्य से प्रदान किए जाते हैं.

भारत सरकार ने प्रसिद्ध तमिल कवि और स्वतंत्रता सेनानी महाकवि चिन्नास्वामी सुब्रमण्यम भारती के जन्मदिन (11 दिसंबर) को भारतीय भाषा दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव किया है। भारतीय भाषा उत्सव 28 सितंबर 2023 से 11 दिसंबर 2023 तक आयोजित किया जाएगा।

100 साल के हुए प्रोफेसर रामदरश मिश्र: हिंदीभाषियों के हृदय पर संवेदनाओं की गहरी थाप लगाते अनूठे रचनाकार

15 अगस्त 2023 को जब राष्ट्र स्वतंत्रता का महोत्सव मना रहा है, तब भारतीय साहित्य जगत भी एक बड़ी घटना का गवाह बन रहा है. आज हिंदी साहित्य के वयोवृद्ध रचनाकार रामदरश मिश्र सौवां जन्मदिन मना रहे हैं. पूरे साहित्य जगत के लिए यह दिन एक उत्सव की तरह है. 15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर के डुमरी गांव में जन्मे मिश्र ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पढ़ाई की. बाद में गुजरात में आठ साल उन्होंने अध्यापन किया. गुजरात में उन्हें बहुत स्नेह और आदर मिला, पर जब वे दिल्ली आए तो यहीं के होकर रह गए. उनकी कोई सौ से अधिक पुस्तकें यहीं रह कर प्रकाशित हुईं. कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, संस्मरण, डायरी, यात्रा विवरण, आत्मकथा, निबंध सभी विधाओं को उन्होंने अपनी रचनाओं से समृद्ध किया. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य रहे मिश्र ने उपन्यासों के लिए उनकी भूरि-भूरि सराहना पाई.

लगभग आठ दशकों के लेखन ने उन्हें बहुत प्रतिष्ठा दी है. उन पर तकरीबन दो सौ शोध प्रबंध लिखे गए हैं. सरस्वती सम्मान, भारत भारती, साहित्य अकादेमी, व्यास सम्मान, शलाका सम्मान, दयावती मोदी कवि शेखर पुरस्कार आदि से सम्मानित मिश्र के उपन्यास-कर्म पर साहित्य आजतक की ओर से इस शुभकामना लेख में दृष्टि डाल रहे हैं, वरिष्ठ साहित्यकार प्रकाश मनु.

हिंदी में उपन्यास तो बहुत लिखे गए, पर जिन उपन्यासों से भारतीय समाज के सुख-दुख की इबारत और धड़कनों को जाना जा सकता है, और जिन्होंने भारतीय समाज के ताने-बाने को बहुत गहराई तक प्रभावित किया, उनमें रामदरश मिश्र के उपन्यासों का स्थान और कद बहुत ऊंचा है. प्रेमचंद के बाद रामदरश जी की गिनती उन चुनिंदा उपन्यासकारों में होती है, जिन्होंने इतने बड़े काल फलक पर उपन्यास लिखे कि उनके उपन्यास देखते ही देखते भारतीय समाज का आईना बन गए. 'पानी के प्राचीर' हो, 'जल टूटता हुआ' या 'अपने लोग'- ये इतनी बड़ी सर्जनात्मक ऊष्मा और संवेदना को लेकर चले हैं, और उनमें वर्णित घटनाएं और पात्र इतने पुरअसर हैं, कि उनके जरिए बड़े प्रामाणिक तौर पर भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा सकता है. सच तो यह है कि रामदरश जी ने अपने उपन्यासों ने आम जनता के सुख-दुख, भीतरी द्वंद्व और तकलीफों के इतने सच्चे विवरण प्रस्तुत किए हैं, कि उनकी इन औपन्यासिक कृतियों ने भारतीय समाज को गहराई तक प्रभावित करने के साथ-साथ, एक सकारात्मक परिवर्तन के लिए भी तैयार करने का काम किया. और यहां रामदरश जी निश्चय ही प्रेमचंद के बाद, उनकी परंपरा को बड़े ही सार्थक ढंग से आगे बढ़ाते नजर आते हैं.

बावजूद इसके रामदरश मिश्र के उपन्यास अपने समकालीनों से किस कदर भिन्न हैं, और प्रेमचंद की तरह ही वे अपनी सादगी के सौंदर्य और संवेदना की कितनी गहरी थाप दिलों पर लगाते हैं, यह जानना हो तो एक बुनियादी सवाल खुद से पूछना चाहिए कि उनका कोई उपन्यास पढ़कर सबसे पहली बात मन पर क्या नक्श होती है? मेरा अपना उत्तर है- उन्हें पढ़ते हुए उनके उपन्यासों की शक्ति और सर्जनात्मक सौंदर्य दोनों एकाएक सामने आ जाते हैं. और यह भी कि एक तरह की ग्राम्य सादगी और सहजता ही न सिर्फ उनकी प्राणशक्ति बल्कि वह बेबनाव कला है- 'कलाहीनता की कला', जिसके बल पर वे हजारों पाठकों के दिलों पर राज करते हैं. शायद यही कारण है कि रामदरश जी का हर उपन्यास पढ़ने के बाद मुझे लगता है कि मैं उपन्यास नहीं पढ़ रहा, बल्कि जिंदगी को देख रहा हूं. जिंदगी के बीच पूरी तरह धंसकर जिंदगी को देख रहा हूं. जिंदगी जो बहुत सीधी-सादी है, प्रेममयी है, मोह और सम्मोहन जगाने वाली है और अपने खुरदरेपन के बावजूद एक कमाल की दिलकश और खूबसूरत शै है. उसके सीधे-सादेपन और खूबसूरती में जीवन की बेहद संवेदनात्मक परतों के साथ ही समाज की ऐसी-ऐसी कठोर सच्चाइयां, ऐसे-ऐसे करुण सत्य, और साथ ही नग्न यथार्थ की स्याह परछाइयां छिपी पड़ी हैं कि उनका सामना होते ही हम थरथरा उठते हैं कि अच्छा, यह सब भी है, यह सब क्यों है... यह सब तो नहीं होना चाहिए!! पर वह होता है और इतने नंगे, करुण और हृदयविदारक रूप में सामने आता है कि थोड़ी देर के लिए हम स्तब्ध रह जाते हैं और लगता है, अगर जिंदगी इसी का नाम है तो फिर यह क्यों है और इसे हम क्यों जीते हैं?

मगर फिर...? हमारे देखते ही देखते उपन्यास के बेहद मामूली पात्रों में ही हलचल होती है. बड़ी तेज हलचल, और इसके साथ ही कोई अचानक उठ खड़ा होता है और इन दुःखों का चक्का आगे बढ़कर थाम लेता है और उसे दूसरी दिशा में चला देता है! कभी नैतिक मूल्यों को लेकर चलने वाला कोई शख्स, तो कभी प्रकृति जो बड़ी ही जीवंत शक्लों में इन उपन्यासों में उपस्थित है- और कभी-कभी तो विशुद्ध संयोग! और फिर एकाएक पट-परिवर्तन!...
अचानक कहीं से बांसुरी की धुन उठती है और दग्ध मन को सरसाने लगती है, कहीं होली की फगुनाहट बिखर जाती है, कहीं चैती, कहीं विदेसिया. प्रकृति का रस और अनंत छवियां, अनंत माधुर्य... प्रेम की अद्भुत लीलाएं! मनुष्य के छोटे-बड़े दुखों के बीच पिरोए हुए छोटे-छोटे सुख! और अभी हम इसमें बहते-बहते कुछ आगे निकले ही थे कि अशुभ, अमंगल की काली स्वाह, उत्पाती छायाएं! कुछ समर्थ, शक्तिशालियों और धन-पशुओं का कपट, अनीति, कुचालें! ...पिसती हुई जनता, हदसते हुए लोग!!
और फिर हमारे देखते-देखते यह चमत्कार होता है कि ये सभी एक-दूसरे में गुंथ जाते हैं, जैसे जिंदगी में! और हम देखते हैं कि रामदरश जी के उपन्यासों में जो लोग हैं, जो जिंदगी है, वह लगभग उसी रूप में है- या बिल्कुल वैसी ही हैं, जैसी जिंदगी खुद है, जैसे लोग खुद हैं.
और यहां रामदरश जी के उपन्यास, उपन्यास न रहकर 'एक अनंत प्रवाह-युक्त नदी-गाथा' हो जाते हैं- जनगाथा हो जाते हैं और न जाने कब उसकी लहरों में समरस होकर बहते-बहते, जब उपन्यास खत्म होने पर हम किनारे आ लगते हैं, तो हमें याद ही नहीं रहता कि अभी-अभी जिस किताब को हम पढ़ रहे थे, वह किताब थी या जिंदगी? ...अभी हम 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', और 'अपने लोग' पढ़ रहे थे या रामदरश जी के साथ गोरखपुर अंचल की ओर घूमने निकल गए थे और इतिहास के गलियारों के बीच धंसते चले गए थे? 'दूसरा घर' पढ़ रहे थे या रामदरश जी के साथ गुजरात जा पहुंचे थे, जहां डॉ. गौतम अपनी कच्ची और हिलती हुई नौकरी के सहारे एक ओर अपनी छोटी-सी गृहस्थी, दूसरी ओर साहित्य-कर्म और सामाजिक आदर्शों को थामे हुए थे! इसी के साथ-साथ न जाने कब उन विस्थापितों का दर्द जुड़ जाता है जो नौकरियों और काम-धंधे की तलाश में अपने घर से सैकड़ों मील दूर यहां आ गए और लगातार अपमान झेलते हुए मर्माहत होते हैं. घर को याद करते हुए 'परदेस' में मैली जिंदगी जीते हैं, पर घर लौट नहीं पाते.
यही बात रामदरश मिश्र के अपेक्षाकृत छोटे उपन्यासों 'रात का सफर', 'थकी हुई सुबह', 'बिना दरवाजे का मकान', 'आकाश की छत', 'सूखता हुआ तालाब', 'बीच का समय', 'बीस बरस', 'बचपन भास्कर का', 'एक बचपन यह भी' और 'एक था कलाकार' के बारे में भी कही जा सकती है कि ये उपन्यास कम, जिंदगी के भीतर धंसकर की गई जिंदगी की यात्राएं ज्यादा हैं. इनमें शायद ही कोई उपन्यास हो, जिसके भीतर निजी एकांत का भंवर या अंतर्गुहाओं के गुंजलक हों, जो इधर प्रायः देखने को मिलते हैं. इसके बरक्स वे जिंदगी की धारा का हिस्सा बनकर आते हैं या उनके साथ बहते नजर आते हैं, इसलिए वे ऐसे नहीं है कि उनके कारण आसपास का कुछ भी दिखना बंद हो जाए! बल्कि सच पूछिए तो यह अपने सुख-दुख के साथ ही एक-दूसरे के सूख-दुख को महसूस करते हुए आगे बढ़ना है.
और मजे की बात यह है कि अपने बड़े उपन्यासों की तरह अपने छोटे उपन्यासों में भी रामदरश जी कहीं न कहीं उपस्थित जरूर नजर आ जाते हैं. 'रात का सफर' जो रामदरश जी के छोटे उपन्यासों मे मुझे खासकर प्रिय है- को पढ़ना तो सच में ही उनके साथ रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठकर यात्रा करना है.... रेल के सफर में रात कैसे उतरती है, आसपास से उझक-उझककर आती प्रकृति कैसे मोहती है, यहां तक कि बीच-बीच में चाय पीने, टुकड़ा-टुकड़ा बातचीत और ऊंघने के दृश्य-यह सब बड़ा ही स्वाभाविक है.

***

'रात का सफर' पिता और पुत्री की साथ-साथ रेलयात्रा है. अपने पति को हमेशा के लिए छोड़कर आ रही ऋतु के पिता राकेश जी हालांकि मजिस्ट्रेट हैं, पर उनमें रामदरश जी के पितापन को देख पाना कोई मुश्किल नहीं है. इसी

तरह 'बीस बरस' के कथानायक दामोदर जी एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक हैं, पर गौर से देखें तो यहां भी रामदरश जी मौजूद हैं. इसका इससे बढ़कर सबूत और क्या हो सकता है कि कथानायक संपादक है, पर अपने उपन्यासों का ही ज्यादा जिक्र करता है. असल में रामदरश जी से अपनी छवि छूटती ही नहीं. वह 'परकाया-प्रवेश' करते हैं तो फौरन पकड़ में आ जाते हैं.

रामदरश जी अपने उपन्यासों में हैं- और उनमें किस हद तक 'आत्मकथा' है कि नहीं है, यह बात छोड़ भी दें तो इतना तो तय है कि वह जिंदगी जिसमें रामदरश जी एक बहुत-बहुत संवेदनशील मगर अदृश्य गाइड की तरह मौजूद हैं, उपन्यास पढ़ते हुए इस कदर हमारे चारों ओर घिर आती है कि कब हम खुद इसी का एक हिस्सा हो जाते हैं, हमें खुद पता ही नहीं चलता.

लिहाजा उपन्यास पढ़ते हुए कभी हम पात्रों के सुख से भीगते हैं और कभी अचानक आंखें भर आती है. रामदरश मिश्र के उपन्यासों को पढ़ने का तरीका भी यही हो सकता है. तटस्थ रहकर आप उन्हें नहीं पढ़ सकते. या कहें कि पढ़ते हुए तटस्थ रह ही नहीं सकते. जीवन के साथ एक गहरी साझेदारी के साथ वे लिखे गए हैं, शायद इसीलिए हमें तुरंत साझीदार भी बना लेते हैं. इन उपन्यासों से निकलकर गहरी सहानुभूति और उष्णता से भरा हुआ कोई हाथ हमारे कंधे पर आ पड़ता है, जो समझा देता है, रामदरश जी जो कह रहे हैं, उस पर यकीन करो, उनके शब्दों पर यकीन किए बगैर हम रह ही नहीं सकते.... उपन्यास पढ़ते हुए उनके सुख से सुखी, उनके दुख से दुखी हुए बगैर रह ही नहीं सकते.

इसका एक उदाहरण आपको देता हूं. यों तो रामदरश जी के उपन्यासों में जिंदगी बहुत है, इसलिए जिंदगी का राग बहुत है. उनके यहां जिंदगी खुरदरी और संघर्षशील चाहे जितनी हो, लेकिन राग-मोह, स्नेह की अदृश्य परछाइयों और उत्सव-विलास से अंटी पड़ी है. रामदरश मिश्र सीधे बहुत हैं, लेकिन उन्हें महज सीधा लेखक कोई न माने, इसलिए बता देना चाहता हूं कि प्रेम और राग का जितना सूक्ष्म और महीन चित्रण रामदरश जी ने किया है, उतना बहुत कम देखने को मिलेगा. मैं बड़े आग्रह के साथ कहना चाहता हूं कि अगर आपने रामदरश जी के उपन्यास इस लिहाज से नहीं पढ़े, तो एक बार फिर पढ़ देखिए. अगर मैं ऐसे स्थलों को उद्धृत करने लगूं तो पन्ने के पन्ने भर जाएंगे और पूरा लेख उसी से भर जाएगा. इसलिए मैं सायास उसे उद्धृत करने से बच रहा हूं.

हां, एक प्रसंग का उल्लेख जरूर करूंगा, 'जल टूटता हुआ' में बदमी और कुंजू का प्रेम. यह प्रेम क्या शै है, यह कहां से उठकर कहां चला गया है और उसकी जड़ें कहां तक फैली हुई हैं, जितना मैं इस बारे में सोचता हूं हैरान होता जाता हूं. बदमी और कुंजू के ये रागात्मक प्रसंग पढ़कर मन ही मन रामदरश जी को प्रणाम करने की इच्छा होती है, जिन्हें इस दृष्टि से, कभी ठीक से समझा ही नहीं गया, ऊपर-ऊपर से इन चीजों की तारीफ भले ही कर ली गई हो. गद्य में लिखी गई कविता क्या हो सकती है, यह आप बदमी और कुंजू के संवाद पढ़कर जानेंगे. और सच पूछिए तो यह हमारी जिंदगी का सर्वश्रेष्ठ गद्य-गीत है.

मैंने अपने जीवन में जो सबसे अच्छी और गहन संवेदनात्मक प्रेम-कविताएं पढ़ीं, वे इस ग्राम्य सौंदर्य और रागात्मकता के आगे बहुत छोटी लगती हैं. लगता है, हम चुपचाप इस प्रेम-कहानी में घुसकर चुपके-चुपके इसका सारा रस बटोर लें! और आश्चर्य तो यह है कि जिनका प्रेम इस ऊंचे शिखर तक चला गया है, वे बदमी और कुंजू हैं कौन? गांव के सबसे उपेक्षित लोग. बदमी एक ऐसी स्त्री है जो तमाम पुरुषों के वासना के पंजों में जकड़ी गई है, अभागिन है और कुंजू जो अपनी बांसुरी के साथ विरहा गाता हुआ, गांव में सबसे अलग, उपेक्षित और तिरस्कृत है. और रामदरश जी ने उन्हें कहां से उठाकर कहां तक पहुंचा दिया! कोई जीवंत कला शायद ऐसी ही होती है!

***

रामदरश जी के साथ यह जो मिथ जुड़ गया है कि वे एक सीधे-सादे लेखक हैं, और इस मिथ के साथ कहीं न कहीं एक हलके व्यंग्य या उपेक्षा की ध्वनि भी रहती है कि सीधे-सादे माने यों ही हैं- तो मैं पूरी विनम्रता और पूरी दृढ़ता

के साथ यह आग्रह करना चाहता हूं कि रामदरश जी कम से कम उतने सीधे-सादे लेखक नहीं हैं, जितना उन्हें समझ लिया गया है. उनकी सहजता का यह एक गलत और अति-सरलीकृत अर्थ होगा, अगर कोई उन्हें 'सीधा-सादा लेखक' कहकर हवा में उड़ाना चाहे. रामदरश जी की जड़ें गहरी हैं और उनकी सहज कला का उद्दाम आकर्षण भी. वे जिस तरह पात्रों की बारीक से बारीक, सूक्ष्म से सूक्ष्म भंगिमाएं अपने उपन्यासों में ले आते हैं, ठीक वैसे ही अपने उपन्यासों में जीवन को लगभग संपूर्णता में दिखा देते हैं. इसकी दाद दिए बगैर नहीं रहा जा सकता. अपनी हृदय बेधती बांसुरी की धुन और विरहा गीतों के संग छा जाने वाले कुंजू तिवारी और बदमी का मैंने ऊपर जिक्र किया. 'जल टूटता हुआ' ही में देखें तो ऐसे प्रसंग तमाम हैं, जिनमें जीवन का रस-आनंद, भीतरी आकुलता और उल्लास झर-झरकर बह रहा है. शारदा जैसी अति संवेदनशील लेकिन कुछ-कुछ खिलंदड़ी लड़की और उसकी पढ़ाने वाले मास्टर उमाकांत पाठक के प्रेम-प्रसंग में भी यही अनछुई राग-माधुरी है.

ऐसे ही 'अपने लोग' को देखें तो पगले उमेश की जो डायरी है, वह एक बेशकीमती और नायाब चीज है. उमेश जैसे बहुत-बहुत संवेदनशील और प्रतिभावान युवक के साथ हुआ हादसा हमें बुरी तरह स्तब्ध कर देता है. और उसकी डायरी के वे पन्ने, जिनमें उसका दर्द बहा चलता है, जिनमें उसके असफल प्रेम की गहरी कचोट है और उसके पागल होने के कुछ प्रकट, कुछ अप्रकट कारण भी, उसके आंसुओं से रूंधी हुई सतरों के बीच मौजूद हैं. कहना न होगा कि पगले उमेश की डायरी के ये भीगे हुए करुण पन्ने ही शायद 'अपने लोग' उपन्यास के सबसे कीमती पन्ने हैं, जो बता देते हैं कि उमेश पागल नहीं था. उमेश जैसा आदमी पागल नहीं हो सकता. पागल तो वह दुनिया है जो उसे पागल कहती है और एक मुर्दे की तरह चीजों को देखती है, जबकि उमेश एक जिंदा और चोट खाया हुआ आदमी है. वह एक जिंदा आदमी की तरह चीजों को देखता है, जीता है, टूटता है, हारता है और आखिरकार पागल हो जाता है! पर उसके जीवन की मार्मिक संवेदना और सच्चाइयों को आप अनदेखा नहीं कर सकते.

मुझे याद है, एक बार रामदरश जी से लंबे इंटरव्यू में मैंने उनसे उनके उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया के बारे में पूछा था. अब आप जानते ही हैं, रचना-प्रक्रिया...! यह शब्द अपने आप में ही ऐसा जड़, ऊबाऊ और माफ की कीजिए, 'ठूंठ' किस्म का है कि इसका जवाब भी कोई निहायत ठूंठ किस्म का ही हो सकता था. और रामदरश जी अगर निरे प्राध्यापक ही होते, तो मेरा ख्याल है वो उसी ढंग का जवाब देते भी. मगर रामदरश जी कोरे प्रोफेसर नहीं, एक आर्द्र और सृजन राग से भरे शख्स हैं, जिनके भीतर दिल्ली में इतने बरसों से रहते हुए भी गांव अब भी सांस ले रहा है, तो उनका जवाब एक प्रोफेसर का नहीं, एक गंवई आदमी का जवाब था, लिहाजा उसमें एक उस्तादाना आब थी. बोले, "मनु जी, मैं पहले से सारी चीजें तय करके कभी नहीं लिखता. सिर्फ जिस चीज के बारे में लिखना है, उसका एक हलका-सा खाका या तस्वीर मन में रहती है. और फिर होता यह है कि जब लिखने बैठता हूं तो कहीं से भी जिंदगी में धंस जाता हूं और फिर जो लोग और स्थितियां सामने आती चलती हैं, उनमें रम जाता हूं और रास्ते खुद-ब-खुद बनते चले जाते हैं."

'एक साहित्यिक की डायरी' में मुक्तिबोध में भी इसी रचना-प्रक्रिया जैसी 'पेंचदार' चीज को आम आदमी से जुड़े हुए एक मामूली बिंब के जरिए समझाया था. उन्होंने किसी भी रचना को एक खोज कहा और उनके अनुसार यह ऐसा ही है जैसे कोई शख्स अँधेरे में एक लालटेन लेकर जा रहा हो. लालटेन से जितना वृत्त प्रकाशित हो रहा है, बस, उतना आप जानते हैं. आगे चलने पर कुछ आगे की चीजें भी प्रकाशित होती जाएंगी, और यों आप चलते चलेंगे. अब आप एक चीज पर गौर कीजिए. मुक्तिबोध रचना-प्रक्रिया जैसी जटिल चीज को अपने तई अपने देशज बिंब के जरिए जैसा सहज बना लेते हैं, रामदरश जी भी ठीक वही काम कर रहे हैं. और अपने सभ्य किस्म के शहरातीपन को अलग रखकर, पूरे गंवई ठाट के साथ कर रहे हैं. मैं समझता हूं, यही रामदरश जी के उपन्यासों की शक्ति भी है. वे किसी बुद्धिजीवी की तरह लंबूतरा चेहरा बनाकर दूर-दूर तक अपने एकांत का पसारा करते हुए और उसी में लोट-पोट होते हुए उपन्यास नहीं लिखते. बल्कि इसके उलट वे एक ऐसे सहज आदमी की तरह उपन्यास लिखते हैं,

जो पढ़ाकू कम, एक भावुक पारिवारिक आदमी या सामाजिक आदमी ज्यादा है और इतना संवेदनशील है कि समय या उसमें आए हुए बदलावों से हर क्षण आंदोलित होता, रीझता और खीजता रहता है. इसीलिए उनके उपन्यासों में जान है, और जीवन उनमें छल-छल बहा चला आता है.

यों रामदरश जी कोई साहित्यिक वादों और फैशनों के लेखक नहीं हैं, कि आज कोई वाद खत्म हुआ और कल कोई और कलावादी फैशन चल पड़ा, तो आज उसका परचम लहरा रहे हैं और कल उस वाद के खत्म होते ही, उसी झंडे में बांधकर वे पोथियां अलमारी के एक कोने में रख दी गईं- फिर कभी न पढ़ने के लिए. जी नहीं, रामदरश जी ऐसे लेखक नहीं हैं. अगर वे कल थोड़े ढीले-ढाले से लेखक थे तो आज भी हैं और उनके ढीले-ढालेपन में कल अगर उस्तादी की बांकी छटाएं नजर आती थीं, तो वैसी ही आज भी नजर आती हैं और जैसे-जैसे समय बीतेगा, उनकी चमक फीकी पड़ने बजाए और अधिक हमें लुभाएगी. और फिर जैसे जिंदगी कभी पुरानी नहीं होती, मनुष्य कभी पुराना और बासी नहीं होता, उसका हंसना-रोना-गाना, उसका प्रेम, राग-विचार, उसके भावों का आलोड़न, यहां तक कि गुस्सा और नफरत भी जैसे कभी बासी नहीं होता, वैसे ही रामदरश जी के उपन्यास हैं और वे उसी तरह खुले-खुले और निर्बंध और सहज बहते हुए उपन्यास हैं जैसे खुद जिंदगी. तो फिर आप उन्हें कैसे बांधेंगे? किन शब्दों में, किस विशेषण में? सच पूछिए तो आंचलिक या किसी और छोटे-बड़े विशेषण में उन्हें नहीं बांधा जा सकता, और न ऐसी कोशिश ही करनी चाहिए.

यह दीगर बात है कि उन्हें कभी 'आंचलिक' कह दिया गया, कभी 'ग्रामीण संवेदना का लेखक' कहा गया, कभी 'सचेतन' के खाते में डालते की आधी-अधूरी और कोशिशें हुईं. मगर नहीं, ये सारी कोशिशें फिजूल साबित हुईं. इसलिए कि वे इस सबसे बड़े हैं और तमाम सीमाओं को बार-बार तोड़कर बाहर निकल आते हैं-जैसे जिंदगी, जैसे मनुष्य.

दूसरी बात जो रामदरश जी का कोई भी उपन्यास पढ़कर समझ में आ जाती है, वह यह कि ये एकांतिक उपन्यास नहीं हैं, जिनमें या तो कमरे के भीतर कुछ चीजें होती हैं या फिर मन की बुदबुदाहट में. वहां कुछ गिने-चुने अति सेलेक्टिव लोग होते हैं और दूर-दूर तक इक्का-दुक्का मानवीय उपस्थिति के अलावा एक लंबा, बहुत लंबा उबासियां लेता और ऊबता उजाड़. इसी तरह रामदरश जी ऐसे उपन्यासकारों में भी नहीं हैं, जिनमें जादुई यथार्थवाद के नाम पर या तो यथास्थिति है, या फिर जीवन के 'स्टिल चित्र' जिन्हें गौर से देखो तो वे थोड़े हिलते-डुबले भी नजर आ जाते हैं. और ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है कि वे इस तरह के कलावादी प्रपंच से अलग हैं और उनमें हमें अपनी जिंदगी और अपने समय की छोटी-बड़ी तकलीफें, छोटे-बड़े सुख-दुख और गरीब और निरुपाय जनता की करुणा नजर आ जाती है.

और शायद यही कारण है कि बीसवीं सदी को-उसके अजस्र प्रवाह और उसमें आए आश्चर्यजनक मोड़ और बदलावों को- उसकी तमाम-तमाम शक्लों को जिन बड़े कद के लेखकों के उपन्यासों से समझा जा सकता है, उनमें प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, यशपाल, जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रेणु, देवेंद्र सत्यार्थी, भगवतीचरण वर्मा जैसे बड़े लेखकों के साथ-साथ बेशक रामदरश मिश्र का नाम भी आप ले सकते हैं. निस्संदेह आपको लेना ही होगा. और यहां यह भी दर्ज करना जरूरी है कि समय के साथ-साथ रामदरश मिश्र के उपन्यासों का महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता गया है और बढ़ता जाएगा.

जाहिर है, ऐसा कहते हुए मैं रामदरश मिश्र के उपन्यासों की सीमाएं नहीं भूल रहा हूं. मसलन रामदरश मिश्र के ही ऐसे कई उपन्यास हैं जो 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'अपने लोग' जैसे उनके कालजयी उपन्यासों के आगे बड़े हलके और फीके लगते हैं. विकास-क्रम के लिहाज से उन्हें ऊपर होना चाहिए था, पर हकीकत यह है कि गांव की पृष्ठभूमि पर लिखे गए रामदरश जी के 'बीस बरस' जैसे उपन्यास उनके 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' जैसे बड़े उपन्यासों के आगे हलके लगते हैं. 'बीस बरस' को पढ़ते हुए लगता है, जैसे हम सचमुच बीस साल

बाद 'जल टूटता हुआ' का एक और-बदले हुए वक्त के हिसाब से लिखा हुआ 'उपसंहारनुमा' चैप्टर पढ़ रहे हों! ऐसे ही उनके यथार्थवादी उपन्यासों की धारा देखें, 'अपने लोग' जिसका शिखर है- तो इसी धारा में लिखा गया उनका उपन्यास 'बिना दरवाजे का मकान' शायद 'अपने लोग' के साथ चर्चा के लायक भी न समझा जाए! कहीं-कहीं रामदरश जी के उपन्यासों में भाषा और विन्यास के ढीले-ढालेपन और एक तरह की सुस्ती जैसी दिक्कतें हैं. कभी-कभी लगता है, जैसे थोड़ी मेहनत और की जाती, थोड़ा तराशा जाता या हलका सा 'टच' किया जाता, तो भाषा में कुछ और चमक और खिलावट आ जाती. पर रामदरश जी के उपन्यास इतने बड़े और खुले जीवन को भीतर समेटकर चलने वाले और इतने बड़े कैनवस पर लिखे गए उपन्यास हैं कि तमाम-तमाम सीमाओं के बावजूद उनका महत्त्व कम नहीं होता और उनका खुरदरापन तथा थोड़ी-बहुत चूकें भी उनके अजस्र कथा-प्रवाह में ढलकर उपन्यासकार रामदरश मिश्र की अपनी एक अलग शैली और एक खास तरह की 'अदा' का आभास देने लगती हैं. सच तो यह है कि अपनी थोड़ी-बहुत कमियों के बावजूद रामदरश मिश्र के उपन्यास हिंदी उपन्यास का इतिहास रचने वाले उपन्यास हैं, और उनके उपन्यासों के जिक्र के बगैर हिंदी उपन्यासों पर की गई कोई भी चर्चा अधूरी और बेमानी ही कहलाएगी.

फिर सबसे बढ़कर है रामदरश मिश्र के उपन्यासों की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता. आप उनके हर शब्द पर विश्वास कर सकते हैं. उनके अनुभव एकदम सच्चे और खरे हैं. उनमें कोई मिलावट नहीं है. वे 'फेक' अनुभव नहीं हैं और वे किसी किताबी लेखक के अनुभव नहीं हैं जो सिर्फ अपने कमरे में ही चीजों का साक्षात्कार करता है. सच तो यह है कि रामदरश मिश्र के अनुभव जिंदगी की गहरी जद्दोजहद के बीच से निकले हैं और उनका हर शब्द यह भरोसा देता लगता है कि आप उन पर बेहिचक पूरा-पूरा भरोसा कर सकते हैं.

हो सकता है कि इनमें से कुछ उपन्यासों को- या उपन्यास के कुछ स्थलों को रामदरश जी पूरी तरह गहरा न पाए हों! हो सकता है कि कहीं-कहीं पूरी मेहनत न की गई हो और भाषा कहीं-कहीं असमर्थ होकर उनके भावों और विचारों और चिंताओं का बोझ पूरी तरह संभाल न पा रही हो. पर यह तो प्रेमचंद में भी है. और कुल मिलाकर तो एक बड़े मानवीय धरातल पर चिंता और चिंतन की एक ऐसी उदात्तता और उच्चाशयता उनमें है कि रामदरश जी के उपन्यासों को, फिर चाहे उनके छोटे उपन्यास ही क्यों न हों, आप हमेशा जीवन की संपूर्णता को थाहने की कोशिश करते देख पाएंगे.

मैं समझता हूं, यह एक ऐसा पहलू है जो रामदरश जी के उपन्यासकार को हमारी सदी का एक बड़ा उपन्यासकार साबित करता है.

***

THE CORE IAS

रामदरश जी के पहले उपन्यास 'पानी के प्राचीर' का समर्पण वाक्य है, 'युगों से राप्ती नदी के प्रकोप और अपने अभावों के असूझ अंधकार से जीवट के साथ जूझती हुई जनता को!' और राप्ती नदी अपने कोमल और कठोर दोनों रूपों में 'पानी के प्राचीर' के इस छोर से उस छोर तक फैली हुई है. ठीक वैसे ही जैसे वह 'जल टूटता हुआ' के इस छोर से उस छोर तक फैली है-और उपन्यासकार के मन के साथ-साथ पूरे उपन्यास में इस कदर सदेह और साकार होकर बह रही है कि लगता है कि यह कोई नदी नहीं, एक अनंत जल-प्रवाह है जिसकी एक-एक लहर में लोगों, चेहरों और चरित्रों की अनंत हलचलें, दुख-दर्द, आंसू और सपने समाए हुए हैं.

यही राप्ती नदी रामदरश जी के एक और महत्वाकांक्षी उपन्यास 'अपने लोग' में भी है, जिसकी शुरुआत में ही हमें सूचना मिलती है कि प्रमोद जिस गाड़ी में है वह राप्ती नदी के पुल को धड़ाधड़ पार करती जा रही है... यानी कि गोरखपुर! राप्ती नदी यहां भी एक विशाल जल-प्रवाह के रूप में सदेह और मूर्त होती देखी जा सकती है. हालांकि 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' की तुलना में 'अपने लोग' में उसका आत्मीय परस थोड़ा हलका, या कहें नैकट्य की ऊष्मा थोड़ी कम है.

इसकी एक वजह शायद यह हो सकती है कि 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' में हम ग्रामीण जीवन की अधिक सहज और उद्दाम नदी-धारा के बीच बह रहे होते हैं और 'अपने लोग' में इसके बरक्स शहरी जीवन है, शहरी जीवन की तमाम विडंबनाएं, कुरूपताएं और एक अनकहा नरक है, जिसे रामदरश जी अपने शब्दों में समूचा उतार देते हैं!

यह ठीक है कि इस शहरी जीवन पर भी एक कस्बाई अनौपचारिकता और उन्मुक्तता हावी है जो इसे पूरी तरह सड़ने नहीं देती या क्रूर और अत्याचारी नहीं होने देती... पर 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' में जिंदगी के जो सहज छंद हैं, वे यहां तक आते-आते कुछ-कुछ भग्न और बाधित जरूर हो जाते हैं. इसी कारण रामदरश जी के शुरुआती दो बड़े उपन्यासों 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' को जिस तरह जन-गंगा के 'नदी-पुराण' या 'आख्यान' कहा जा सकता है, उसी तरह 'अपने लोग' को कहने में कदाचित हलका संकोच होता है. वहां जन हैं, और ठट्ठ के ठट्ठ जन हैं, पर वे 'जन-गंगा' शायद नहीं हो पाते...या होते भी हैं तो वे एक ऐसी गंगा बनते हैं जो काफी मैली और प्रदूषित हो चुकी है. 'आकाश की छत' में दिल्ली की बाढ़ के संदर्भ में गांव की राप्ती नदी को बार-बार याद किया गया है, पर यहां भी 'पानी के प्राचीर' या 'जल टूटता हुआ' जैसी समरसता नहीं है.

यहां सवाल उठता है कि गांव ही अब कौन से आदर्श गांव रह गए हैं. वहां क्या झूठ, कपट, अन्यास और अनीति की जाल नहीं हैं? वहां क्या राजनीति की कुचालें नहीं हैं? बेशक हैं, लेकिन वहां मनुष्य का प्रकृति के साथ साहचर्य ज्यादा मुक्त और खुला है. और यह प्रकृति बहुत कुछ मनुष्य के पापों को प्रक्षालित करती चलती है. इसीलिए गांव बहुत कुछ के बावजूद अब भी बचे हुए हैं, और उनमें जीवन के सहज प्रवाह को महसूस किया जा सकता है.

यों 'अपने लोग' जाहिर है, 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' की तुलना में प्रकृति से थोड़ा दूर पड़ जाता है. नदी में यहां तक आते-आते काफी गंदगी घुल जाती है. लिहाजा 'अपने लोग' में और ज्यादा गोरखपुर के बेतियाहाता मुहल्ले का- जैसा याद रखिए, यह गोरखपुर के सबसे जिस पोश या अतिकुलीन इलाकों में से है- वैसा वर्णन है, या बेतियाहाता की गंदगी टूटता तरह बजबजाती हुई सामने आती है, जीवन न 'पानी के प्राचीर' में है और 'जल यहां हुआ' में.

की यह विविधता रामदरश जी के है, तो इसीलिए कि उनके यहां कोई पूर्वाग्रह नहीं है. जैसा वे देखते और महसूस करते हैं, उसे शब्दों में उतार देते हैं, और फिर वह सहज ही पाठकों के दिलों में भी उतरता चला जाता है.

***

'अपने लोग' असल में रामदरश जी के उपन्यासों में यथार्थवादी धारा का प्रतिनिधित्व करता हुआ उपन्यास है और उनके यथार्थवादी उपन्यासों में यह निर्विवाद रूप से सिरमौर है. पर फिर भी अगर हमें यह 'पानी के प्राचीर' और

'जल टूटता हुआ' की ही एक अगली और अधिक यथार्थपरक कड़ी जैसा लगता है, तो इसलिए कि यहां भी राप्ती नदी मौजूद है. और जहां राप्ती नदी मौजूद है, वहां रामदरश जी अपनी सबसे ज्यादा उमंगों, स्वतः स्फूर्ति और जिंदादिली के साथ मौजूद हैं और उनका उपन्यासकार राप्ती नदी के साथ-साथ उछालें मार रहा होता है.

'अपने लोग' में हालांकि बड़ी विरूप और जुगुप्सा पैदा करने वाली स्थितियां तमाम है, पर वहां नायक के रूप में उपन्यासकार का गुस्सा या क्षोभ ऐसा ही है, जैसा कि अपने लोगों के प्रति उपजता है, जिन्हें आप बेहद-बेहद प्यार करते हैं. रघुवीर सहाय की एक काव्य पंक्ति है, बड़ी ही चर्चित पंक्ति, "एक मेरी मुश्किल है जनता जिस पर मेरा क्रोध बार-बार निछावर होता है!..." आप अगर इस पंक्ति की एक बहुत ही विस्तृत और सजीव व्याख्या देखना चाहते हैं कि अपने क्रोध का अपने ही लोगों पर बार-बार निछावर होना क्या होता है, तो मैं कहूंगा कि आप 'अपने लोग' पढ़िए. नफरत और प्यार का ऐसा अजब समीकरण उससे बेहतर शायद कहीं और नहीं मिलेगा, यहां तक कि रामदरश जी के शुरुआती उपन्यासों 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' में भी नहीं मिलेगा. वहां प्यार का पलड़ा ही कुछ भारी है. नफरत और प्यार का जो कठिन और कुछ असंभव सा लगता हुआ द्वंद्व 'अपने लोग' में है, वह तो सिर्फ 'अपने लोग' में ही आपको मिल सकता है.

और सच तो यह है कि 'अपने लोग' रामदरश मिश्र का एक ऐसा जबरदस्त उपन्यास है, जिससे आज के उपन्यास के तमाम रास्ते फूटते हैं. रेणु का 'मैला आंचल' बहुचर्चित उपन्यास है और हो सकता है कि वह किसी मानी में 'अपने लोग' से कहीं बेहतर हो. पर मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि 'अपने लोग' जितना समकालीन यथार्थ के निकट है, उतना 'मैला आंचल' नहीं. यही कारण है कि आज के उपन्यास के तमाम-तमाम रास्ते 'अपने लोग' से फूटते हैं, और यह उसकी एक अतिरिक्त शक्ति या विशेषता तो निश्चय ही कही ही जाएगी.

अगर कोई मुझसे पूछे कि रामदरश मिश्र के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यास कौन से हैं? तो मुझे जवाब देने में एक क्षण का भी समय नहीं लगेगा, 'पानी के प्राचीन', 'जल टूटता हुआ' और 'अपने लोग'. और अगर फिर इन तीन में से किसी एक का नाम लेने के लिए कहा जाए, तो?...यानी रामदरश मिश्र का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कौन-सा है? अब थोड़ा सोचना होगा. 'जल टूटता हुआ' या 'अपने लोग?'...'अपने लोग' या 'जल टूटता हुआ?' थोड़ी देर के लिए यह सवाल शायद आंख के आगे कांपेगा. अनिश्चय का एक हलका-सा क्षण. इसलिए कि मैं जानता हूं दोनों के अपने-अपने तर्क सामने आएंगे, और कभी एक तो कभी दूसरे का पलड़ा भारी हो जाएगा. लेकिन 'जल टूटता हुआ' की राप्ती नदी और जन-गंगा के उद्दाम वेग और महाकाव्यात्मकता के कारण अंततः वही रामदरश जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास ठहरता है.

लेकिन रामदरश जी के तीन सबसे अच्छे उपन्यास कौन-से हैं? का उत्तर तभी से मेरे होंठों पर है, जब मैंने रामदरश जी के समूचे साहित्य की अंतर्यात्रा करते समय, उनके सारे उपन्यास एक साथ पढ़े थे. और कहना न होगा कि ये केवल रामदरश मिश्र के ही नहीं, बल्कि हिंदी वाङ्मय के तीन बड़े और खरे उपन्यास हैं, जिनसे हिंदी उपन्यास का 'संसार' समृद्ध होता है और उसमें बहुत कुछ नया और 'मूल्यवान' जुड़ता है!

***

अब रामदरश जी के कुछ और अच्छे, दमदार उपन्यासों की बात की जाए. इनमें जाहिर है, 'दूसरा घर' की विशेष तौर से चर्चा होनी चाहिए. यों भी यह भी रामदरश जी के बड़े और महत्त्वाकांक्षी उपन्यासों में से है और पढ़ने पर दिल में अपनी तरह की थाप लगता है. कभी कोमल तो कभी थोड़े खुरदरे हाथों से भी. रामदरश मिश्र के लंबे गुजरात-प्रवास के अनुभव इसमें बड़े सच्चे और प्रामाणिक तौर पर आए हैं. डॉ गौतम के रूप में रामदरश जी की एक अत्यंत सौम्य छवि इस उपन्यास में है, जो देर तक याद रह जाने वाली है. उनकी नौकरी की अस्थिरता, कच्ची गृहस्थी और इसके साथ-साथ उनकी साहित्यिक महत्त्वाकांक्षाएं, सामाजिक और प्राध्यापकीय आदर्श-और इसके बीच में कहीं पिरोई हुई विस्थापितों की एक अकथनीय पीड़ा, जिससे डॉ गौतम के व्यक्तित्व का एक कोना निरंतर भीगा

ही रहता है....

'दूसरा घर' में एक आदर्शवादी प्राध्यापक के रूप में डॉ गौतम के व्यक्तित्व की उथल-पुथल है, शिक्षा क्षेत्र की गंदगी और घृणित राजनीति है...मगर यह सब होते हुए भी 'दूसरा घर' के केंद्र में है विस्थापितों का दर्द. पूरब से सैकड़ों मील दूर चलकर काम-धंधे और नौकरियों की तलाश में आए हुए लोग! वे आंखों में कुछ चमकते हुए सपने लेकर अहमदाबाद आए हैं, पर जिस गंदगी में उन्हें रहना पड़ता है, जो दर्द और अपमान झेलना पड़ता है...जैसी टूटी-बिखरी जिंदगी उन्हें जीनी पड़ती है, उससे उनके सपने टूक-टूक हो जाते हैं.

डॉ गौतम इस जिंदगी को जीते तो हैं, पर वह इसके सच्चे प्रतिनिधि नहीं हो सकते. इसका सच्चा प्रतिनिधि तो कोई शंकर जैसा सख्तजान, हड़ीला और हिम्मत वाला शख्स ही हो सकता है जो जहां भी अन्याय देखता है, वहां भिड़ जाता है. सो रामदरश जी ने यह अच्छा किया कि डॉ गौतम को 'दूसरा घर' का कथानायक नहीं बनाया. डॉ गौतम 'दूसरा घर' में छाए हुए जरूर हैं, और उनकी सौम्य उपस्थिति एक भले-भले नैतिक दबाव की तरह महसूस होती है. पर उपन्यास के केंद्र में तो शंकर ही है और उसका कुछ-कुछ खुरदरा, लड़ाका व्यक्तित्व ही, जो रोटी-रोटी की तलाश में पूरब से अहमदाबाद पहुंचे विस्थापितों की अंतहीन तकलीफों, संघर्ष और अपमान भरी 'दुर-दुर' की याद दिलाता है. या फिर कमलेश और फेंकू जैसे दर-दर की ठोकरें खाने वाले लोग हैं जो अपने आंसू भीतर ही भीतर पी जाते हैं. यह बेगानी जिंदगी की कचोट, यह कदम-कदम पर मिलीं फब्तियां और अपमान ही 'दूसरा घर' के प्रतीकार्थ को खोलते हैं. और बहुत चुपके से तथा बेमालूम ढंग से बता जाते हैं कि हमारा 'घर' में होना या न होना, क्या होता है. और दूसरी जगह आकर जब 'घर' छूट जाता है, तो उसके कैसे-कैसे अर्थ निकलते हैं!

निश्चित रूप से हिंदी में विस्थापितों के दर्द पर लिखे गए कुछ गिन-चुने उपन्यासों में 'दूसरा घर' की चर्चा होगी. हालांकि रामदरश जी का जो आत्मीय स्पर्श और जुड़ाव राप्ती नदी के साथ है, वह किसी महानगर से तो हो ही नहीं सकता. इसलिए 'दूसरा घर' उन्होंने लिखा जरूर है- और बेशक बड़े अच्छे और सुथरे ढंग से लिखा है, पर उसमें वे उस तरह बसे हुए नहीं हैं जैसे 'जल टूटता हुआ' में. लेकिन फिर भी, इसमें दो राय नहीं कि 'दूसरा घर' उपन्यास में उनके अनुभव बहुत सच्चे, खरे और प्रामाणिक हैं, और यह एक व्यापक काल फलक की रचना है, इसलिए रामदरश जी के उपन्यासों में इसका अन्यतम स्थान है.

यों भी 'दूसरा घर' की संवेदना और कलात्मक गठाव को कम करके आंकना भूल होगी. उपन्यास में ऐसे बहुत से विरल और चकित कर देने वाले अनुभव भरे पड़े हैं, जैसे रामदरश जी के दूसरे उपन्यासों में शायद दिखाई न पड़ें. मसलन 'दूसरा घर' में कमलेश के कसाई की चाल में जाने और वहां के कोने-कुचोने के वर्णन के साथ ही, वहां की सड़नभरी बजबजाती गंदगी और वहां महमूद चाचा जैसे बड़े दिल वाले, निष्कलुष और भरे-भरे इनसान से मिलने का जो दृश्य है, उसे पढ़कर बहुत देर तक मैं आगे बढ़ ही नहीं पाया. ये पन्ने शायद 'दूसरा घर' के सबसे कीमती पन्ने हैं.

'अपने लोग' में भी हालांकि रामदरश जी ने शहरी यथार्थ तथा काफी पास से देखी हुई गंदगी और कुरूपता का वर्णन किया है. पर कसाई की चाल की गंदगी और गलाजत में धंसकर जैसा वर्णन वे करते हैं और उसमें भी मनुष्य की धवलता और सच्चाई को जैसे उजागर करते चलते हैं, वह रामदरश जी जैसा कोई बड़ा उपन्यासकार ही कर सकता था. इसी तरह की एक गंदी चाल में चंदा और असरफी जैसी गंदी गालियां बकने वाली झगड़ालू औरतें भी रहती हैं, मगर जरा आप 'दूसरा घर' में चंदा और असरफी के झगड़े का पूरा वृत्तांत पढ़कर देखें? उफ, कैसी-कैसी भाषा वे इस्तेमाल करती हैं एक-दूसरे के खिलाफ. मैं इसे पढ़ते हुए कभी विकल तो कभी चकित हुआ हूं कि अरे, रामदरश जी ने चाल की औरतों की यह भाषा कहां से सीख ली? और जिस समय सारी दुनिया में तमाशा बनने के बाद, ऐसा लग रहा था कि राजू पहलवान असरफी को मोहल्ले से निकाल देगा, तब देखिए, एक-दूसरे के खिलाफ पोच भाषा इस्तेमाल करने वाली ये झगड़ालू औरतें कैसे एक-दूसरे के गले लग जाती हैं और सारी भीड़ को हिकारत भरी नजर

से देखते हुए कहती हैं, "जाओ...जाओ, अपना काम करो!"
और सच्ची कहूं, चंदा और असरफी का यह मिलन देखकर मुझे राम-भरत मिलन याद आ गया और मेरी आंख भीग गईं. इसे मेरी भावुकता कह लीजिए, पर नहीं, बगैर बड़ी कलम और बगैर बड़ी कला के यह प्रभाव आ ही नहीं सकता. इसे रामदरश जी जैसा कोई सच्चा और खरा आदमी ही लिख सकता है. ऐसे ही 'दूसरा घर' में शास्त्री का जो चरित्र है, उसके जरिए शिक्षा की दुकानें खोलने और फैलाते चले जाने की महामारी बहुत अच्छी तरह समझ में आ जाती है.

***

रामदरश जी के छोटे उपन्यासों में 'रात का सफर', 'बिना दरवाजे का मकान' और 'थकी हुई सुबह' तीन अलग-अलग कोणों से खींचे गए, स्त्री की वेदना के तीन चित्र हैं. इनमें 'रात का सफर' शायद सबसे तीखा उपन्यास है. और सच में यह अँधेरे-घुप-अँधेरे में एक स्त्री का सफर है. एक ऐसी स्त्री का सफर जिसका पति डॉक्टर है, अच्छा कमता है, सामाजिक तौर से उसमें कोई ऐब भी नजर नहीं आता. इसलिए कि समाज को दिखाने के लिए उसके पास एक सभ्य, चिकना चेहरा है. लेकिन यही सभ्य, चिकना चेहरा अपनी पत्नी ऋतु के साथ छल कर रहा है, और जो प्यार उसकी पत्नी को मिलना चाहिए, वह उसके नर्सिंग होम की एक नर्स के हिस्से चला जाता है. ऋतु की पति को सुधारने की तमाम कोशिशें डॉक्टर और नर्स को और उद्धत बनाती हैं, और अंत में उसके सामने एक गलीज प्रस्ताव यह आता है कि वह नर्स को भी सहन करे और दोनों डॉक्टर की पत्नी बनकर रहें.
इस 'मर्दवादी' दृष्टिकोण के जवाब में ऋतु का एक चांटा चटाक से पति के गाल पर पड़ता है, तो वह उसके पति और नर्स को ही नहीं, थोड़ी देर के लिए तो पाठक को भी झनझनाकर रख देता है. इसलिए कि यह सिर्फ एक चांटा नहीं है, यह एक स्त्री का पुरुष-प्रधान समाज के अत्याचार के खिलाफ पहला विद्रोह है. उपन्यास के शुरू में ही इस चांटे का जिक्र है और पूरी कहानी 'फ्लैश बैक' में चलती है, पर रामदरश जी की कला का यह जादू ही समझिए, कि यह चांटा 'चटाक...चटाक...' की शक्ल में पूरे उपन्यास में गूंजता रहता है.

'रात का सफर' की ही तरह 'थकी हुई सुबह' भी एक दुस्साहसी उपन्यास है. पर इसके दुस्साहसी होने का कारण थोड़ा अलग है. भाषा और विन्यास के तौर पर यह एक सीधा-सादा उपन्यास है, पर दुस्साहस कहीं है तो इसके पीछे की दृष्टि या 'विजन' में. 'थकी हुई सुबह' की शुरुआत इस सूचना के साथ होती है कि उमा जी गुजर गईं. फिर उमा जी कौन थी? इस सवाल से होते हुए कथानायिका लक्ष्मी की अपनी जिंदगी के पन्ने खुलने लगते हैं.
उमा जी रामधन मिश्र की पत्नी थी. वही रामधन जिन्होंने कथानायिका को उस समय अवलंब और सहारा दिया, जब पति के भाग जाने पर लक्ष्मी पितृगृह में किसी तरह दिन काट रही है उसके सारे रास्ते बंद हो चुके हैं. फिर आगे की पढ़ाई से लेकर अध्यापिका हो जाने तक का रास्ता खुलता है रामधन मिश्र के सहारे, जो धीरे-धीरे एक शक्तिशाली राजनीतिक शख्सियत में बदलते जा रहे हैं. और इसी बदलाव के क्रम में, समय की एक तेज बाढ़ में उमा जी पीछे छूट गईं और उनकी जगह आ गई लक्ष्मी. उमा जी तड़पती रहती हैं और लक्ष्मी को भी ऐसा तो

बिल्कुल नहीं कि अपराध-बोध बिल्कुल न हो, पर यह एक नया यथार्थ है और हाथ में आए सुख को वह छोड़ना नहीं चाहती.

पूरे उपन्यास में लक्ष्मी की दुख-दाह भरी जीवन-यात्रा और तकलीफों के पन्ने फडफ़ड़ाते रहते हैं. बीच-बीच में उमा जी की तकलीफ भी आती है और इस तरह 'थकी हुई सुबह' एक साथ दो स्त्रियों के शोषण और तकलीफों की गाथा है. आप कह सकते हैं, यह एक शोषित और असहाय स्त्री द्वारा एक और असहाय स्त्री का शोषण है. एक शोषित द्वारा दूसरे शोषित का शोषण...! इसे किस भाषा में कहा जाए, कहना मुश्किल है. 'थकी हुई सुबह' में रामदरश जी ने एक उपन्यास ही नहीं लिखा, एक बड़ी कठिन 'पहेली' रच दी है-या आप कहिए कि 'चक्रव्यूह' रच दिया है और आलोचना यहां असमर्थ और गूंगी है. इसका पाठ लक्ष्मी की तकलीफों के संदर्भ में किया जाए या मर चुकीं उमा जी के जीवन में आए एक विराट उजाड़ के संदर्भ में? मैं समझता हूं कि इस उपन्यास के सामान्य और प्रचलित ढंग के पाठ में कुछ न कुछ मुश्किल तो जरूर आती है. लक्ष्मी के एक मर्मांतक अपराध-बोध के सहारे ही इसे साधा जा सकता था. लक्ष्मी में द्वंद्व है, अपराध-बोध भी, लेकिन वह कुछ-कुछ इसी आख्यान का समर्थन करता-सा लगता है कि उमा जी के साथ जो हुआ, वह अपरिहार्य था. और अपनी मुट्ठी में आए सुख के मामले में न्याय-अन्याय के सवाल बेमानी हो जाते हैं. अगर इस उपन्यास का यह पाठ है, तो भयप्रद है. बहरहाल इसकी चर्चा अब यहीं समाप्त की जाए.

रामदरश जी के एक और छोटे उपन्यास 'बिना दरवाजे का मकान' में घरों में काम करने वाली स्त्री दीपा के माध्यम से आज की महानगरीय जिंदगी के यथार्थ को देखने की कोशिश है. आम तौर से मध्यवर्गीय आंख से निम्न वर्ग के पात्रों को, उनकी करुणा ओर असहाय जिंदगी के उतार-चढ़ाव और हाहाकार को देखा जाता रहा है. पर 'बिना दरवाजे का मकान' में फ्रेम ऑफ रेफरेंस एकाएक बदल गया है. और दीपा जो यह सब देखती और कहती है, एक बहुत मजबूर और असहाय स्त्री है. अपने संपूर्ण स्त्री होने की इच्छाओं के बावजूद, यह असहाय है. इसलिए कि उसका पति बहादुर जो रिक्शा चलाता था, एक सड़क-दुर्घटना में घायल और लाचार होकर घर पर पड़ा है. उसकी रीढ़ की हड्डी अब बेकार हो चुकी है. उसके घाव सड़ने लगे हैं, और उसके लिए जिंदगी में अब कुछ बाकी नहीं बचा है. और अपने पति से बहुत-बहुत प्यार करने वाली दीपा...! उसकी जिंदगी? वहां भी अब क्या बचा है! एक बिना दरवाजे का मकान ही अब उसकी जिंदगी है, जिस में कभी भी कोई आकर उसे फटकार जाता है. यहां तक कि कुत्ते भी टहलते हुए चले जाते हैं, जैसे सड़क और 'बिना दरवाजे के मकान' में कोई फर्क ही न हो.

पर रामदरश जी का उद्देश्य महज दीपा और उसके पति की लाचारी को दर्शाना ही नहीं है. वे कुछ बड़े कारणों तक जाते हैं. वे बिना कुछ कहे मानो यह इशारा कर देते हैं कि वे तमाम-तमाम लोग जो कथित रूप से संभ्रांत हैं, जो पैसे वाले सभ्य और सुचिक्कण लोग हैं, वे जरा-जरा सी बातों पर दूसरों को लांछित करते हैं, मगर खुद उनकी मनुष्यता मर गई है. वे इस कदर धन-पशु हैं कि दहेज के लिए अपनी बहुओं को जलाते हैं. बस, उनकी सभ्यता के चोले को उघाड़ने की जरूरत है. और सचमुच दीपा इनके आगे झुकती नहीं, बल्कि मुँहतोड़ जवाब देती है.

'बिना दरवाजे का मकान' में रामदरश जी बगैर किसी नारेबाजी के बहुत हलके संकेत में यह कह जाते हैं कि समाज में एक हिस्सा जब सड़ रहा होता है, तो दूसरा हिस्सा भी खुशहाल नहीं रह सकता. एक साधनों की कमी से सड़ता है, तो दूसरा अपनी साधन-संपन्नता से दूसरी तरह से सड़ने लगता है. दीपा लाचार है, मगर वह तमाम धन-पशुओं से कहीं बेहतर भी है, क्योंकि वह अपने से बाहर निकलकर देखना, सोचना और जीना भी चाहती है.

हां, यह ठीक है कि सामाजिक क्रूरता के इस दौर में दीपा का साहस लगातार छीनता जाता है. ठीक वैसे ही, जैसे एक तरह की निराशा और नपुंसक क्रोध बहादुर पर हावी है, और क्रोध से उन्मत होकर वह बुदबुदाता नजर आता है कि ये कुत्ते बिना दरवाजे के मकान में जब चाहे घुसे चले आते हैं! जाहिर है, कुत्ते सिर्फ कुत्ते ही नहीं हैं. उपन्यास में कुत्ते का जो प्रतीकार्थ है, वह कहीं ज्यादा बड़ा है और एक खौफ की सृष्टि करता है.

अलबत्ता, रामदरश जी के छोटे उपन्यास भी कमतर नहीं हैं, और उनमें संवेदना की परतें कितनी गहरी हैं, यह इन उपन्यासों पर एक नजर डालते ही पता चल जाता है.

**

अब रामदरश जी के एक और छोटे उपन्यास, 'बीस बरस' की चर्चा करें. कोई दो दशक पहले छपा 'बीस बरस' रामदरश जी के महत्वाकांक्षी उपन्यासों 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' की परंपरा की ही एक कड़ी है. जैसे वह गांव जो 'जल टूटता हुआ' में छूट गया था, 'बीस बरस' बाद उसका फिर से जायजा लिया जा रहा है. खास बात यह है कि इन बीस बरसों में जो कुछ बदला, उसके प्रति रामदरश जी की दृष्टि बड़ी खुली और स्वस्थ है.

यह ठीक है कि गांव में अब पहले जैसी सरलता, आत्मीयता, राग-रंग और उत्साह नहीं बचा, पहले जैसी परदुखकातरता नहीं बची. त्योहार और शादी-ब्याह के मौके पर पूरे गांव के एक परिवार होने का बोध भी नहीं बचा. पर एक अच्छी बात यह है कि पहले की बहुत-सी अशोभन चीजें और जो अंधविश्वास थे, वे अब चले गए. होली में कबीरा गाकर दूसरों की माँ-बहनों को जबानी नंगा करना बंद हो गया. अब गांव में वंदना जैसी स्त्रियां हैं जो विधवा होने पर विवाह करती हैं और खुद को स्त्रियों के उत्पीड़न के खिलाफ लड़ाई में झोंक देती हैं. हरिजन टोले के लोग और स्त्रियां अब ज्यादा हिम्मत के साथ खुद पर हो रहे अन्यायों का प्रतिकार करते हैं. लेकिन सबसे बड़ा विकार जो गांव में आया है और रामदरश जी को सबसे अधिक विचलित करता है, वह है गांव के नवयुवकों द्वारा शहर की अंधी और भौंडी नकल, तथा आधुनिकता के नाम पर घिनौनी विकृतियां.

क्या रूप ले रहा है गांव...? उपन्यास जैसे रह-रहकर सवाल उठाता है. और फिर आत्मीयता के भीतर छिपा छल, मित्रता की आड़ में चापलूसी...और यह सब देखते हुए 'बीस बरस' के कथानायक दामोदर जी छुट्टियां बीच में ही खत्म करके, दुखी मन से वापस दिल्ली चले जाते हैं.

जाहिर है, बहुत भारी मन से लिखा है रामदरश जी ने यह उपन्यास. उसके कुछ प्रसंग, खासकर होली-प्रसंग या बचपन के मित्रों की स्मृतियां भीतर तक भिगो जाती हैं. वहां अंगद भाई जैसे दमदार लोग भी हैं, जिससे आज भी गांव जीने लायक लगता है. पर शायद 'बीस बरस' के विन्यास में ही कुछ कमी है कि रामदरश जी इसमें बहुत अधिक रम नहीं पाए. बहुत-से स्थल जहां स्मृतियों में कुछ गहरे जाने का उन्हें मौका मिल सकता था, सपाट कथनों के बीच खत्म हो जाते हैं.

इसी तरह दामोदर जी यों तो एक बड़े पत्र के संपादक है, पर उनका संपादक वाला रूप ज्यादा नहीं जँचा. रामदरश जी उसे बहुत विश्वसनीय नहीं बना पाए. तो भी 'बीस बरस' में ऐसा बहुत-कुछ है जो रामदरश जी का इतने निकट से देखा और भोगा हुआ है कि हम उससे अनछुए रह ही नहीं सकते.

यह बात मुझे सुखद विस्मय से भर देती है कि इस अवस्था में भी, जब रामदरश जी सौ का आंकड़ा छूने के काफी निकट आ गए हैं, वे तन-मन से काफी स्वस्थ और सचेत हैं. कभी-कभार आ जाने वाली छोटी-मोटी व्याधियों के अलावा कोई ऐसी चीज नहीं, जो उन्हें काम करने से रोक सके. यहां तक कि उम्र की नवीं दहाई में उन्होंने तीन उपन्यास लिख डाले और ये तीनों रस विभोर कर देने वाले उपन्यास हैं. ये उपन्यास हैं-'बचपन भास्कर का', 'एक बचपन यह भी' और 'एक था कलाकार'. इनमें एक उपन्यास में स्वयं रामदरश जी का बचपन है. 'बचपन भास्कर का' शीर्षक से लिखे गए इस उपन्यास में रामदरश जी ने हमें अपने बचपन में ले जाकर उन दिनों की सैर कराई है, जहां आज की दुनिया से अलग एक निराली ही दुनिया थी और उसकी कुछ अजब सी मुश्किलें.

'बचपन भास्कर का' में रामदरश जी के बचपन की बड़ी आत्मीय झाँकी है. और न सिर्फ उनके बचपन, बल्कि उनके समय में गांव-देहात में घोर अभावों के बीच पलते हिंदुस्तानी बचपन की भी बड़ी प्रामाणिक तसवीर है. ऐसा बचपन जिसने घोर गरीबी और दारिद्र्य देखा, फिर भी मस्ती की खिलखिलाहट वहां कम न थी. जो लोग रामदरश जी की आत्मकथा पढ़ चुके हैं, वे उनके बचपन की ऐसी रोचक और विस्मयकारी घटनाओं से वाकिफ हैं, जिनमें किसी

उपन्यास से अधिक रस और आकर्षण है. सच पूछिए तो मुझे वही उनकी आत्मकथा का सबसे सुंदर और बेजोड़ हिस्सा लगता है. 'बचपन भास्कर का' उपन्यास में वही सब एक अनोखी किस्सागोई में ढलकर हमारे सामने आता है, और सच ही बाल पाठकों के साथ-साथ बड़ों को भी विभोर कर देता है.

इसी कालखंड में लिखे गए दूसरे उपन्यास 'एक बचपन यह भी' में भी बचपन है. भाभी सरस्वती मिश्र जी का बचपन. जब-जब मैं उनके घर गया हूं, भाभी जी के सतेज व्यक्तित्व की बड़ी मनोहर छवियां मेरे आगे खुलती हैं. रामदरश जी की कविता, डायरी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत और निबंधों में भी सरस्वती जी की अनेक छवियां हैं, जिन्हें जाने बगैर आप रामदरश जी को ठीक-ठीक जान नहीं सकते. दोनों सही मायने में सहचर हैं, हरसफर कह लीजिए. इस नाते सरस्वती जी का बचपन भी रामदरश जी के लिए अपरिचित न रहा होगा. पति-पत्नी के नित्य संवाद में उसके नए-नए अबूझ पन्ने खुलते होंगे. और बहुत सा तो रामदरश जी का खुद अपनी आंखों देखा भी है....पर उस बचपन का साधारणीकरण करके, रामदरश जी उसे भी एक नए रूप में जीकर, अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से पुनर्नवा कर देंगे, और फिर उसे एक रोचक उपन्यास के रूप में अपने पाठकों के आगे प्रस्तुत कर देंगे, यह कम-से-कम मेरे लिए तो अकल्पनीय ही था.

और 'एक बचपन यह भी' कोई मामूली नहीं, बड़ा अच्छा और अंत तक पाठकों को बांधे रखने वाला उपन्यास है. उसमें रस भी है, रोचकता भी और गांव के यथार्थ का ऐसा जीवंत चित्रण कि पढ़ते हुए पाठक मुग्ध और चकित सा उसके साथ बहता चला जाता है. खासकर उपन्यास की नायिका, जिसमें सरस्वती जी के अक्स बहुत साफ दिखाई देते हैं, गांव की होते हुए भी अपनी स्वतंत्र चेतना, निर्भीकता, दबंगी और गहन संवेदना के कारण पाठकों के चित्त पर छा सी जाती है, और उपन्यास पढ़ने के बाद भी आप उसे भूल नहीं पाते.

तीसरा उपन्यास 'एक था कलाकार' में रामदरश जी ने असमय गुजर गए अपने कलाकार बेटे हेमंत को मानो ट्रिब्यूट दिया है. हेमंत बड़े संभावनाशील अभिनेता थे और दूर-दूर तक उनकी ख्याति फैल चुकी थी. अनेक जाने-माने धारावाहिकों में आकर उन्होंने अपनी प्रतिभा का अहसास लोगों को कराया था. उनकी असमय मृत्यु ने रामदरश जी को कैसे भीतर से तोड़ दिया और किस धीरज के साथ उन्होंने इस दुख को झेला, इसे तो थोड़ा-थोड़ा जानता था. पर 'एक था कलाकार' पढ़कर बहुत कुछ सामने आया, जिसमें उस कलाकार के दुख और वेदना के साथ-साथ उनके हृदय में जगमगाते सपने भी झलमलाते नजर आए, जिन्हें मृत्यु के करुण आघात ने बिखरा दिया. रामदरश जी ने बड़े धीरज के साथ खुद को संभालते हुए यह उपन्यास लिखा है. इसीलिए यह इस कदर पठनीय बन गया है कि इसमें जीवन का एक सहज प्रवाह नजर आता है.

***

अंत में यह बात फिर से रेखांकित करने का मन है कि रामदरश जी जीवन के...जीवन की संपूर्णता के कवि, कथाकार और उपन्यासकार हैं. वे एक ऐसे लेखक हैं जो जीवन से कम किसी भी चीज के लिए राजी हो ही नहीं सकते. इस मामले में कोई भी वाद, कोई एक विचार, या कोई सामाजिक, राजनीतिक बाड़ा उनके लिए छोटा, बहुत छोटा साबित होगा.

और ऐसे ही मनुष्य...! यह मनुष्य ही उनके लिए साहित्य, कला आदि-आदि सारी चीजों के लिए कसौटी है. वे चाहे प्रकृति की सुरम्य लीला-भूमि में हों, गांव में हों या उससे सैकड़ों मील दूर दिल्ली में, उनकी तलाश मनुष्य की होती है. वे मनुष्य को देख लेना चाहते हैं, मनुष्य को छूना चाहते हैं. और गांव उन्हें कुछ खास इसलिए प्रिय है, या दिल्ली के होते हुए भी आज भी वे गांव में इसलिए हैं कि तमाम धूल, गंदगी, मैल और भदेसपने के बावजूद मनुष्यता के सबसे सच्चे और धवल रूप अब भी गांवों में ही है. कोई कह सकता है 'बीस बरस' तो गांव से उनके मोहभंग का उपन्यास है, फिर भी आप ऐसा कह रहे हैं? तो इसका जवाब यह होगा कि 'बीस बरस' में दामोदर जी के गांव से शहर चले आने का यह मतलब नहीं है कि 'गांव अब कोई संभावना नहीं है.' यह शहरों की कुछ-कुछ

THE CORE IAS

अंधी नकल में पड़ चुके गांवों के प्रति अपनी तीखी चिंता को दर्शाने का उनका एक ढंग भी है. वरना न गांव रामदरश जी से छूटा था और न रामदरश जी उससे छूट पाएंगे.

रामदरश जी के कवि और उपन्यासकार रूप, दोनों ही मुझे प्रिय हैं. और कई बार तो मुझे यह लगता है कि रामदरश जी बड़े उपन्यासकार इसलिए हैं क्योंकि वे बड़े कवि हैं. अगर वे बड़े कवि न होते तो वे शायद इतने बड़े उपन्यासकार भी न होते. मैंने उन्हें पहले कवि रूप में ही जाना, पढ़ा और अभिभूत हुआ. उनके उपन्यासकार रूप से परिचय बाद में हुआ. यह पूछने पर कि वे मूलत: कवि हैं या उपन्यासकार, खुद रामदरश जी ने यह जवाब दिया था, "मनु जी, मूलत: तो मैं कवि ही हूं."...पर अगर रामदरश जी के कवि और उपन्यासकार में से किसी एक को चुनने के लिए कहा जाए तो? इस पर मेरा जवाब होगा कि उपन्यासकार रामदरश मुझे जितने बड़े लगते हैं, उतने बड़े कवि नहीं. और अगर आप मुझसे यह पूछें कि रामदरश जी इतने बड़े उपन्यासकार आपकी नजर में क्यों हैं, तो इस पर मेरा जवाब होगा कि रामदरश जी बड़े कवि हैं, इसलिए इतने बड़े उपन्यासकार हैं!

अब आप देखिए, यह यह कैसी विचित्र पहेली है. मैं जब-जब इसे हल करने की कोशिश करता हूं, थोड़ा और उलझ जाता हूं. शायद यह भी रामदरश जी का बड़प्पन या उनके लेखक का बड़ा होना है, जिसके साथ बड़े सवाल और चुनौतियां जुड़ी हैं, जिनका हल आसान नहीं है. शायद हर बड़ा लेखक ऐसा ही सीधा और ऐसा ही जटिल होता है, जैसे रामदरश मिश्र! मगर इसी कारण रामदरश जी का साहित्य हर क्षण मूल्यांकन के लिए ललकारता भी है. खासकर उनके उपन्यास, जिन्होंने प्रेमचंद के बाद भारतीय समाज को इतनी गहराई से प्रभावित किया है, कि समय के साथ उनका महत्त्व निरंतर बढ़ता ही जाता है.

मुझे हर हालत में स्त्री का साथ चाहिए था, चाहे किसी भी तौर-तरीके से क्यों न हो- मोहन राकेश

राजकमल प्रकाशन से एक पुस्तक आई है- "मोहन राकेशः अधूरे रिश्तों की की पूरी दास्तान". पुस्तक को लिखा है जयदेव तनेजा ने. जयदेव तनेजा ने यह पुस्तक मोहन राकेश के साहित्य (कुछ छपे, कुछ अधूरे), उनके पत्रों के अध्ययन, उनके सगे-संबंधियों, प्रकाशकों और मित्रों से बातचीत के आधार पर तैयार की है. नाटक, कहानी, प्रेम संबंध, पति-पत्नी संबंध (प्यार-खटास), संघर्ष आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े मोहन राकेश को समेटकर जयदेव तनेजा ने अधूरे रिश्तों की पूरी दास्तान रची है.

पुस्तक में हमें मोहन राकेश के व्यक्तित्व और कृतित्व के कई आयाम देखने को मिलेंगे. पुस्तक की शुरूआत होती है मोहन राकेश के संबंधों से. इसमें उन्होंने मोहन राकेश के पहले प्रेम और शारीरिक संबंध के बारे में लिखा है. पुस्तक की भूमिका में जयदेव तनेजा मोहन राकेश के प्रेम संबंधों के बारे में कुछ इस प्रकार लिखते हैं- मोहन राकेश अपने आत्मानुभव के आधार पर बिलकुल सहज, सरल और स्वाभाविक शब्दों में बस, केवल इतना ही कहते हैं- 'आओ, प्यार करें, बिना ये जाने कि प्यार क्या है?' उनके लिए प्यार सीखने की नहीं, करने की कला है.

भूमिका में ही एक जगह पर जयदेव तनेजा लिखते हैं- "इस पुस्तक का विषय चूंकि राकेश के व्यक्तिगत जीवन में आनेवाली स्त्रियों से उनके आधे-अधूरे रिश्तों पर केंद्रित है. इसलिए बेहतर है कि पहले हम पति-पत्नी, स्त्री-पुरुष, नर-मादा के बीच बननेवाले प्रेम, मित्रता और शारीरिक संबंधों के संदर्भ में उनके आत्मानुभवों एवं विचारों की चर्चा कर लें."

प्रस्तावना में एक जगह लिखा हुआ है- अपनी जिस्मानी जरूरतों, इमोशनल भूख और घर की तलाश में राकेश आजीवन छटपटाते-भागते रहे. अपनी इस विवशता तथा अतृप्त लालसा का स्पष्ट उल्लेख वह अपनी डायरी में बार-बार करते हैं. उनके मित्र और संपादक राजेंद्र पाल के साथ एक इंटरव्यू में नितांत व्यक्तिगत प्रश्न के सवाल पर

मोहन राकेश कहते हैं कि वह पत्नी के प्रति वफादार नहीं रहे थे क्योंकि- "मैं मानता हूं कि मुझे हर हालात में स्त्री का साथ चाहिए था, चाहे किसी भी तौर-तरीके से क्यों न हो और ये इंतजाम मैंने कर लिया था."

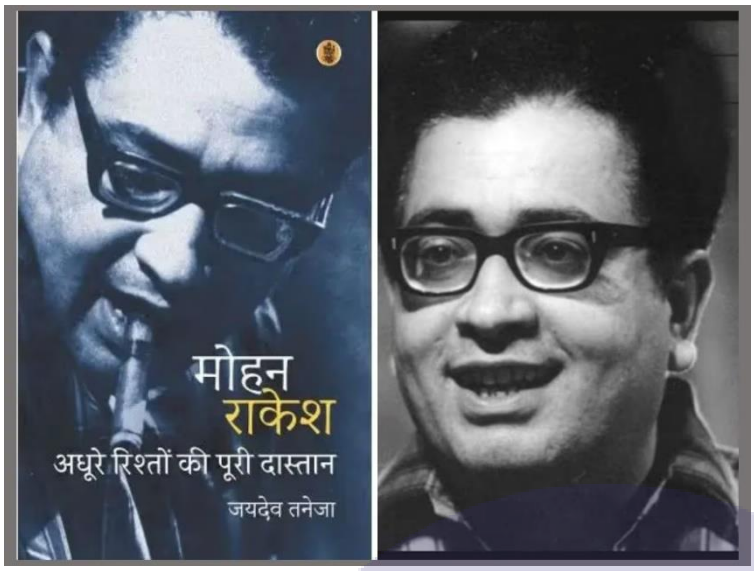

पुस्तक में एक स्थान पर मोहन राकेश के पहले संबंध के बारे में लिखा गया है. "स्त्री-पुरुष संबंधों का वह पहला और अनोखा अनुभव" में बताया गया है कि किस प्रकार मोहन राकेश ने शिमला में एक अंजान महिला के साथ संबंध बनाए थे. आप भी पढ़ें यह संदर्भ-

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का वह पहला और अनोखा अनुभव

शिमला 1950

बहुत अचानक हुआ. बस देखा, चाहा और सब हो गया. जिंदगी में पहली बार. उसे हैरानी हुई कि यह मेरी पहली बार है, शायद खुशी भी. उसने पता मांगा, तो सिगरेट की डब्बी फाड़कर उसे लिखकर दे दिया. पर असली पता नहीं. मार्फत...।

उसने अपना पता भी दिया. अलीगढ़ का. कहा कि वहां आऊं, तो किसी से भी वकील...का घर पूछ लूं. दस से पांच तक वह अक्सर घर में अकेली होती है, फिर उसने पहली बार डब्बी के कार्ड पर लिखा मेरा नाम पढ़ा. काम पूछा. उससे इतना ही कहा कि यहां नौकरी के इंटरव्यू के लिए आया हूं.

'आप कल शाम ही आए हैं,' वह बोली. 'हम लोग दो दिन से यहां थे.' अफसोस मुझे भी हो रहा था कि मैं कल शाम को ही क्यों आया? उन्हें आज दोपहर को ही क्यों चले जाना है?

'कहीं चलकर चाय पीते हैं,' उसने कहा. 'इन्हें अभी एक-आध घंटा और लगेगा हाईकोर्ट में. कह रहे थे, बारह से पहले नहीं लौट पाएंगे.' पर मना कर दिया कि चाय-वाय जैसी बेकार चीजें पहले के लिए ठीक हैं. अब सब हो चुकने के बाद क्या करना है चाय पीकर? और चाय पीने बैठेंगे, तो बात करनी होगी. क्या बात करेंगे? कहा, 'नहीं, मैं सीधे होटल के कमरे में जाऊंगा. वहां किसी को वक्त दे रखा है.' वक्त दे भी रखा था वाकई. हरिमोहन को. इसलिए अपने सफेद पुलोवर की बांहों को देख रहा था, जो सुरंग की कालिख से स्याह हो गई थीं. सोच रहा था कि हरिमोहन देखकर पूछेगा, तो...? वह हरगिज नहीं मानेगा कि यह मेरी पहली बार थी.

'ड्राई-क्लीन कराना पड़ेगा,' वह हँसी.

'इसी समय पहने-पहने तो ड्राई-क्लीन हो नहीं सकता,' मैं खीझ के साथ बुदबुदाया. सोचा कि उसे तो पता होगा पहले से सुरंग की कालिख का. जब उसे सुरंग का पता था कि दिन के दस बजे वहां आउट-डोर में यह हो सकता है, तो

और सब भी पता होगा. तो क्या दो दिन में भी वह एक से ज्यादा बार वहां आ चुकी थी? उसने कहा था कि वे लोग शिमला पहली बार आए हैं.
'आप चले जाइए शॉर्ट-कट से. हम बाद में सड़क से घूमकर आएंगे,' वह बोली. शॉर्ट-कट के पास अलग होने के साथ ही हम पहले की तरह अजनबी हो गए. जैसे उस समय थे जब होटल से निकले थे. अलग-अलग और दस मिनट के फर्क़ से.

पगडंडी से हिन्दू लॉज की तरफ चढ़ते हुए सोच रहा था कि आसान शायद यही होता है-एक अजनबी का अजनबी के साथ. कल शाम को सिर्फ देखा भर. सुबह दो-चार मिनट बात हुई. बालकनी पर, मौसम के बारे में. फिर कमरे के सामने से गुजरते हुए एक मुस्कुराहट और सवाल, 'घूमने चलिएगा? हमारे ये तो हाईकोर्ट गए हैं. हम सोच रहे हैं, दो घंटे कहीं घूम आएं. हम चल रहे हैं माल पर. आप आ जाइए दस मिनट में, आना हो तो.' और बस.

पगडंडी पर चढ़ते हुए कुछ छोटी-छोटी टहनियां तोड़ लीं. टूट-टूटकर इतनी छोटी हो गई कि और नहीं तोड़ी जा सकीं, तो फेंक दीं. इससे पहले कितनी बार चाहता था कि यह हो सके-कितनी-कितनी मंजिलें तय की थीं इसके लिए. योजनाएं और भूमिकाएं. नतीजा कुछ नहीं. क्योंकि परिचय से एक दीवार उठ आती थी. 'परवाह' हो जाती थी. 'जानने' की कुंठा.
हबीब तनवीर ने फिल्मों की बजाय रंगमंच से प्यार किया, न्यौछावर कर दिया पूरा जीवन
माल पर आकर होटल में उतरने से पहले कुछ देर 'पुरुष' के अन्दर रुका रहा. अपने को देखता रहा कि क्या कुछ फर्क पड़ा है? और क्या बस यही होता है- इतना ही?
होटल के लकड़ी के जीने पर आकर फिर एक बार रुक गया. हरिमोहन आ चुका था. अपने पुलोवर की बांहों को एक नजर देख लिया. लगा कि उसके अलावा भी शायद पता चलने को बहुत कुछ है. साँस में बसी सुरंग के रिसते पानी की गन्ध. आंखों में भरी गोलाइयां जिन्हें पहली बार इतना नंगा और भरपूर देखा था-और किसी भी क्षण गाड़ी के सुरंग में आ जाने का डर.
इस अनुभव को अनोखा कहने-मानने के कई कारण हैं :

1. राकेश मानते रहे हैं कि बिना प्रेम और आत्मीय रिश्तों के स्त्री-पुरुष का ऐसा संसर्ग विशुद्ध पाशविकता है. यह संबंध इसलिए भी अनोखा है कि न तो यह बलात्कार है और न ही वेश्यागमन. वे पति-पत्नी संबंधों से तो भिन्न है ही, पत्नी की अनिच्छा के बावजूद पति द्वारा अपने सामाजिक-धार्मिक अधिकार के मद में बलात् पत्नी से किए गए सम्भोग से भी भिन्न है.

यह दो अपरिचितों के बीच परस्पर मर्जी से स्थापित किया गया स्वैच्छिक यौनाचार है. राकेश के सम्पूर्ण साहित्य में स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों के इस रूप का चित्रण भी कहीं नहीं मिलता.

2. होटल में लौटने से पहले राकेश का 'पुरुष' शौचालय के शीशे में अपने-आपको इसलिए गौर से देखना कि इससे उसके चेहरे पर कुछ फर्क पड़ा है या नहीं? इसके अतिरिक्त उसका यह सोचना कि उसकी साँस में बसी सुरंग के रिसते पानी की गन्ध या आंखों में भरा स्त्री की नंगी देह पर उसकी भरी गोलाइयों का अक्स उसके इस गोपन क्रिया-कलाप की गवाही तो नहीं दे देंगे? स्त्री हो या पुरुष, कौमार्य-भंग के बाद इस प्रकार के संशयात्मक विचारों का आना आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से पूरी तरह स्वाभाविक और संगत है.

3 . किसी भी क्षण गाड़ी के सुरंग में आ जाने के मृत्यु-भय के बीच क्या सेक्स और उससे प्राप्त होनेवाली आनन्दानुभूति सम्भव है?-ऐसे अस्तित्ववादी गम्भीर प्रश्न का सामना भी यहां राकेश प्रत्यक्षतः करते हैं.

यहां यह तथ्य भी ध्यान देने लायक है कि राकेश अपने अन्तिम और अधूरे रह गए नाटक 'पैर तले की जमीन' में मानव-अस्तित्व के जिस बुनियादी और महत्वपूर्ण प्रश्न का रचनात्मक उत्तर तलाशने का प्रयत्न कर रहे थे-सम्भवतः उसके मूल में पहलगाम में पुल टूटने से आई बाढ़ में क्लब के डूबने से उत्पन्न आसन्न मृत्यु की घटना के साथ-साथ शिमला की इस रोमांचक घटना की स्मृति की भी कुछ भूमिका रही होगी!

बहरहाल, बहुत ज्यादा आर्थिक तंगी और पारिवारिक (मां, बहन, भाई) जिम्मेदारियों की मजबूरी के कारण बहुत भाग-दौड़ करके राकेश ने शिमला के जिस मिशनरी स्कूल में बड़ी मुश्किल से नौकरी पाई थी, अपनी बेचैन और बेसब्र मानसिकता के चलते वह उस रुटीन एकरस जिन्दगी से जल्दी ही उकता गए. 1950 के उस आरम्भिक दौर में दिन-रात अपने मन में उठनेवाले ज्वार-भाटा को राकेश ने इन शब्दों में व्यक्त किया है :

बहुत कोफ़्त होती है इस जिन्दगी में. सुबह उठते ही पहला खयाल कि गिरजे की घंटियां बजने में कितना वक्त है. कभी बीस मिनट मिलते हैं, कभी तीस मिनट. उतने में ही नहाना, खाना, तैयार होना होता है. प्रभु ईसा को कभी नौकरी नहीं करनी पड़ी, वरना सारा टेस्टामेंट ही बदल गया होता. खास तौर से अगर नौकरी मिशनरी स्कूल की होती. मिस्टर फिशर जैसे हेडमास्टर से पाला पड़ा होता. 'दि ग्रोटो' इस कोठी का नाम है जो हमें स्कूल से मिली हुई है. ईसा मसीह के जन्म-स्थान के नाम पर. क्या ईसा मसीह को भी उस तबेले में वैसी ही उलझन होती रही होगी, जैसी मुझे यहां होती है?

सुबह उठते ही बेड-टी का बटन ऑन. पानी जरा-सा गर्म होते ही शेव, टॉयलेट और सूट-बूट. काला चोगा. चलते-चलते चाय की प्याली. स्कूल के आधे रास्ते में डिंग-डांग, डिंग-डांग. वक्त पर गिरजे में पहुंचने के लिए दौड़. हाँफते हुए मास्टरों की लाइन में शामिल. दूसरी लाइन में तीसरी सीट. 'अवर फ़ादर, हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम...' एक-एक करके सात पीरियड. पढ़ा सकते थे ईसा मसीह इतने पीरियड? इससे कहीं आसान था क्रॉस कन्धे पर लेकर चलना.

वही रोज की जिन्दगी-अनचाही. अनमने ढंग से किया काम. फुसफुसी फुलझड़ियों जैसी बातें 'हऊ फ़ाइन!,' 'हऊ नाइस!,' 'डिड यू गो टु द माल येस्टरडे?, 'हऊ इज द लिवर?, 'हऊ मैनी पीरियड्स मोर?'
ऑक्स फॉर सेल-कैन ऊ सैवन पीरियड्स ए डे?
वही सब जो कल हुआ था, आज भी हुआ और कल भी होगा. एक लम्बे सिलसिले की एक-सी कड़ियां, एक-से ढंग से रोज-रोज जोड़ते जाना. ऐसा कुछ नहीं, जो इस सिलसिले से बाहर या हटकर हो. सीधी-सीधी कड़ियां और ढीली-ढीली गाँठें. जैसे यह जिन्दगी नहीं, फकत एक जिंदगीनुमा खेला है. हम सब ईसा मसीह के बच्चे रोज यह खेल खेलते हैं. 'अवर फ़ादर, हू आर्ट इन हैवन...'

दिन बीतने तक एक थकान. होने की नहीं, न होने की. क्यों आज का दिन कल के दिन में ऐसा नहीं उलझ जाता कि सचमुच होने का एहसास हो? गाँठें कुछ इस तरह उलझ जाएं कि उन्हें सुलझाने-सुलझाने में उंगलियों के पोर

@THECOREIAS | Himalika Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09 | 8800141518
www.thecoreias.com | 53/18, ORN, DELHI-60 | THE CORE IAS

टूटने लगे? अपना आप उन गाँठों में इस तरह कसा लगे कि एक-एक दिन उन्हें खोलने या तोड़ने के हताश संघर्ष में बीते? लगे कि होने की वास्तविकता यह है. मैं यह हूं जो सुबह से शाम के बीच इतना दुखता हूं, इतना छटपटाता हूं. यह नहीं जो दो स्लाइसों के साथ दो अंडों की जर्दी निगलकर चॉक से ब्लैकबोर्ड पर लकीरें खींचता हूं. 'हऊ आर यू टुडे?, 'क्वाइट वेल, थैंक यू' वाला मैं नहीं, 'डैम यू, यू राटन स्वाइंज! डैम यू, यू स्टिकिंग बिचिज' वाला मैं. पर वह मैं कहां हूं?

कितने-कितने रास्ते हैं, जिन पर चल पड़ने को मन करता है. उनसे आगे भी कितने रास्ते हैं, जिनके मोड़ तक भी कभी नहीं पहुंचेंगे. सड़कों, पटरियों और पगडंडियों की शक्ल में कितना बड़ा गुंझल है रास्तों का. उस गुंझल में पहाड़ और समुद्र, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, सभी-सभी एक-दूसरे से मिले हुए हैं. यहां का स्कैंडल पाइंट न जाने कहां की अबरक की खानों से, यह घर 'दि ग्रोटो,' न जाने कहां के 'विला मैरीना' या 'विला पैरेडाइज' से. सब एक-दूसरे से मिले होने पर भी उस गुंजल में खोए हुए उसके इस सिरे से उस सिरे तक का तार निकाल लेने में असमर्थ.

कैसे हो सकता है कि, चाहे एक क्षण के लिए ही, आदमी सब रास्तों को एक साथ एक नजर से देख सके? धुंध मे लिपटे इस सारे भूलभुलैया का एक क्षणिक- सा ग्राफ हासिल कर सके? जिन्दगी भर 'दि ग्रोटो' के लॉन में ही चहलकदमी न करता रहकर हर 'विला मैरीना' और हर 'विला पैरेडाइज़' को भी, चाहे आंख से ही, एक-एक बार छू सके?
रात. खिड़की के बाहर सरसराते देवदार और अंधेरा. कुछ आवाजें. चिचियाते कीड़ों की. एक भौंकते कुत्ते की. हवा. दूर एक धुंधली-सी रेखा सामने की पहाड़ी के 'वी' कट की.
हवा में कुछ सिहर रहा है. अंधेरे में भी. मेरे अन्दर में भी. जैसे अभी-अभी कुछ होने को है. हवा, अंधेरा और मैं- सब उसके होने की प्रतीक्षा में हैं. हर क्षण सोच रहे हैं कि बस, अब अगले ही क्षण से वह होना शुरू होगा. इससे अगले क्षण से. और मोहन राकेश के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना या त्रासदी यही है कि जिस आनेवाले क्षण अथवा कल की आतुर प्रतीक्षा वह ताज़िन्दगी करते रहे, वह कल कभी नहीं आया.
पुस्तकः मोहन राकेश: अधूरे रिश्तों की पूरी दास्तान

हबीब तनवीर ने फिल्मों की बजाय रंगमंच से प्यार किया, न्यौछावर कर दिया पूरा जीवन

देश के प्रख्यात रंगकर्मी हबीब तनवीर ने आज से करीब 70 वर्ष पहले दिलीप कुमार के साथ "फुटपाथ" फिल्म में काम किया था और वह चाहते तो सिनेमा में ही अपना करियर बनाते लेकिन, रंगकर्म से उन्हें इतना प्यार था कि उन्होंने नाटकों में ही अपना जीवन लगा दिया. यह वर्ष हबीब तनवीर की जन्मशती के रूप में मनाया जा रहा है.
हबीब तनवीर की जन्मशती पर रज़ा फाउंडेशन की ओर से इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'हबीब महिमा' का आयोजन किया गया. इस मौके पर किसी ने उन्हें जीनियस बताया तो किसी ने जादूगर. कोई उन्हें बीसवीं सदी का सबसे बड़ा "संस्कृति पुरुष" बता रहा था कोई तनवीर को क्रांतिकारी तथा लोक और शास्त्र का समन्वयक बता रहा था. अशोक बाजपेई, असगर वजाहत, एमके रैना, कीर्ति जैन, सुधन्वा देशपांडे, महमूद फारुकी, अरविंद गौड़, रवींद्र त्रिपाठी, भरत शर्मा ने हबीब साहब पर अपने विचार व्यक्त किए और संस्मरण सुनाए.

अशोक वाजपेई ने कहा कि हबीब तनवीर 20वीं सदी के सबसे बड़े संस्कृति पुरुष थे जिन्होंने वैकल्पिक आधुनिकता प्रदान की. उन्होंने परंपरा में हस्तक्षेप नहीं किया बल्कि परंपरा का विस्तार किया. उस समय की जो आधुनिकता थी उससे हटकर उन्होंने शास्त्र और लोक के बीच रिश्ता बनाते हुए एक नई आधुनिकता पैदा की.

अशोक वाजपेई बताते हैं कि हबीब तनवीर ने मोहन राकेश, विजय तेंदुलकर, गिरीश कर्नाड आदि के नाटक नहीं किये और ना ही शेक्सपियर के नाटक किए बल्कि उन्होंने अलिखित नाटक किया. और उन्होंने नाटक किया ही नहीं बल्कि खेला भी. हबीब तनवीर के नाटकों में खेलने का भाव अधिक है. वे नाटक नहीं करते थे बल्कि खेला करते थे और उसमें क्रीड़ा भाव अधिक था. 'चरण दास चोर' में इतनी भागदौड़, इतनी उछलकूद इसका उदाहरण है.

अशोक वाजपेई कहते हैं कि हबीब तनवीर का रंगमंच प्रश्नवाचक रंगमंच था. उसमें एक लीला का विभव था. उनके नाटकों को देखकर मुझे बचपन की रामलीला भी याद आई थी. उनके नाटकों के दर्शकों में कुमार गंधर्व जैसे लोग भी होते थे.

प्रसिद्ध रंगकर्मी सुधन्वा देशपांडे ने कहा कि हबीब तनवीर एक जीनियस रंगकर्मी थे और उन्होंने दिलीप कुमार जैसे अभिनेताओं के साथ फिल्मों में काम किया था. वह चाहते थे तो फिल्म में ही अपनी संभावना तलाश सकते थे लेकिन उन्होंने रंगकर्म को अपना रास्ता बनाया. क्योंकि उन्हें समाज में कुछ कहना था. हबीब साहब कहते भी थे कि नाटक करना उनका धर्म है. और उन्होंने इस धर्म को मरने तक निभाया.

सुधन्वा देशपांडे ने सफदर हाशमी के साथ हबीब साहब के संबंधों का जिक्र करते हुए कहा कि जब सफदर हाशमी पर जानलेवा हमला हुआ था तो हबीब तनवीर काफी बेचैन थे और गुस्से में थे. इससे पहले कभी भी उनको इतना तिल मिलाते हुए नहीं देखा था.

उन्होंने कहा कि हबीब तनवीर राजसभा के सदस्य थे और उस समय देश में इमरजेंसी लगी थी. लोगों ने यह भी आरोप लगाया कि हबीब तनवीर ने इमरजेंसी का विरोध नहीं किया. पर उन्हें अपने रंगकर्मियों की टीम की अधिक चिंता थी और रंगमंच को जीवित रखना था शायद यह कारण रहा हो कि वह इस्तीफा नहीं दे सके.

एनएसडी की पूर्व निदेशक कीर्ति जैन ने कहा कि शंभू मित्र, शांत गांधी, तनवीर साहब और दीना पाठक ये ऐसे रंगकर्मी थे जिनमें बहुत हद तक समानताएं थीं लेकिन उनके रास्ते अलग-अलग थे. वे सभी इप्टा से निकले थे. उन्होंने फिल्मों का रास्ता छोड़कर तय किया था कि उन्हें कुछ कहना है.

असगर वजाहत ने अपने चर्चित नाटक "जिसने लाहौर नहीं देख्या वो जन्मा ही नहीं" के मंचन का जिक्र करते हुए कहा कि हबीब साहब कराची में उस नाटक का मंचन करना चाहते थे लेकिन पाकिस्तान पुलिस ने उन्हें अनुमति नहीं दी. पुलिस ने तीन कारणों से नाटक को करने की अनुमति नहीं दी. पहला कारण तो यह था कि नाटककार पाकिस्तान का नहीं है. दूसरा कारण यह था कि इसमें मौलवी की हत्या दिखाई गई है जो कि इस्लाम की हत्या है. तीसरा कारण यह था इस नाटक में जो हिंदू बुढ़िया दिखाई गई है वह बहुत नेक हिंदू है और इतना नेक कोई हिंदू हो नहीं सकता है. बाद में वह नाटक जर्मन गोए थे.

असगर वजाहत ने हबीब तनवीर को नाटकों का जादूगर बताते हुए जामिया मिलिया से उनके रिश्तों का जिक्र करते हुए बताया कि किस तरह हबीब साहब ने 'आगरा बाजार' जब जामिया में किया तो खपरैल के मकान में रिहर्सल किया करते थे. 'आगरा बाजार' में जामिया के टीचरों ने भी भूमिका निभाई थी.

प्रसिद्ध रंगकर्मी एमके रैना ने हबीब साहब को जीनियस बताते हुए कहा कि हबीब तनवीर ने केवल नाटक ही नहीं किया बल्कि समाज में चल रहे विभिन्न आंदोलनों में भी भाग लिया. चाहे वह साक्षरता आंदोलन हो, विज्ञान आंदोलन या फिर आदिवासियों का आंदोलन. उन्होंने अपने समय की राजनीति में भी वैचारिक हस्तक्षेप किया.

'मैलोरंग नेपथ्य रंगसम्मान'

- दिल्ली की प्रमुख नाट्य संस्था 'मैलोरंग' (मैथिली लोक रंग, दिल्ली) हर वर्ष रंगमंच की दुनिया में विशिष्ट योगदान देने वाले रंगकर्मियों को 'नेपथ्य रंगसम्मान' नाम से सम्मानित करती है
- इस वर्ष चौथे तथा पांचवें मैलोरंग 'नेपथ्य रंगसम्मान'-2023 की घोषणा एकसाथ की गई है. रंगसमीक्षा, अनुवाद और नाट्य लेखन के क्षेत्र में योगदान देने वाले श्रीकांत किशोर तथा सुप्रसिद्ध परिधान परिकल्पक और अभिनेत्री अनिला सिंह खोसला को यह सम्मान प्रदान किया जाएगा.
- अभी तक तीन रंगकर्मियों को यह सम्मान दिया जा चुका है. पहला सम्मान हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में किए गए महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ीकरण के उपलक्ष्य में प्रो. महेश आनंद, दूसरा भारतीय रंगमंच में 'मनो-शारीरिक रंगमंच' नाम की रंगशैली की स्थापना करने वाले रंगकर्मी शशांक बहुगुणा तथा तीसरा सम्मान नौटंकी रंगशैली में लगातार काम करने वाले आतमजीत सिंह को प्रदान किया गया.

वरिष्ठ साहित्यकार सेवाराम यात्री, 91 वर्ष की आयु में ली अंतिस सांस

- सेवाराम यात्री का जन्म 10 जुलाई, 1932 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर के बरवाला में हुआ था. उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान और हिंदी साहित्य में एमए किया. तालीम हासिल करने के बाद वे शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े और मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर महाविद्यालय में अध्यापन किया. मध्य प्रदेश के बाद उन्होंने गाजियाबाद, खुर्जा सहित कई शहरों के महाविद्यालयों में हिंदी प्रवक्ता के रूप में अपनी सेवाएं दीं. सेवाराम यात्री महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से राइटर-इन-रेजीडेंस के पद से सेवानिवृत हुए.

300 से अधिक कहानियों की रचना

- सेवाराम यात्री के 5 दशकों के अपने लेखन काल में 300 से अधिक कहानियां, 40 से अधिक कहानी संग्रह, 32 उपन्यास, संस्मरण, व्यंग्य, साक्षात्कार आदि प्रकाशित हुए. उनके उपन्यासों में 'दराजों में बंद दस्तावेज', 'लौटते हुए', 'टापू पर अकेले', 'चांदनी के आर-पार', 'बीच की दरार', 'अंजान राहों का सफर', 'कई अंधेरों के पार', 'प्यासी नदी", 'एक छत के अजनबी' व 'जिप्सी स्कॉलर', कहानी संग्रह 'दूसरे चेहरे', 'अलग अलग अस्वीकार', 'काल विदूषक', 'धरातल', 'केवल पिता' व 'सिलसिला" खासे चर्चित रहे हैं.
-

यदि तुम्हें, धकेलकर गांव से बाहर कर दिया जाए... ओमप्रकाश वाल्मीकि- दलित संवेदना और सरोकार के रचनाकार

अपने शब्दों के माध्यम से उन्होंने न केवल दलितों के संघर्षपूर्ण इतिहास को बयां किया, बल्कि उनके जीवन में कदम-कदम पर खड़ी रहने वाली चुनौतियों को मार्मिक नजरिये से रचनाओं में गढ़ा. मसलन, ठाकुर का कुआं, तब तुम क्या करोगे?, वह दिन कब आएगा, वे भूखे हैं... सरीखी रचनाओं ने उन्हें दलित साहित्य में 'महान' श्रेणी में ला खड़ा किया. नौवें दशक में उभरे कवि-गद्यकार ने दलित संवेदना और सरोकारों को उल्लेखनीय रूप से प्रस्तुत किया.

1989 में प्रकाशित उनके पहले कविता संग्रह 'सदियों का संताप' ने हर किसी का ध्यान उनकी ओर खींचा. इसके बाद बस बहुत हो चुका, अब और नहीं ने भी चर्चा हासिल की. इसके अलावा 1997 में आई उनकी आत्मकथा जूठन को दलित साहित्य की अहम रचनाओं में से एक माना है. 2000 में प्रकाशित कहानी संग्रह सलाम और 2004 में प्रकाशित घुसपैठिए भी उनकी प्रमुख रचनाएं हैं.

अपनी रचनाओं के बारे में खुद ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते कि 'मेरी रचनाओं में हजारों साल की घुटन, अंधेरे में गूंजती चीत्कारें और भीषण यातनाताओं से मुक्ति होने का प्रयास ही नजर आता है'.

ठाकुर का कुआं

चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।

भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का।

बैल ठाकुर का
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी
फसल ठाकुर की।

कुआं ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या?
गांव?
शहर?
देश?

THE CORE IAS

कहानी: ठाकुर का कुआँ

1

जोखू ने लोटा मुँह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी । गंगी से बोला- यह कैसा पानी है ? मारे बास के पिया नहीं जाता । गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है !

गंगी प्रतिदिन शाम पानी भर लिया करती थी । कुआँ दूर था, बार-बार जाना मुश्किल था । कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी, आज पानी में बदबू कैसी ! लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी । जरुर कोई जानवर कुएँ में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहाँ से?

ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा ? दूर से लोग डाँट बतायेंगे । साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है, परंतु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा ? कोई तीसरा कुआँ गाँव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला- अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता । ला, थोड़ा पानी नाक बंद करके पी लूँ ।

गंगी ने पानी न दिया । खराब पानी से बीमारी बढ़ जायगी इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती हैं । बोली- यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएँ से मैं दूसरा पानी लाये देती हूँ।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा- पानी कहाँ से लायेगी ?

ठाकुर और साहू के दो कुएँ तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे?

'हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा । बैठ चुपके से । ब्रह्म-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेगें, साहूजी एक के पाँच लेंगे । गरीबों का दर्द कौन समझता है ! हम तो मर भी जाते है, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे ?'

इन शब्दों में कड़वा सत्य था । गंगी क्या जवाब देती, किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया ।

2

रात के नौ बजे थे । थके-माँदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पाँच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो अब न जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं । कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमे में रिश्वत दी और साफ निकल गये।कितनी अक्लमंदी से एक मार्के के मुकदमे की नकल ले आये । नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती । कोई पचास माँगता, कोई सौ। यहाँ बेपैसे- कौड़ी नकल उड़ा दी । काम करने ढंग चाहिए ।

इसी समय गंगी कुएँ से पानी लेने पहुँची ।

कुप्पी की धुँधली रोशनी कुएँ पर आ रही थी । गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इंतजार करने लगी। इस कुएँ का पानी सारा गाँव पीता है । किसी के लिए रोका नहीं, सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते ।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा- हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं ? यहाँ तो जितने है, एक- से-एक छँटे हैं । चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें । अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद मे मारकर खा गया । इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते है । काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है । किस-किस बात में हमसे ऊँचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे है, हम ऊँचे । कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रस-भरी आँख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊँचे हैं!

कुएँ पर किसी के आने की आहट हुई । गंगी की छाती धक-धक करने लगी । कहीं देख लें तो गजब हो जाय । एक लात भी तो नीचे न पड़े । उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये मे जा खड़ी हुई । कब इन लोगों को दया आती है किसी पर ! बेचारे महँगू को इतना मारा कि महीनो लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगार न दी थी । इस पर ये लोग ऊँचे बनते हैं ?

कुएँ पर स्त्रियाँ पानी भरने आयी थी । इनमें बात हो रही थी ।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ । घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है ।'

'हाँ, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियाँ ही तो हैं।'

'लौडिंयाँ नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं ? दस-पाँच रुपये भी छीन- झपटकर ले ही लेती हो। और लौडियाँ कैसी होती हैं!'

'मत लजाओ, दीदी! छिन-भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता ! यहाँ काम करते- करते मर जाओ; पर किसी का मुँह ही सीधा नहीं होता ।'

दोनों पानी भरकर चली गयीं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएँ की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गऐ थे । ठाकुर भी दरवाजा बंद कर अंदर आँगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की साँस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न गया हो । गंगी दबे पाँव कुएँ की जगत पर चढ़ी, विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला । दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो । अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती-भर उम्मीद नहीं । अंत मे देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएँ में डाल दिया ।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता । जरा भी आवाज न हुई । गंगी ने दो- चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे ।घड़ा कुएँ के मुँह तक आ पहुँचा । कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया । शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गयी । रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हिलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं ।

ठाकुर कौन है, कौन है ? पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी ।

घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।

कहानी का आशय

- जोखू बीमार है, और प्यास के कारण बेहाल है। गंगी कल रात जो पानी भर लायी थी, तब उसमें बांस नहीं थी। लेकिन जब दूसरे दिन जोख पानी पीने लगता है तो उसमें से सड़ी हुई बांस आती है। गंगी उसे पानी पीने से रोक देती है। उसे डर है कहीं. जोख और ज्यादा बीमार न हो जाए। वह ताज़ा पानी भर लाने की बात करती है। लेकिन जोखू उसे मना करता है कि ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा। नाहक हाथपांव तुडवा आयेगी इसलिए उसे वह चुपचाप बैठी रहने के लिए कहता है। वह जानता है कि यह असंभव है कि गंगी ठाकुर या साहू के कुएँ पर चढ़कर पानी ले आ सकती है। गंगी जिद करती है कि वह कम से कम मांगकर ही सही एक लोटा पानी ले आएगी। वह देर तक इंतजार करती है और जब सभी लोग सोने चले जाते है, ठाकुर दरवाजा बंद करके अंदर चला जाता है तो वह लपककर कुएँ पर चढ़ जाती है। एक . घड़ा पानी भी वह खींच लेती है। घड़ा जगत पर रखने ही वाली होती है कि ठाकुर का दरवाजा खुलता है। गंगी देखती है कि शेर से भी भयंकर मुंह वाला ठाकुर दरवाजे पर खड़ा है। दशहत के मारे गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और घड़ा पानी में गिरने की आवाजे सुनाई देती है। गंगी पूरी ताकत से कुंए की जगत से कुद कर भागती हुई घर पहुंचती है। वह देखती है कि जोखू लोटा मुंह को लगाए वही मैला गंदा पानी पी रहा है।

कहानी यहाँ समाप्त होती है। 'एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न छोड़ देती है, पाठकों के लिए। यह प्रेमचंद की सबसे छोटी कहानी है, लेकिन एक ज्वलंत समस्या की ओर संकेत करती है। जाति प्रथा की जकड़न उसकी अमानुषीकता और अछूतों की . दीनहीन स्थिति को उजागर करती है।

प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' का नाट्य रूपांतरण

रिंकल शर्मा पत्रकार हैं, कहानीकार, नाटककार और कवयित्री हैं. रिंकल शर्मा लेखन और रंगमंच की दुनिया में समान रूप से सक्रिय हैं. उनके कई कहानी संग्रह, कविता संग्रह और नाटक प्रकाशित हो चुके हैं. उन्होंने कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का नाट्य रूपांतरण किया है. इस कड़ी में अब तक उनके तीन संग्रह आ चुके हैं. इनमें उन्होंने प्रेमचंद की 14 कहानियों का नाट्य रूपातंरण किया है.

रिंकल शर्मा के इन तीन संग्रहों में पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, बड़े भाई सहाब, ईदगाह, नादान दोस्त, बेटी का धन, कजाकी आदि जैसी कहानियों के नाटक शामिल हैं. प्रस्तुत है इन संग्रह से प्रेमचंद की बहुत ही चर्चित कहानी 'ठाकुर का कुआं' का नाट्य रूपांतरण-

दृश्य - 1

(मंच पर पर्दा खुलता है और धीरे-धीरे प्रकाश आता है. मंच के दाहिनी ओर एक चारपाई है जिस पर जोखू (एक 35 वर्षीय बीमार आदमी, मैला-सा कुरता पहने और एक कम्मल ओढ़े) लेटा हुआ है. चारपाई के पास ही उसकी पत्नी गंगी (30 वर्षीय, पुरानी -सी साड़ी पहने) बैठी हुई, फलियां काट रही है)

जोखू - (खांसते हुए) गंगी, ये बीमारी तो लगता है मेरी जान ही लेकर रहेगी.

गंगी - ऐसा क्यों कहते हो जी, जान जाये तुम्हारे दुश्मनों की. वैद्यजी ने दवाई दी है, देखना जल्दी ही अच्छे हो जाओगे.

जोखू - (खांसते हुए) दवाई भी तो असर नहीं कर रही गंगी. कितने दिन हो गए यूं चारपाई पर पड़े हुए.

गंगी - वैद्यजी ने कहा तो था कि महीन बुखार है, धीरे-धीरे ही आराम आएगा.

जोखू - जाने कब आराम आएगा. गंगी, खेत-खलिहान सब सूखे पड़े हैं. ऐसे ही हाल रहा तो सालभर भूखों मरेंगे.

गंगी - (मुस्कुराकर) क्यों भूखों मरेंगे भला? अभी घर में इतना अनाज है कि तीन माह आराम से कट जाएंगे. और तुम कोई इतने दिनों बीमार थोड़े ही रहने वाले हो. चिंता मत करो जी. जब ठीक हो जाओगे तो दोनों मिलकर खेती करेंगे. देखना इस बार बहुत अच्छी फसल होगी.

जोखू - तुझसे बातों में भला कोई जीत सका है जो मैं जीत पाऊंगा. चल तू कहती है तो मान लेता हूं.

गंगी - बस! तो फिर मेरी बात मानो और आराम करो.

जोखू - गंगी, पूरा बदन बुखार से टूट रहा है. गला प्यास से चटक रहा है. ला, जरा एक लोटा पानी तो दे दे.

गंगी - (उठते हुए) अभी देती हूं.

(गंगी पास ही रखे एक मटके से लोटे में पानी भरकर जोखू को देती है)

गंगी - (लोटा देते हुए) लो उठो, पानी पी लो.

(जोखू पानी का एक घूंट पीते ही, मुंह से वापस निकाल देता है)

जोखू - (मुंह बिगाड़कर) अरी गंगी! ये पानी है या जहर? कैसा पानी है ये? मारे बास के पीया ही नहीं जाता. गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है.

गंगी - (चौंककर) सड़ा पानी!

जोखू - और नहीं तो क्या, देख! तू ही सूंघकर.

गंगी - (लोटे का पानी सूंघकर) उफ्फ! इसमें तो सचमुच बहुत बास आ रही है.

जोखू - तो मैं क्या झूठ कहता था. जाने कितना पुराना पानी है?

गंगी - पुराना पानी लेकिन मैं तो कल शाम को ही पानी भरकर लाई हूं. कुआं इतनी दूर है कि बार-बार जाना मुश्किल होता है. इसलिए रोज शाम को पानी भर लाती हूं.

जोखू- जरूर पानी के मटके में कुछ गिरा होगा.

गंगी - (सोचकर) पर कल तो पानी में बिल्कुल भी बास न थी फिर आज पानी में बू कैसी? हां, तुम सही कहते हो, जरूर मटके में कोई जानवर मर गया होगा.

जोखू - तो देख जल्दी.

गंगी - (मटके के अंदर देखकर) मटका तो बिल्कुल साफ दिखाई दे रहा है. जरूर कुंए में कुछ गिरा होगा? शायद कोई जानवर मर गया होगा.

जोखू - तो, तू दूसरा पानी भर ला. बड़ी प्यास लगी है.

गंगी - दूसरा पानी कहां से आवे? कुंए का पानी तो गंदा ही होगा न.

जोखू - (कुछ सोचकर) तो फिर तू ऐसा कर, यही पानी दे दे. ला, थोड़ा पानी नाक बंद करके पी लूं. अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता है.

गंगी - (लोटा पीछे करते हुए) न, यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन-सा जानवर मरा है?

जोखू - अच्छा! तो ऐसा कर पानी थोड़ा उबाल करके दे दे.

गंगी - न! उबाल देने से भला कौन-सा पानी की खराबी कम हो जावेगी? खराब पानी पीन से बीमारी और बढ़ जाती है. मैं कुएं से दूसरा पानी लाए देती हूं.

जोखू - (आश्चर्य से) अभी तो बोली कि कुएं का पानी तो गंदा होगा. फिर दूसरा पानी कहां से लायेगी?

गंगी - अरे! हमारे कुएं का पानी गंदा है मगर ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं, वहां से ले आऊंगी. क्या एक लोटा पानी भी न भरने देंगे?

जोखू - (माथा पीटते हुए) अरी! हाथ-पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा. बैठ चुपके से. ब्रह्मदेवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे. गरीबों का दर्द कौन समझता है. हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुवार पर झांकने नहीं आता, कन्धा देना तो बड़ी बात है. ऐसे लोग तुझे कुएं से पानी भरने देंगे?

गंगी - बात तो सही है. लेकिन फिर भी मैं ये बदबू वाला पानी न पीने दूंगी. कहीं से भी हो, पानी लेकर ही आऊंगी.

जोखू - (निराश होकर) तू बड़ी जिद्दी है गंगी. जा कर ले अपने मन की, लौटकर मुझे न कहना. अपनी हड्डियां तुड़वाकर ही दम लेगी.

गंगी - तुम मेरी फिकर न करो. आराम करो. मैं जाती हूं पानी लेने.

(गंगी मटका उठाकर चली जाती है. मंच पर प्रकाश कम हो जाता है)

दृश्य - 2

(मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश आता है. एक औरत (करीब 30 वर्षीया, साड़ी पहने, अपने दो छोटे-छोटे बच्चों के साथ बैठी है. तभी गंगी वहां आती है.)

सुशीला - (अपने बेटे से) ये ले मुन्ना, ले रोटी खा. मेरा राजा बेटा.
बच्चा - अम्मा, पानी पीना है.
सुशीला - पानी बाद में, पहले ले रोटी खा. फिर अम्मा, अच्छा-अच्छा दूध देगी. ले खा.
(गंगी का आगमन)
गंगी - (हाथ में मटका लिये) बहन कैसी हो?
सुशीला - अरे गंगी, आओ-आओ. कहो कैसे आना हुआ?
गंगी - बहन तुम तो जानती ही हो, इनको कई दिनों से बहुत बुखार है. चारपाई से उठते ही नहीं बनता है.
सुशीला - बुखार तो अच्छे-अच्छों का बदन तोड़कर रख देता है.
गंगी - सही कहा बहन.
सुशीला - वैद्यजी से दवाई नहीं ली क्या?
गंगी - वैद्यजी ने दवाई दी है और कहा है कुछ दिनों में अच्छे हो जाएंगे. मगर बुखार उतरने का नाम ही नहीं ले रहा.
सुशीला - चिंता मत करो. यदि वैद्यजी ने कहा है तो जल्दी ही अच्छे हो जाएंगे.
गंगी - वो तो है लेकिन एक तो बुखार से बदन तप रहा है, वो बेचारे प्यास से तड़प रहे हैं और ऊपर से ये मुसीबत कि घर में एक बूंद पानी की नहीं है.
सुशीला - हर घर का यही हाल है गंगी. कहीं भी पानी नहीं है. हम लोगों के लिए एक ही तो कुआं है, उसमें भी जानवर मरा पड़ा है.
गंगी - लेकिन कुएं में जानवर मरा कैसे?
सुशीला - सुना है ठाकुर का कोई बैल मर गया था. सो उसने वो मरा बैल हमारे कुएं में डलवाया है.
गंगी - हायराम! मरा जानवर कुएं में डलवा दिया, ठाकुर की मति भ्रष्ट हो गयी है क्या? यदि कुएं में डालना ही था तो अपने कुएं में डलवाता.
सुशीला - अरी बहन, ये सब ठाकुर ने जान-बूझकर किया है.
गंगी - जान-बूझकर! लेकिन क्यों?
सुशीला - उसने, ये सब हम लोगों से बदला लेने के लिए किया है.
गंगी - (चौंकते हुए) बदला, कैसा बदला? हमने ठाकुर का भला क्या बिगाड़ा?
सुशीला - तुम्हें याद नहीं, महंगू ने ठाकुर के यहां बेगारी करने से मना कर दिया था. और सभी गांववालों ने उसका साथ दिया.
गंगी - हां, तो क्या गलत किया था भला? हम्म, मजदूर इनके खेतों में काम करें, अपना खून-पसीना बहाएं और बदले में मजदूरी भी न लें, बेगारी करें और दाना-पानी तक को तरसे. ये कैसा इन्साफ हुआ?
सुशीला- इन्साफ की बात इन ठाकुरों को भला कभी समझ आई है? ठाकुर को लगता है कि हम सब उससे बगावत कर रहे हैं. बस इसी बात का बदला ले रहा है अब वो हमसे.
गंगी - हे भगवान! बदले की आग में पूरे कुएं का पानी जहर कर दिया. क्या इन लोगों को जरा भी दया नहीं आती?
सुशीला - इन लोगों को भला कब दया आई है किसी पर. देखा नहीं, बेचारे महंगू को ठाकुर के लठैतों ने इतना मारा था कि महीनों लहू थूकता रहा.
गंगी - हम्म! मुफत में काम करा लेते हैं और मजूरी देते इनकी नानी मरती है. अच्छा हुआ जो हमारे आदमियों ने इन लोगों के यहां मुफत में काम करना बंद कर दिया.

सुशीला - पर उससे क्या भला हुआ? आज पूरा गांव पानी की एक बूंद के लिए तरस रहा है. गंगी, ये ऊंचे लोग हैं, इनसे भला हम नीच जाति के लोग कैसे जीत सकते हैं?

गंगी - (गुस्से से) किस बात के ऊंचे लोग? हम लोग क्यूं नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं? सिर्फ इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक-से-एक छटे हैं. चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकद्दमे ये करें. अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया. इन्हीं पंडित के घर में तो बारह मास जुआ होता है. और यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं. फिर किस-किस बात में ये हमसे ऊंचे हैं? अरे हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे. कभी गांव में आ जाती हूं, तो रस-भरी आंख से देखने लगते हैं. ऐसा लगता है जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु फिर भी घमंड यह है कि हम ऊंचे हैं.

सुशीला - बात तो तुम्हारी सही है गंगी, मगर हम कर भी क्या कर सकते हैं. सदियों से ऐसा ही होता चला आया है.

गंगी - (उदास होकर) सदियों ऐसा होता आया है क्या आगे भी ऐसा ही होता रहेगा?

सुशीला - (गहरी सांस लेकर) क्या जाने बहन? ये सब तो ऊपरवाला ही जाने.

गंगी - ऊपर वाले ने भी अजब खेल-खेला है हम गरीबों के साथ. किसी को सब कुछ दिया है और किसी को एक बूंद पानी को भी तरसा दिया है.

सुशीला - गंगी, उदास न हो, जी छोटा न करो. ईश्वर ने चाहा तो सब ठीक हो जाएगा.

गंगी - बहन क्या तुम्हारे यहां एक लोटा पानी होगा? इनको दवाई खाने को देनी है.

सुशीला - गंगी, पानी होता तो जरूर दे देती. यकीन मानो, घर में एक बूंद पानी नहीं है. पर मैं थोड़ा दूध दिए देती हूं. जोखू भाई को पिला देना. कुछ तो राहत मिल ही जाएगी.

(सुशीला एक लोटे में थोड़ा दूध लेकर आती है)

सुशीला - गंगी ये लो.

गंगी - (लोटा लेते हुए) धन्यवाद बहन.

(तभी सुशीला का लड़का, सुशीला का आंचल पकड़कर बोलता है)

लड़का - अम्मा, भूख लगी है, दूध दो न.

सुशीला - (सकुचाकर) दूध अभी नहीं, अभी रोटी खाओ.

गंगी - (नम आंखों से, दूध वापस करते हुए) बहन, तुम मुन्ने को दूध पिलाओ, मैं कहीं और जाकर देखती हूं, शायद कहीं पानी मिल जाए.

सुशीला - कहां जाओगी गंगी, सभी घरों का तो एक जैसा हाल है.

गंगी - कहीं न मिला तो ठाकुर के कुएं से भरके लाऊंगी.

सुशीला - (घबराकर) ठाकुर के कुएं से! ठाकुर बड़ा निर्दयी है. वो तो पानी को देखने तक न देगा.

गंगी - न दिया, तो चोरी से लाऊंगी.

सुशीला - (घबराकर) गंगी, क्यों अपनी जान जोखिम में डालती हो? ठाकुर ने देख लिया तो हड्डी-पसली एक कर देगा.

गंगी - तो कर दे. प्यास से तिल-तिल मरने से तो अच्छा है कि एक दम प्राण निकल जाएं. (रोते हुए) मुझसे इनका दुःख अब देखा नहीं जा रहा. बेचारे, सवेरे से प्यास से तड़प रहे हैं. सड़ा हुआ पानी भी पीने को तैयार थे. मगर मैं, उनको वो जहर कभी न पीने दूंगी. अब जो भी हो जाए, कहीं से भी हो, पानी लाकर ही रहूंगी. भले मेरी जान ही क्यों न चली जाए..

(गंगी चली जाती है. मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश कम हो जाता है)

दृश्य - 3

(मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश आता है. शाम का समय है, मंच पर बाईं ओर एक मूढ़ा और दो चारपाई पड़ी हैं. ठाकुर मूढ़े पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा है. चारपाई पर एक पंडित और एक साहू बैठा है. और आसपास चार हट्टे-कट्टे लठैत खड़े हैं.)

ठाकुर - कान खोलकर सुन लो तुम सब, इन नीच जाति वालों में से किसी को भी कुएं के पास फटकने न देना.

भीखू - आप फिकर न करें सरकार, किसी की मजाल है जो कुएं से एक बूंद पानी भी ले जाए.

ठाकुर - शाबाश! (मूंछों पर ताव देकर) मुझसे बगावत करने चले हैं. जब तक बिना मजूरी काम करने को न तैयार हो जाएं तब तक एक बूंद पानी न देना. जब प्यास से मरेंगे तभी इन लोगों की अकल ठिकाने आएगी.

साहू - (हँसते हुए) ठाकुर साहब, वो समय अब ज्यादा दूर नहीं है.

पंडित - सही कहा साहू जी. पूरे गांव में त्राहिमाम मचा हुआ है.

ठाकुर - (ठहाका लगाकर) हा..हा... एक बात का और ध्यान रखना, कोई भी मजदूर, इन नीच जात के कुएं को साफ न करने पाए, वरना सारे किये-कराये पे पानी फिर जाएगा.

हीरा - जी सरकार. दो आदमी उस कुएं पर तैनात कर दिए हैं.

(बाहर से एक नौकर (धनिया) आता है)

धनिया - सरकार, जोखू की घरवाली आई है, पानी मांगने.

ठाकुर - बाहर से ही भेज दे. अन्दर मत आने देना.

धनिया - वो मानती नहीं सरकार, कहती है कि आपसे मिले बिना न जाएगी.

ठाकुर - (हुक्का गुड़गुड़ाकर) अच्छा, भेज तो अंदर.

धनिया - जी मालिक.

(धनिया चला जाता है, गंगी मटका लिए आती है)

गंगी - (झुककर) प्रणाम सरकार.

ठाकुर - (अकड़कर) अरी गंगी, तेरी हिम्मत कैसे हुई यहां पानी मांगने आने की?

गंगी - सरकार, इन्हें बहुत तेज बुखार है. सवेरे से प्यास से तड़प रहे हैं. बदन भट्टी-सा तप रहा है. आपके कुएं से थोड़ा पानी मिल जाता तो अच्छा रहता.

ठाकुर - (गुस्से से खड़े होकर) यहां क्या खैरातीखाना समझ रखा है? जो चली आई मुंह उठाकर.

गंगी - ऐसा न कहिये सरकार, आप न देंगे तो और कौन देगा?

ठाकुर - ये बात तब नहीं सोची जब तेरे मरद ने मजूरी करने से मना किया था.

गंगी - लेकिन सरकार वो तो बिना मजूरी के काम करने से मना किया था. मजूरी न मिले तो मजदूर का घर कैसे चले?

ठाकुर - चुपकर! हमसे जबान लड़ाती है.

गंगी - नहीं सरकार, गलती हो गयी, माफ कर दीजिये.

ठाकुर - बड़े ही धूर्त हो तुम लोग,अपनी गरज पड़ती है तो जब मरजी मुंह उठाये मांगने चले आते हो. हम जरा-सा मजूरी करने को कहें तो उल्टा आंखें दिखाते हो. करम किये हैं तो अब भुगतो.

गंगी - दया कीजिये मालिक! थोड़ा-सा पानी दे दीजिये. पानी न मिला तो वो प्यास से मर जाएंगे.

ठाकुर - मरता है तो मरे. पानी की एक बूंद भी न मिलेगी. चल भाग यहां से.

(कहकर, ठाकुर उठकर अन्दर चला जाता है, गंगी रोते हुए बोलती है)
गंगी - सरकार! सरकार! रहम करिये, एक मटका पानी दे दीजिये बस.
(गंगी रोने लगती है, तभी पंडित गंगी के पास उठकर आता है)
पंडित - अरी गंगी, तू क्यूं रो रही है. मेरे पास आ जाती, एक मटका क्या, पूरा कुआं ही दे देता.
गंगी - (खुश होकर) सच पंडित जी, मुझे बस एक मटका पानी दे दीजिये, आपका एहसान होगा..
पंडित - (गंगी को ऊपर से नीचे तक देखते हुए) पानी तो मैं तुझे दे दूंगा, मगर पानी के बदले मुझे क्या मिलेगा?
गंगी - पंडित जी, आप तो ज्ञानी हैं, सब जानते हैं. मैं, गरीब भला आपको क्या दे पाऊंगी?
पंडित - अरी गंगी, तू कहां से गरीब है? तेरे पास तो रूप की ढेर सारी दौलत है, बस, वही दे देना थोड़ी सी.
(गंगी अपन आंचल संभालते हुए पंडित जी से दूर हट जाती है)
साहू - (हँसते हुए) गंगी, पानी तो मेरे कुएं में भी बहुत है. अपनी इस दौलत के दो-चार छींटे मुझ पर भी मार देना गंगी.
गंगी - (क्रोधित होकर) शरम आनी चाहिए आप लोगों को. एक गरीब की लाचारी का फायदा उठाना चाहते हो. तुम्हें तो नरक में भी जगह न मिलेगी.
पंडित - नरक की चिंता तू मत कर, वो हम देख लेंगे. तू तो बस हमारी बात मान ले.
गंगी - नहीं, कभी नहीं.
(सभी जोर से ठहाका मारकर हँसते हैं. गंगी वहां से रोती हुई चली जाती है. मंच पर प्रकाश कम हो जाता है.)

दृश्य -4
(मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश आता है. शाम का समय है. मंच के दाहिनी ओर ठाकुर के चार-पांच आदमी पहरे पर हैं. सभी बैठे हुए गप्पे लड़ा रहे हैं. मंच के बाईं ओर एक कुआं है जहां गंगी अपनी मटकी लेकर खड़ी है. मंच के बाईं ओर स्पॉट लाइट पड़ती है.)

गंगी - (अपनेआप से) शाम ढल गयी है लेकिन अभी तक पानी की एक बूंद न मिली है. न जाने प्यास से उनका क्या हाल हो रहा होगा? क्या करूं पानी भर लूं? मगर किसी ने देख लिया तो? ऐसा करती हूं एक बार देख लेती हूं. कोई आसपास है तो नहीं. (चारों ओर देखकर) अरे नहीं, अभी तो पहरेदार बैठे हैं. देख लिया तो मेरी जान ही ले लेंगे. ऐसा करती हूं थोड़ी देर और रुक जाती हूं. थोड़ा अंधेरा और हो जाए तभी चुपचाप से भर लूंगी. हां, यही ठीक रहेगा.
(ऐसा सोचकर गंगी कुएं के पास के पेड़ों में छिप जाती है. मंच के दाहिनी ओर स्पॉटलाइट पड़ती है)
भीखू - क्यों भैया, क्या बखत हुआ होगा?
,
हीरा - बजा होगा यही कोई आठ या नौ. (हँसते हुए) क्यों तुम्हें कोई रेलगाड़ी पकडनी है क्या?
भीखू - रेलगाड़ी नहीं पकड़नी, बस यूं ही समय पूछा. आज तो सारे गांव में तो सांझ होते ही सन्नाटा पसर गया है.
हरिया - सन्नाटा तो पसरेगा ही, आज नीच जात के यहां पानी जो नहीं. जब पानी ही न होगा तो चूल्हा कहां से जला होगा.
हीरा - (दुखी होकर) हां भैया, सही कहते हो. आज तो बेचारे बिना पानी के तड़प रहे होंगे.
भीखू - अरे भैया, तो कौन कहे था उनको, ठाकुर साहब से बैर लेने को? अब करम किए हैं तो भुगतने तो पड़ेंगे.

हरिया - सौ टका सही कहा भैया. ठाकुर साहब कौन-सा बिल्कुल ही मुफत में मजूरी करवाते? साल में एक कम्मल और रोज़ का जौ तो खाने को देते ही.
हीरा - लेकिन एक कम्मल और थोड़े से जौ से भला मजदूर का घर कैसे चलता? बाल-बच्चे तो भूखे मरते न.
भीखू - अरे वो भी मजदूरी कर लेते. ठाकुर साहब के इतने खेत-खलिहान हैं, काम की कोई कमी थोड़े ही है?
हरिया - सही कह रहे हो भैया. मजदूरों के बाल-बच्चों को कौन-सा बड़े होकर कलेक्टर बनना है?
(सब ठहाका लगते हैं)
भीखू - इन नीच जात वालों ने ठाकुर सहाब से बैर लेकर अपने पैर पे खुद ही कुल्हाड़ी मारी है.
हरिया - बिल्कुल सही कह रहे हो भीखू. अरे, ठाकुर साहब से बैर कोई मामूली बात थोड़े ही है. अब कल की बात ही देख लो, कैसे ठाकुर साहब ने कचहरी में पूरा मुकदमा ही बदलवा दिया. क्यों रे धनिया तू तो था वहां? जरा बता तो .
धनिया - सही कहा भैया! कल कचहरी में एक खास मुकदमे में ठाकुर साहब ने थानेदार को ऐसी रिश्वत दी कि पूरे मामले से साफ निकल गए. नाज़िर और मोहतमिम, सभी कहते थे कि नकल नहीं मिल सकती. अरे कोई-कोई तो नकल के पचास मांगता था, तो कोई सौ..
भीखू - फिर क्या हुआ?
धनिया - फिर क्या? ठाकुर साहब ने बेपैसे-कौड़ी नकल उड़ा दी. ठाकुर साहब ने बड़ी ही अकलमंदी से काम लिया और एक मार्के के मुक़दमे की नकल ले आये. फिर तो जज साहब को मानना पड़ा और ठाकुर साहब बाइज्ज़त बरी.
भीखू - (हँसकर) जो भी ठाकुर साहब की अकल का कोई सानी नहीं. अब इन नीच जात वालों को सबक सिखाने के लिए ही देख लो, ठाकुर साहब ने क्या गजब तरकीब निकाली है.
हरिया - सच कहा भैया! न कोई झगड़ा-जंजाल न कोई मुकदमा. कुएं में मरा जानवर डलवाकर, सबको प्यासा मरने को मजबूर कर दिया.
भीखू - ठाकुर साहब ने तो कुएं पर आदमी भी खड़े करवा दिए ताकि कोई कुआं साफ न कर सके.
हरिया - हां, पंडित जी और साहू जी को भी हिदायत दे डाली है कि किसी को पानी न दें.
धनिया - हां, अब जब प्यास से मरेंगे तो खुद ही मजूरी करने को तैयार हो जाएंगे.
भीखू - (ठहाका मारकर) और वो भी कौड़ी की मजूरी पर.
(सभी जोर से ठहाका मारकर हँसते हैं.)
(तभी कुएं की तरफ से कुछ आवाज आती है)
हीरा - अरे भैया, ये आवाज कैसी?
भीखू - कोई जानवर होगा.
हीरा - इतनी रात को भला कोई जानवर कुएं पर क्यूं आएगा?
हरिया - लगता है कोई कुएं से पानी भरने आया है?
हीरा - जरा देखो तो कोई नीच जात का तो नहीं?
भीखू - नीच जात का हो तो, सीधे लट्ठ बजा देना.
धनिया - अभी देखता हूं.
हरिया - तुम ठहरो! मैं देखता हूं.
(हरिया जोर से आवाज़ लगाता है)
हरिया - कौन है? अरे कौन है वहां कुएं पर?
(स्पॉट लाइट मंच के बाईं ओर पड़ती है, जहां तीन औरतें मटका लिए, कुएं के पास खड़ी हैं)

THE CORE IAS

एक औरत - हम हैं मिशराइन, पानी लेने आई हैं.
(मंच के दायीं ओर से आवाज़ आती है)
हरिया - अच्छा! ठीक
(औरतें कुएं से पानी भरने लगती हैं)
एक औरत - इतनी रात गए, कुएं से पानी भरने आओ.
दूसरी औरत - सच कहा! बड़ी मुसीबत है.
पहली औरत - अरी बहन, तुम्हारा घड़ा तो चटक रहा है?
दूसरी औरत - अब क्या बताऊं? खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ. घड़े के लिए पैसे नहीं और नखरे नवाबों वाले.
तीसरी औरत - हम लोगों को आराम से बैठे देखकर तो जैसे मरदों को जलन होती है.
दूसरी औरत - सही कहा बहन, सारा दिन घर के कामों और बच्चों में खपो, उसके बाद रात को इन मरदों के नखरे सहो. हम भी तो थक जाती हैं.
तीसरी औरत - हां देखो, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते. बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियां हों इनकी.
पहली औरत - लौंडियां नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं? दस-पांच रुपये भी छीन-झपटकर ले ही लेती हो. और लौंडियां कैसी होतीं हैं.
दूसरी औरत - जी मत जलाओ दीदी! छिन-भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है. इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती. ऊपर से वह एहसान भी मानता.
तीसरी औरत - (हँसकर) लौंडियां भी हमसे ज्यादा सुख पातीं हैं. कम-से-कम रात को कुएं से पानी तो नहीं भरती होंगी.
दूसरी औरत - हां, यहां तो काम करते-करते मर जाओ, पर किसी का मुंह ही सीधा नहीं होता.
पहली औरत - अरी, दुनिया में कहीं चली जाती, सब जगह ऐसे ही रोती रहती. ये मरद जात, सब जगह एक जैसी ही होती है. औरतों को बांदी समझते हैं अपनी.
दूसरी औरत - सच कहा! हमारी किस्मत ही ऐसी है.
पहली औरत - अब चलो, बातें ही करती रहोगी या पानी लेकर भी चलोगी. समय से न पहुंचे तो फिर सुनने को मिलेगा .
दोनों औरतें - हां-हां. चलो जल्दी चलो!
(तीनों औरतें चली जातीं हैं. तभी गंगी अपना घड़ा लिए आती है.)
गंगी - (इधर-उधर देखकर) हां, ये सही समय है. अभी कोई नहीं है. जल्दी से पानी भर लेती हूं. वैसे भी अब तो इतना अंधेरा है कि किसी को कुछ नजर नहीं आएगा. अब तो शायद पहरेदार भी सो गए होंगे. शुकर है भगवान का किसी तरह मैदान तो साफ हुआ. इतनी सावधानी और इतना जोखिम तो शायद उस राजकुमार को भी न उठाना पड़ा होगा, जो किसी जमाने में अमृत चुराने गया था. चलो, देर से सही, अब कम से कम पानी तो मिल ही जाएगा.
(गंगी कुएं से मटका भरती है कि तभी पानी की आवाज से हलचल होती है. ठाकुर उधर अपने कमरे से बाहर आता है. स्पॉट लाइट मंच के दाहिनी ओर भी पड़ती है.)
ठाकुर - अरे भीखू, कुएं पर से ये आवाज कैसी?
भीखू - मालिक, ऊंच जात की कुछ औरतें पानी भरने आई हैं.
ठाकुर - तुझे कैसे पता?

भीखू - हरिया ने आवाज़ देकर पूछा मालिक.
ठाकुर - आवाज से कैसे पहचाना कि ऊंच जात की ही हैं?
भीखू - (घबराकर) आवाज से मालिक... वो.. ए हरिया तू कुछ क्यूं नहीं बोलता?
हरिया - मालिक, एक औरत ने बताया कि वो मिशराइन है.
ठाकुर - (गुस्से से) सब के सब कामचोर हो. उसने कहा और तुमने मान लिया. अरे कोई नीच जात की औरत हुई तो?
हरिया - हां, हो भी सकती है मालिक.
ठाकुर - अगर नीच जात वालों को ऐसे पानी मिल गया तो मेरे सब किये-कराये पर पानी फिर जाएगा.
हरिया - ये तो सोचा नहीं मालिक.
ठाकुर - तो अब सोचो. ऐ भीखू! जा तू देखकर आ. कौन है वहां?
भीखू - जी मालिक. अभी देखकर आता हूं.
ठाकुर - रुक! मैं भी आता हूं. मैं भी देखता हूं, कौन है वहां?
(ठाकुर, भीखू के साथ अपना लट्ठ लेकर देखने जाता है. उधर गंगी को किसी के आने की आहट सुनाई देती है तो वो घबरा जाती है.)
गंगी - हे भगवान! लगता है ठाकुर और उसके आदमी इधर ही आ रहे हैं. अगर ठाकुर ने मुझे यहां पकड़ लिया तो मेरी मृत्यु निश्चित है. हे भगवान्, अप ही रक्षा करो.
ठाकुर - कौन है? कौन है वहां?
(ठाकुर की आवाज सुनकर गंगी और घबरा जाती है और उसके हाथ से मटका छूट जाता है. वो वहां से भाग जाती है.)
(मंच पर प्रकाश कम हो जाता है.)

दृश्य - 5
(मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश आता है. जोखू अपनी चारपाई पर बेबस बैठा, गंगी का इंतज़ार कर रहा है)
जोखू - (बाहर की तरफ झांकते हुए) न जाने गंगी कहां चली गई? दोपहर की गई है. अब तो रात भी होने को आई. कहीं ऐसा न हो किसी मुसीबत में पड़ गई हो. मैंने तो कितना मना किया था, लेकिन बड़ी हठी है. मानती ही न थी तो मैं क्या करता? एक तो ये बुखार और दूसरा प्यास से चटकता गला? कुछ समझ नहीं आता करूं तो क्या करूं? (कुछ सोचकर) ऐसा करता हूं नाक बंद करके थोड़ा-सा पानी पी लेता हूं. हां, यही ठीक होगा, थोड़ी शांति तो मिलेगी. (उठकर जाता है, फिर रुक जाता है) नहीं-नहीं, मैं ये क्या करने जा रहा हूं? बेचारी गंगी, मेरे लिए ही तो पानी लेने गई है. दोपहर से बेचारी यहां-वहां भटक रही होगी. मगर मैं जानता हूं कि वो कहीं-न-कहीं से पानी लेकर ही आएगी. यदि वो पानी ले आई तो नाहक नाराज होगी कि मैंने उसका इंतज़ार भी न किया और गंदा पानी पी लिया. आखिर ऐसी भी क्या आफ़त आ गई थी जो रुक न सका? हां, गंगी का इंतज़ार करता हूं. यही ठीक होगा. जब वो आएगी तब ही पानी पियूंगा.
(गंगी घबराई हुई आती है और चारपाई के पास बैठकर रोने लगती है.)
जोखू - गंगी तू आ गई. पानी ले आई? बता न पानी ले आई? ला जल्दी से पानी पिला दे. देख मेरा गला सूखा जा रहा है. ऐसा लगता है कि प्राण तन से निकले जा रहे हैं. (परेशान होकर) अरी! तू कुछ बोलती क्यूं नहीं? बता न क्या हुआ?
गंगी - (रोते हुए) पानी नहीं मिला.

जोखू - पानी नहीं मिला? तो अब तक तू कहां थी? दोपहर की गई हुई अब आई है और कहती है कि पानी नहीं मिला?

गंगी - (रोते हुए) हां, पानी नहीं मिला. पूरा गांव छान मारा, किसी के यहां भी बूंद पानी नहीं मिला. फिर सोचा कि अंधेरा हो जाए तो ठाकुर के कुएं से चुपचाप पानी ले आऊंगी. वहां पानी लेने गई तो ठाकुर के द्वार पर पहरेदार बैठे थे. किसी तरह मौका पाकर कुएं के पास गई. चारों तरफ नज़र दौड़ा कर देखा तो आसपास कोई न था. घड़े में रस्सी का फंदा डालकर, कुएं से पानी निकाला ही था कि फूटी किस्मत! न जाने कहां से काल मंडराकर आ गया. ठाकुर और उसके पहरेदारों की आवाजें आने लगीं. मेरा तो कलेजा मुंह को आ गया. मटकी वहीं छोड़कर, बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भागी. अगर भागी न होती तो आज ठाकुर के हत्थे चढ़ जाती. फिर माफी या रियायत की कोई उम्मीद न होती, सीधा जान से मार डालता.

जोखू - (चारपाई से उठते हुए) मैंने तो पहले ही मना किया था, पर तू ही जिद पे अड़ी थी. देख लिया अंजाम.

गंगी - (रोते हुए) तो क्या करती, अपने सामने तुम्हें और बच्चों को ये जहर पीते मरते हुए भी तो न देख सकती थी. मुझे माफ कर दो. मैं तुम्हारे लिए पानी नहीं पायी. हे भगवान्! मैं क्या करूं? हमारी किस्मत ही फूटी है. हम लोगों की किस्मत में तो दो घूंट पानी भी नहीं है. पता नहीं भगवान सिर्फ इन ऊंची जात वालों की ही क्यूं सुनता है. हम नीच जात वालों को जन्म तो दे देता है इस धरती पर, लेकिन कीड़े-मकोड़ों की तरह मरने को छोड़ देता है. दाना-पानी तक को हमें इन अमीरों के तलवे चाटने पड़ते हैं. उस ठाकुर ने बेगारी न करने की इतनी बड़ी सजा दी कि हमारे कुएं में मरा जानवर डलवा दिया. जब पानी मांगने उनके द्वार पर गई तो जानवर की तरह मुझ पर टूटना चाहते थे. समझ नहीं आता कि ये ऊंची जाति के लोग इतने निर्दयी क्यूं हैं भला? क्या हो जाता यदि हम लोगों को थोडा-सा पानी दे देते तो. ईश्वर ने तो हवा-पानी सबके लिए बराबर दिया है. फिर ये ऊंच-नीच इनसान भला क्यूं करता है? क्यूं हम जैसे लाचारों की सुनने वाला कोई नहीं है? बताओ न, आखिर हमने किसी का क्या बिगाड़ा है?

(अपनी बात कहते-कहते रोती हुई गंगी जब पीछे मुड़कर देखती है तो स्तब्ध रह जाती है. जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है. वो फूट-फूटकर रोने लगती है.)

(मंच पर प्रकाश कम हो जाता है)

(समाप्त)

THE CORE IAS

केरल में लहलहाती हिंदी की पताका- अनामिका अनु

दक्षिण भारत के जिन राज्यों में सर्वाधिक हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार संभव हो सका है उन राज्यों में केरल अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है. केरल के सभी स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है. केरल के सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन और शोध-कार्य लंबे समय से हो रहा है. केरल के लोगों ने न केवल हिंदी भाषा साहित्य में योगदान दिया है बल्कि भाषा के विकास के लिए गहन शोध को भी बढ़ावा दिया है.

17-18वीं शताब्दियों में दक्खिनी-हिंदी भाषी नवाबों के संपर्क में आकर तिरुवितांकुर में दक्खिनी हिंदी का प्रचलन बढ़ा. केरल के उत्तर में हैदर अली और टीपू सुल्तान के आक्रमणों ने मालाबार में हिंदी का प्रचलन बढ़ाया. तीर्थयात्री, पर्यटक, व्यापारी और शासकों के आवागमन से भी केरल में हिंदी का प्रसार हुआ.

18वीं शताब्दी के कवि कुंचन नम्पियार अपने तुल्लल-काव्य के लिए प्रसिद्ध थे. तुल्लल-काव्य में पुराण की कथाएं थीं जिनका अभिनय और नृत्य के द्वारा प्रस्तुतिकरण किया जाता था. ये हास्य रस से परिपूर्ण होता था. कंचन नम्पियार ने स्यमन्तक कथा लिखी है. इसमें ब्राह्मण-भोज का प्रसंग है. इस ब्राह्मण-भोज के दौरान काशी से आए गोसाइयों के संवाद में हिंदी के शब्द देखने को मिल जाते हैं.

गर्भश्रीमान् स्वाति तिरूनाल रामवर्मा (1813-1849) ने अपनी त्रावणकोर रियासत में प्रथम अंग्रेजी हाईस्कूल (1834) और प्रथम सार्वजनिक पुस्तकालय (1936) की स्थापना की थी. उन्हें मलयालम, संस्कृत, अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था. उन्हें तेलुगू, कन्नड़, मराठी और हिंदुस्तानी (हिंदी) की भी समझ थी. राजमहल में नियुक्त फारसीदां दक्खिनी विद्वानों और मेरूगोस्वामी (अनन्तपद्मनाभ गोस्वामी महाराज) के संसर्ग में उन्होंने हिन्दुस्तानी की अच्छी समझ विकसित कर ली थी. ब्रजभाषा से प्रभावित दक्खिनी का इस्तेमाल उन्होंने अपने कुछ गीतों में किया है. स्वाति तिरूनाल रामवर्मा द्वारा रचित 47 हिंदी गीत अब तक खोजे जा चुके हैं.

केरल में हिंदी के ध्वजवाहक

- मगर केरल में हिंदी के वास्तविक विकास की पृष्ठभूमि हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में लिखी गयी. आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन (1918) के अध्यक्षीय भाषण में महात्मा गांधी ने दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जो बातें कहीं उन्होंने दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार की अलख जला दी. हिन्दीतर राज्यों में हिंदी के प्रचार का गांधी का आह्वान लोगों के लिए हिंदी सीखने की प्रेरणा बन गया.
- कोट्टयम के कुडमालूर गांव में जन्मे और पट्टांबि के प्रसिद्ध संस्कृत कॉलेज में पढ़े एम. के. दामोदरन उण्णि ने गांधीजी की प्रेरणा से केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार की बीड़ा उठाया. वह केरल में हिंदी के पहले प्रचारक बने. उन्होंने शहर से गांव तक हिंदी ले जाने के लिए सतत प्रयास किए. देवदूत विद्यार्थी ने उनकी इस काम में मदद की. देवदूत विद्यार्थी मूलत: बिहार के थे. उन्होंने केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया. उनका विवाह भी केरल में ही हुआ. उनकी पत्नी का नाम भारती विद्यार्थी था जो स्वयं हिंदी की विदुषी थीं.

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के दौरान स्कूल, कॉलेज, आश्रमों ने बहुत सहयोग दिया. पालघाट का शबरी आश्रम और कालीकट का गणपति हाईस्कूल भी वे जगहें थीं जहां बैठकर हिंदी प्रचारकों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार की योजना बनाई.

हिंदी प्रचार के दौर में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद जैसे बड़े स्वतंत्रता सेनानियों का केरल में आकर प्रोत्साहन देना हिंदी प्रचारकों की हौसला-अफजाई का कारण बना. हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, इलाचंद्र जोशी, गंगाप्रसाद पांडेय, नंददुलारे वाजपेयी, विष्णुकांत शास्त्री, उपेंद्रनाथ अश्क आदि कई विद्वानों ने केरल में आकर हिंदी के प्रचार-प्रसार को नई गति और सम्मान प्रदान किया.

केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रचारकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है. चाहे वह एम. के. दामोदरन उण्णि हों या देवदूत विद्यार्थी. बाद में पी. के. केशवननायर, शंकरानंद, ए. वासुमेनोन, पी. के. नारायणन नायर, सी. जी. गोपालकृष्णन, कुट्टियाल अम्मा, के. पी. रामुण्णि मेनोन, पी. गोंविदन नायर, डी. वी. नंपूतिरिपाद, के. केलप्पन आदि ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

केरल के स्कूल-कॉलेजों में हिंदी

@THECOREIAS | Himalika Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09 | 8800141518
www.thecoreias.com | 53/18, ORN, DELHI-60 | THE CORE IAS

हिंदी बढ़ते प्रचार-प्रसार और लोकप्रियता को देखते हुए स्कूल के पाठ्यक्रम में हिंदी को शामिल करने की मुहिम धीरे-धीरे तेज हो गयी. 1928 में कोच्चि रियासत की विधानसभा में स्कूल के पाठ्यक्रम में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देने के संबंध में सी. ती. साहब ने प्रस्ताव पेश किया. गौरी पवित्रन ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया. प्रस्ताव स्वीकृत हो गया. 1928 से कोच्चि के विद्यालयों में हिंदी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाने लगी. सबसे पहले 1929 में रूद्रविलास लोअर सेकेंडरी स्कूल, एरनाकुलम में हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में स्वीकार किया गया. फिर तो तिश्शूर के कुछ स्कूलों ने भी हिंदी को अनिवार्य भाषा बना लिया।

1931 में स्कूलों में अनिवार्य हिंदी शुरू करने का प्रस्ताव त्रावणकोर विधान परिषद में पेश हुआ. एएस दामोदरन आशान ने यह प्रस्ताव पेश किया.

स्कूलों में अनिवार्य हिंदी का समर्थन पट्टम ताणुपिल्लै, ईवी कृष्णपिल्लै जैसे विद्वान सदस्यों ने किया. 1934 में एसएमवी हाईस्कूल में हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई. सीजी अब्राहम यहां के पहले हिंदी शिक्षक थे. 1935 में मॉडल हाईस्कूल में हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई. इस स्कूल के हिंदी के प्रथम अध्यापक का नाम था- के. वासुदेवन पिल्लाई.
सबसे पहले एरनाकुलम, कोट्टुंगल्लूर, इरिंजालकुडा, कुन्नुकुषि, चित्तूर में हिंदी ऐच्छिक विषय के रूप में स्कूलों में पढ़ाई जाने लगी. बाद में मावेलिक्करा, कोल्लम, तिरुवनंतपुरम, नेय्याट्टिंक्करा के स्कूलों में भी हिंदी पढ़ाई जाने लगी. फिर देखते-देखते कॉलेज और विश्वविद्यालय में भी हिंदी का अध्ययन और अध्यापन होने लगा.

1922 से 1947 के बीच हिंदी के प्रचार-प्रसार ने अच्छे परिणाम देने शुरू कर दिए. 1947-48 की तुलना में 1948-49 में तिगुने विद्यार्थी त्रावणकोर में ई.एस.एल.सी. की परीक्षा में हिंदी विषय को लेकर बैठे. इससे हिंदी प्रचारकों का उत्साहवर्धन हुआ.

1934-1935 आते-आते हिंदी स्कूलों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जाने लगी थी. 1957 आते-आते केरल के विश्वविद्यालयों में हिंदी से स्नातकोत्तर की सुविधा मुहैया हो गयी थी. सबसे पहले 1963 में कोच्चि में हिंदी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग की शुरुआत की गयी. प्रोफेसर ए. चन्द्रहासन इस विभाग के पहले विभागाध्यक्ष बने. विभाग की पहल से दो हिंदी में ग्रंथ प्रकाशित हुए. पहले का नाम था- प्राचीन कवि: केशवदास. इसे लोकभारती प्रकाशन ने प्रकाशित किया था.
हिंदी विभाग की पहल से जो दूसरा हिंदी में ग्रंथ प्रकाशित हुआ उसका नाम था- केरल की वीरगाथाएं. इसका प्रकाशन एस चांद एंड कंपनी ने किया था.

हिंदी विभाग का पहला शोधग्रंथ टी. के. सरलादेवी द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसका विषय था- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी भावना. हिंदी शोध में टी. के. सरलादेवी, एम. ईश्वरी, एल. सुनीता का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है. इन तीनों के शोधों ने केरल में हिंदी भाषा में शोध की पगडंडी तैयार कर दी.

बाद में कालिकट में भी हिंदी विभाग खुला. डॉ. एम. मलिक मोहम्मद कालिकट के हिंदी विभाग के पहले अध्यक्ष थे. उन्होंने अलीगढ़ और आगरा से हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी. उन्हें पद्मश्री से भी सम्मानित किया गया था. बाद में वह वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष बने.

THE CORE IAS

केरल में सबसे पहले हिंदी में एम .फिल. की पढ़ाई कालिकट विश्वविद्यालय में शुरू हुई. इस विश्वविद्यालय ने अनुवाद विज्ञान और राजभाषा में डिप्लोमा के कोर्स की भी शुरुआत की. इस डिप्लोमा-कोर्स की रूप रेखा के निर्माण और इसे प्रारंभ करने का श्रेय हम अनुवाद-विज्ञान के विशेषज्ञ डॉ. गोपीनाथन को देते हैं.

विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में हिंदी के प्रवेश के बाद हिंदी के अध्ययन और अध्यापन में लोगों की रूचि अनवरत बढ़ती चली गयी. इसके साथ ही हिंदी और मलयालम के साहित्य के बीच तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्तियां भी बढ़ीं और केरल के सभी विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन को विषय बनाकर कई महत्वपूर्ण शोध किए गये. 'मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन', 'आधुनिक हिंदी तथा मलयालम काव्य का तुलनात्मक अध्ययन', 'हिंदी और मलयालम में कृष्ण साहित्य', 'तकषि और नागार्जुन: एक तुलनात्मक अध्ययन', 'एषत्तच्छन और तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन', 'तुलसी और तुंचन का तुलनात्मक अध्ययन' आदि इनमें प्रमुख हैं.

केरल में भाषा विज्ञान में भी कई महत्वपूर्ण विषयों पर शोध हुए. हिंदी और मलयालम की समान शब्दावली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, दक्षिण भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हिंदी शब्दावली पर भी काम हुआ.

तुलनात्मक अध्ययन ने अनुवाद की जरूरत को बारंबार इंगित किया. धीरे-धीरे अनुवाद का कार्य जोर पकड़ने लगा और जी. शंकरकुरूप, कुमारन आशान, वल्लत्तोल, एन. बालमणि अम्मा, के. दामोदरन, पणिक्कर के. एम., ई. वी. कृष्णपिल्लै, वी. माधवन नायर, वी. कृष्णन नंपूतिरि की अनूदित रचनाएं हिंदी की जानी-मानी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं. 1950-60 के दशक में वल्लत्तोल, जी. शिवशंकर कुरूप की कविताओं का अनुवाद हुआ. तोप्पिल भासी, सी. जे. थॉमस के नाटकों का अनुवाद हुआ. तकषी शिवशंकर पिल्लै, उरूब, के. एस. पणिक्कर, के. दामोदरन के उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ. साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, अशोक प्रकाशन आदि ने इन अनूदित रचनाओं का प्रकाशन किया.

केरल में हिंदी पत्रिकाएं

अब केरल के लोग हिंदी में मौलिक रचनाएं लिखने लगे थे. उनके प्रकाशन के लिए उन्हें पत्रिकाओं की जरूरत महसूस हुई. केरल के अनुवादकों को भी लगा कि उनकी अनूदित रचनाएं पत्रिकाओं में स्थान पाएं. इस तरह केरल में हिंदी की पत्रिका आंदोलन की शुरुआत हुई.

1941 में केरल से जी. नीलकण्ठन नायर ने 'हिंदी मित्र' नामक हिंदी पत्रिका का संपादन किया. बाद में ललकार, विश्व भारती, अरविंद, प्रताप, आर्यशैली, केरल ज्योति, संग्रथन, अनुशीलन जैसी कई हिंदी पत्रिकाएं केरल से प्रकाशित हुईं. केरल हिंदी साहित्य मंडल, हिंदी विद्यापीठ और केरल हिंदी साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं ने समय -समय पर हिंदी से जुड़े विषयों पर विशद चर्चा करके हिंदी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया.

फिर केरल में दूरदर्शन आया. हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर दूरदर्शन के तिरुवनंतपुरम केंद्र से एक हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करना शुरू किया जिसका नाम था- दर्पण. यह हिंदी कार्यक्रम महीने में एक बार प्रसारित होता था.

केरल और हिंदी का मौलिक लेखन

हिंदी में मौलिक लेखन को केरलवासियों ने चुनौती की तरह लिया और बड़ी संख्या में कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और आलोचकों का पदार्पण हुआ. केरल में कई अच्छे हिंदी कहानीकार और उपन्यासकार भी हुए. के. नारायणन, डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर, डॉ. एन. रामन नायर, डॉ. गोविंद शेणा जैसे कहानीकार हुए और आनंदशंकर माधवन, के. पी. परमेश्वरन पिल्लाई, डॉ. गोविंद शेणाय, डॉ. एन. रामन नायर जैसे उपन्यासकार हुए.

डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर, डॉ.एन.रामन, प्रोफेसर पी. लक्ष्मिकुट्टी अम्मा, के. एस. सोमनाथन नायर, वी. एम. गोविन्दन नंपीशन, डॉ. के. एस. मणि, कुन्नुकुषि कृष्णनकुट्टी जैसे कई अच्छे हिंदी के नाटककार भी हुए.

केरल के हिंदी साहित्य जागत में सबसे अधिक कविताएं लिखी गईं. केरल के प्रतिभावान कवियों की एक लंबी सूची हम तैयार सकते हैं. टी. के. गोविंदन टेलिच्चेरी, विमल केरलीय, टी. के. रामन मेनोन, लक्ष्मिक्कुट्टी देवी, भारती देवी, पी. अम्मिणी देवी, के. वासुदेवन पिल्लै, पी. नारायण, नारायण देव, एन. चंद्रशेखरन नायर, आनंद शंकर माधवन, एम. श्रीधर मेनोन, दामोदर प्रसाद, वी. ए. केशवन नंपूतिरी, पी. वी. विजयन, एम. श्रीधर मेनोन, वी. के. दामोदर प्रसाद, कुन्नुकुषि कृष्णनकुट्टी, टी. एस. पोन्नम्मा, टी. के. सरलादेवी, एल. सुनीता, मुत्तूर राघवन नायर, पी. एन. परमेश्वरन, पी. वी. वर्गीस, एन. गोपिनाथन पिल्लै, एन. रामन नायर, पी. वी. विजयन, टी. के. भास्कर वर्मा, सी. कृष्णन नायर, जे. रामचंद्रन नायर, वल्लिकुन्नम अच्युतन, जे. बालकृष्णन, एन. रवींद्रनाथ, ए.अरविंदाक्षन, षण्मुखन आदि केरल के कुछ प्रमुख कवि हैं.

हिंदी के विकास में 'मातृभूमि' समाचारपत्र पत्र के व्यवस्थापक नीलकंठन नंपूतिरिप्पआड ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. उनकी पत्नी कोच्चुकुट्टी अम्मा ने न केवल हिंदी सीखी बल्कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में भी अभूतपूर्व योगदान दिया. 'मातृभूमि' समाचारपत्र मलयालम का समाचार पत्र था मगर उसने कुछ समय तक हिंदी को प्रोत्साहन देने के लिए हिंदी के पाठ भी प्रकाशित किए.

बावरा मन: कर्ण-एकलव्य को जिन अधिकारों से वंचित रखा उन्हें लौटाने का वक्त

रामधारी सिंह दिनकर ने रश्मिरथी के माध्यम से बेहद अच्छे से समझाया कि कैसे योग्य होने के बावजूद कर्ण और एकलव्य जैसे शूरवीरों को उनके हक से वंचित रखा गया. आजादी के बाद अब इन पिछड़ों को उनका हक देने का वक्त आ गया है. संविधान के माध्यम से निचली जाति के लोगों को उनका हक देने की पहल की गई. इससे पहले किसी ने भी उनकी सुध नहीं ली.

रश्मिरथी : एक वनवास ऐसा भी...

वर्षों तक वन में घूम घूम,
बाधा विघ्नों को चूम चूम
सह धूप घाम पानी पत्थर,
पांडव आये कुछ और निखर
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें आगे क्या होता है...

हुआ ये कि इन पंक्तियों के साथ रामधारी सिंह दिनकर ने रश्मिरथी के तीसरे सर्ग में एक मापदंड तय किया. इस मापदंड के अनुसार जो व्यक्ति वन में तपता है, जीवन में दुख दर्द सहता है, उसका भाग्य आख़िरकार एक ना एक दिन, निखरता ही है. कविवर दिनकर ने दुर्दिन देख निखरने का जो मापदंड बनाया है, क्या कारण है कि वो मापदंड पांडवों के लिए तो है, पर कर्ण और एकलव्य के लिए नहीं है??

THE CORE IAS

देखा जाये तो कर्म से, मेहनत से, प्रतिभा से, और दुर्दिन की बाधाएं झेलने में... कर्ण और एकलव्य, पांडवों से कहीं आगे थे. उन्होंने तो पांडवों से कहीं अधिक बाधाएं पार की थीं. जीवन में अपार विघ्न भी देखे थे. फिर क्या कारण रहा कि एकलव्य और कर्ण की परीक्षा का कोई अंत नहीं था जबकि, अभिजात्य पांडवों ने "वन में तप के" अपने भविष्य को संवारने की शक्ति प्राप्त कर ली थी. उनके चेहरों पे तथाकथित "तेज" भी आ गया था. वनवास का असर पांडवों पर कुछ और, और कर्ण एकलव्य पर कुछ और, कैसे रहा. कारण है जाति... और जाति आधारित पक्षपात.

क्या है ना, अभिजात्य वर्ग जब संघर्ष करता है, सबकी सहानुभूति उसके साथ हो जाती है. कवि की भी, भगवान की भी और समाज की भी. सबको लगता है, "हाय बेचारा"!

जबकि एक वनवासी या वंचित समाज का संघर्ष, किसी को भी नहीं अखरता. उसके लिए कोई सहानुभूति के स्वर कहीं से नहीं उठते. वो खुद और दूसरे भी, इसे नियति का खेल या कर्मों का खेल बता, आंख मूंद लेते हैं. इस बात की सबसे बड़ी गवाह स्वयं रश्मिरथी ही है.

यही कारण है कि हमारे यहां उच्चकुलीन राजपरिवारों के महायुद्धों पर तो महाग्रंथ लिखे गये परंतु आम आदमी के संघर्षों की कहानी कभी भी समाज में सामने ना आ पायी. हां, मौखिक परंपरा से चले आ रहे दलित लोकगीतों में, ये कहानी बहुत कुछ दर्ज हुई है. लेकिन ये भी सच है कि इस समाज के अधिकारों का वनवास बहुत लंबा चला है. कहें तो 1947 तक...

रश्मिरथी तीसरा सर्ग

दरअसल, पिछले दिनों टीवी डिबेट्स में "जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है" इतनी बार सुना कि बावरा मन सोच में पड़ गया कि आखिर क्या कारण है कि रश्मिरथी का तीसरा सर्ग तो सब पढ़ते हैं, उसका गुणगान करते हैं. परंतु प्रथम और द्वितीय सर्ग का प्रचलन पॉपुलर कल्चर में एक दम ना के बराबर है.

अक्सर नेता, अभिनेता, कवि, पत्रकार... रामधारी सिंह दिनकर की रश्मिरथी को कोट करते, दुर्योधन अर्थात अपने राजनैतिक विरोधी के लिए कहते दिखते हैं कि, "जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है." ये बहुप्रचलित पंक्ति, कृष्ण की चेतावनी से है और ये रश्मिरथी के तीसरे सर्ग से ली गई है. इस पंक्ति के पीछे की कहानी भी इसी तीसरे सर्ग में ही है और समाज में बेहद मशहूर है...

मैत्री की राह दिखाने को,
सब को सुमार्ग पर लाने को
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को
भगवान हस्तिनापुर आए,
पांडव का संदेशा लाये
दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर इसमें भी यदि बाधा हो

तो दे दो केवल पांच ग्राम,
रखो अपनी धरती तमाम
वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पे असी ना उठाएंगे
दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशीष समाज की ले ना सका
उलटा हरि को बांधने चला,
जो था असाध्य साधने चला
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है.

ऊपर दी हुई इन पंक्तियों के जरिये ये दर्शाने कि कोशिश हुई है कि पांडव तो आधे न्याय से भी खुश हो जाते, यहां तक कि वो पांच गांव मिलने से भी अपना पूरे राज्य पर से हक छोड़ने को तैयार थे. पांडव अपने कौरव भाइयों से युद्ध नहीं चाहते थे. परंतु जब उनके साथ पांच गांव भर का भी न्याय ना हुआ, इसीलिए युद्ध जरूरी हुआ.

क्या कारण है कि, द्वापर युग का ये आधा न्याय या पांच गांव का हक भी कुलीन परिवारों के लिये ही सुरक्षित था. राजकुल में पैदा हुए लोग ही न्याय के नाम पर जर, जोरू, जमीन पर "लड़ने" का हक रखते थे. उनके इन्हीं हकों की "मर्यादा" तो तीसरे सर्ग में दिखायी गई है जबकि उसी द्वापर समाज में वनवासियों और वंचित समाज के साथ कैसा न्याय होता था, इसकी जानकारी प्रथम दो सर्गों से मिलती है और यही कारण है जो प्रथम दो सर्ग उतने प्रचलित नहीं हैं. तो आखिर प्रथम सर्ग में क्या है??

रश्मिरथी प्रथम सर्ग

प्रथम सर्ग में सभा सजी है. सारे राजकुमार अपना शौर्य प्रदर्शन कर रहे हैं. ऐसे में भरी महफिल में कर्ण ने अर्जुन को ललकार दिया है. गुरु कृपाचार्य और बाकी सब बुजुर्ग भी जान रहे हैं कि कर्ण अर्जुन से बहुत आगे है. ऐसे में अर्जुन का कर्ण से बचाव किस तरह किया जाये. इसी दृश्य का चित्रण करते दिनकर कहते हैं...

फिरा कर्ण, त्यों 'साधु-साधु' कह उठे सकल नर-नारी,
राजवंश के नेताओं पर पड़ी विपद् अति भारी.
द्रोण, भीष्म, अर्जुन, सब फीके, सब हो रहे उदास,
एक सुयोधन बढ़ा, बोलते हुए, 'वीर! शाबाश !'
द्वन्द्व-युद्ध के लिए पार्थ को फिर उसने ललकारा,
अर्जुन को चुप ही रहने का गुरु ने किया इशारा.
कृपाचार्य ने कहा- 'सुनो हे वीर युवक अनजान'
भरत-वंश-अवतंस पाण्डु की अर्जुन है संतान.
'क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,

नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?'
'जाति! हाय री जाति !' कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला
'जाति-जाति रटते, जिनकी पूजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूं जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदंड.

इस तरह कर्ण को जाति के नाम पर जो अवहेलना द्वापर में सहनी पड़ी, उसे उसका न्याय 1947 के बाद ही मिला. जब एक नया कर्ण, अंबेडकर बन समाज में नयी अलख जगाने आया...

कर्ण का भाग्योदय

आजादी के तुरंत बाद के सालों में कर्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है. जैसे अचानक, 1947 में देश को ही नहीं, कर्ण को भी आजादी मिली हो. कर्ण का भी वनवास खत्म हुआ हो. स्वयं दिनकर ही कहते हैं, "कर्ण का भाग्य सचमुच बहुत दिनों बाद जगा है. यह उसी का परिणाम है कि उसके पार जाने के लिए जलयान के जलयान तैयार हो रहे हैं. जहाजों के इस बड़े बेड़े में मेरी ओर से एक छोटी सी डोंगी (रश्मिरथी) ही सही."

दिनकर ने 16 फरवरी 1950 में रश्मिरथी लिखनी प्रारंभ की थी और उस से कुछ दिन पहले ही यानी 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ था. दरअसल, आजाद भारत में हवा का रुख किस ओर बह रहा था, साहित्यकार जान रहे थे. जिस वंचित वर्ग पर युगों तक किसी ने एक ग्रंथ क्या एक कहानी तक ना लिखी, अचानक उस पर सबकी कृपा कैसे जाग उठी थी? आखिर क्या कारण था कि आजादी के बाद ही कर्ण पर साहित्यकारों की ये दयादृष्टि संभव हुई??

ये इसलिए भी संभव हुई क्योंकि उस दौर में एक अंबेडकर हुए जिन्होंने द्वापर के कर्ण की ही तरह, आधुनिक भारत में अपनी शिक्षा और योग्यता से धूम मचा दी थी. उस महापुरुष ने आजाद भारत का संविधान लिख डाला था. अंबेडकर की संविधान सभा में जगह ने, भारतीय समाज को जतला दिया था कि अब देश की किस्मत, एक कर्ण यानि एक दलित के हाथों में है.

THE CORE IAS

रश्मिरथी को रचे जाने की भूमिका में स्वयं दिनकर लिखते हैं, "ये युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है. अतएव, यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र भारती के जागरुक कवियों का ध्यान उस चरित की ओर जाये जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा है. कर्ण चरित के उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है. कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है."

चलते चलते

क्या है ना, रश्मिरथी के प्रथम सर्ग को पढ़ने, समझने की नयी कोशिश समाज में होती रहनी चाहिए. गलत को सही और न्यायोचित करने की प्रक्रिया, निरंतर चलती रहनी चाहिए. जिस वंचित समाज को अपने पांच गांव रूपी प्रतीकात्मक हक प्राप्त करने का पहला अधिकार ही 1947 के बाद आजाद भारत में मिला हो, वक्त आ गया है कि हम पांच गांव वाले उस प्रतीकात्मक न्याय से आगे बढ़ें. मान्यवर कांशी राम जी के सपने "जिसकी जितनी संख्या

भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी" को साकार करें. वंचित समाज को आधा नहीं पूरा न्याय दें. मुख्यधारा से इस समाज का लंबा वनवास खत्म करने की एक और ईमानदार कोशिश करें. इस नये विश्वास के साथ कि...
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें आगे क्या होता है...!!

नॉर्वे लेखक जॉन फॉसे ने जीता साहित्य का नोबेल पुरस्कार
जॉन फॉसे एक कवि, उपन्यासकार और नाटककार हैं. साहित्य में अनूठे प्रयोग के लिए जॉन फॉसे को नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया है. उन्होंने लेखन में एक विशेष शैली का इस्तेमाल किया है, जिसे 'फॉसे मिनिमलिज्म' के नाम से जाना जाता है. फॉसे नॉर्वेजियन नाइनोर्स्क भाषा में लिखते हैं, जो नॉर्वेजियन सबसे कम आम प्रचलित है.
जॉन फॉसे दुनिया के सबसे अधिक प्रदर्शन करने वाले नाटककारों में से एक हैं. उनके चर्चित नाटकों में 'समवन इज गोइंग टू कम' (Someone is Going to Come), 'नाइटसॉन्ग्स' (Nightsongs) और 'डेथ वेरिएशन्स (Death Variations) शामिल हैं.
फॉसे की रचनाओं का चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवाद किया गया है, जिससे उन्हें बड़े पैमाने पर अंतरराष्ट्रीय पहचान मिली है. जॉन फॉसे की रचनाएं अक्सर एकांत, अस्तित्ववाद और मानवीय रिश्तों की जटिलताओं के विषयों पर प्रकाश डालती हैं.

उन्हें वर्ष 2010 में अंतरराष्ट्रीय इबसेन पुरस्कार (International Ibsen Award) और 2014 में साहित्य के लिए यूरोपीय पुरस्कार (European Prize for Literature) से सम्मानित किया गया जा चुका है.
फॉसे के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में उन लोगों की आवाज उठाई है जो अपनी बात रख नहीं पाते हैं. नोबेल पुरस्कार देने वाली रॉयल स्वीडिश अकादमी ने स्टॉकहोम में साहित्य के नोबेल पुरस्कार की घोषणा के दौरान कहा कि जॉन फॉसे ने अपने लेखन खासकर नाटकों में उन भावनाओं का प्रदर्शन किया है, जिन्हें लोग आमतौर पर प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं. समाज में ऐसी भावनाओं को **टैबू** समझा जाता है.

विज्ञान कविता कोश परियोजना

- कविता का अनेक रूपों में अध्ययन चिंतन-मनन चलता रहा है तथा इसके विभिन्न पहलुओं पर शोध प्रपत्र लिखे जाते रहे हैं. कविता में वैज्ञानिक चेतना के विकास की दिशा में भी प्रयत्न होते रहे हैं और यह काम आईसेक्ट और इसके विश्वविद्यालयों द्वारा प्रारंभ से ही किया जा रहा है कि विज्ञान, तकनीक और प्रौद्योगिकी की पढ़ाई के साथ ऐसे विषयों पर शोध अनुसंधान को दिशा दी जाएं जो साहित्य को वैज्ञानिक चेतना से जोड़ सकते हैं. यह प्रसन्नता की बात है कि कई वर्षों से चल रही आईसेक्ट की 'विज्ञान कविता कोश' की परियोजना अब मूर्त रूप ले चुकी है और इसके तीन खंडों का लोकार्पण भोपाल में होने वाले 'विज्ञान पर्व' में किया जाना है. इसके साथ ही विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण पत्रिका विज्ञान पत्रिका "इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए" के 350वें अंक का भी लोकार्पण होने जा रहा है.
- विज्ञान कविता और वैज्ञानिक चेतना से संपन्न विज्ञान कविता कोश तीन खंडों में प्रकाशित है :-- प्रश्न उपस्थित नित्य नए ; पृथ्वी खोजती हो अपना होना व अभेद्य है वह जो विशाल है प्रत्येक खंड में वरिष्ठता क्रम से कवियों को संयोजित किया गया है जिससे विज्ञान कविता परंपरा का विकास भी लक्षित होता चले। यों तो समय

समय पर कवियों ने विज्ञान, पर्यावरण, तकनीक, मशीनी युग व आधुनिक वैज्ञानिक युग की गतिविधियों को लक्षित किया है किन्तु इस दृष्टि से अभी शोध की दुनिया विकसित नहीं हुई है। कविताओं में वैज्ञानिक चेतना की उपस्थिति को लक्षित और समाकलित करने की दिशा में सुपरिचित कवि कथाकार चिंतक संतोष चौबे एवं कवि संपादक मोहन सगोरिया की संपादकीय दृष्टि काबिले गौर है।

एक ही युवक से दो सगी बहनों के गहरे प्रेम को बयां करती है निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी 'दहलीज़'

3 अप्रैल 1929 को शिमला में जन्मे निर्मल वर्मा का हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में मुख्य योगदान रहा है. 1970 तक निर्मल यूरोप प्रवास पर रहे. यूरोप के पूर्वी-पश्चिमी हिस्सों में वे खूब घूमे और वहां रहकर उन्होंने आधुनिक यूरोपीय समाज का गहरा अध्ययन भी किया. रोजमर्रा की घटनाओं, मानवीय आदतों, कमियों-खूबियों को निर्मल ने उतने ही सहज रूप में लिखा है जितना बाकी की दुनिया ने उसे कठिन बना रखा है. वह जिंदगी के नैराश्य से हाथ छुड़ाकर भागने में नहीं, बल्कि उसका आनंद लेने में यकीन रखते थे.

उन्होंने कई कहानी संग्रह लिखे, जिनमें 'परिंदे तथा अन्य कहानियां' उनका पहला कहानी संग्रह है, जो साल 1959 में प्रकाशित हुआ. इस संग्रह में सात कहानियां संकलित हैं. दूसरा संग्रह 'जलती गाड़ी' है, जिसमें दस कहानियां संगृहित हैं. इनके साथ ही 'पिछली गर्मियों में' साल 1968 में, 'बीच बहस में' साल 1973 में, 'कव्वे और काला पानी' साल 1983 में, 'सूखा तथा अन्य कहानियां' साल 1995 में. उन्होंने पांच उपन्यास भी लिखे- पहला उपन्यास 'वे दिन' है, दूसरा 'लाल टीन की छत', तीसरा 'एक चिथड़ा सुख', चौथा 'रात का रिपोर्टर' और 'अंतिम अरण्य' उनके उपन्यास लेखन का अंतिम पड़ाव है. राजपाल प्रकाशन से उनका एक और कहानी संग्रह आया, जिसका नाम है 'मेरी प्रिय कहानियां'.

इस संग्रह की कहानियों के बारे में निर्मल वर्मा ने लिखा था, "अपनी इन कहानियों को चुनने से पहले मैंने दुबारा पढ़ा था. पढ़ते समय मुझे बार-बार एक अंग्रेज़ी लेख की बात याद आती रही- अर्से बाद अपनी पुरानी कहानियां पढ़ते हुए गहरा आश्चर्य होता है कि मैंने ही उन्हें कभी लिखा था. बार-बार यह भ्रम होता है कि मैं किसी अजनबी लेखक की कहानियां पढ़ रहा हूं, जिसे मैं पहले कभी जानता था. साथ-साथ एक अजीब किस्म का सुखद विस्मय भी होता है कि ये कहानियां एक ज़माने में उस वक्त लिखी थीं, जो आज मैं हूं."

प्रस्तुत है निर्मल वर्मा के सुप्रसिद्ध कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियां' से 'दहलीज़' कहानी. यह कहानी कई बार बेचैन करती है, उदास करती है, लेकिन एक अनोखे और गहरे प्रेम को बयां करने से लड़खड़ाती बिल्कुल नहीं है-

निर्मल वर्मा : दहलीज

पिछली रात रूनी को लगा कि इतने बरसों बाद कोई पुराना सपना धीमे कदमों से उसके पास चला आया है, वही बंगला था, अलग कोने में पत्तों से घिरा हुआ... वह धीरे-धीरे फाटक के भीतर घुसी है... मौन की अथाह गहराई में लॉन डूबा है... शुरू मार्च की बसंती हवा घास को सिहरा-सहला जाती है... बहुत बरसों पहले के एक रिकार्ड की धुन छतरी के नीचे से आ रही है... ताश के पत्ते घास पर बिखरे हैं... लगता है, जैसे शम्मी भाई अभी खिलखिलाकर हंस देंगे और आपा (बरसों पहले, जिनका नाम जेली था) बंगले के पिछवाड़े क्यारियों को खोदती हुई पूछेगी -रूनी, जरा मेरे हाथों को तो देख, कितने लाल हो गए हैं!

इतने बरसों बाद रूनी को लगा कि वह बंगले के सामने खड़ी है और सबकुछ वैसा ही है, जैसा कभी बरसों पहले, मार्च के एक दिन की तरह था... कुछ भी नहीं बदला, वही बंगला है, मार्च की खुश्क, गरम हवा सायं-सायं करती चली आ रही है, सूनी-सी दुपहर को परदे के रिंग धीमे-धीमे खनखना जाते हैं... और वह घास पर लेटी है... बस, अब अगर मैं मर जाऊं, उसने उस घड़ी सोचा था.

लेकिन वह दुपहर ऐसी न थी कि केवल चाहने-भर से कोई मर जाता. लॉन के कोने में तीन पेड़ों का झुरमुट था, ऊपर की फुनगियां एक-दूसरे से बार-बार उलझ जाती थीं. हवा चलने से उनके बीच आकाश की नीली फांक कभी मुंद जाती थी, कभी खुल जाती थी. बंगले की छत पर लगे एरियल-पोल के तार को देखो, (देखो तो घास पर लेटकर अधमुंदी आंखों से रूनी ऐसे ही देखती है) तो लगता है, कैसे वह हिल रहा है हौले-हौले... अनझिप आंखों से देखो, (पलक बिलकुल न मूंदो, चाहे आंखों में आंसू भर जाएं तो भी... रूनी ऐसे ही देखती है) तो लगता है, जैसे तार बीच में से कटता जा रहा है और दो कटे हुए तारों के बीच आकाश की नीली फांक आंसू की सतह पर हल्के-हल्के तैरने लगती है...

हर शनिवार की प्रतीक्षा हफ्ते-भर की जाती है. ...वह जेली को अपने स्टांप-एल्बम के पन्ने खोलकर दिखलाती है और जेली अपनी किताब से आंखें उठाकर पूछती है -अर्जेन्टाइना कहां है? सुमात्रा कहां है? ...वह जेली के प्रश्नों के पीछे फैली हुई असीम दूरियों के धूमिल छोर पर आ खड़ी होती है. ...हर रोज नए-नए देशों के टिकटों से एल्बम के पन्ने भरते जाते हैं, और जब शनिवार की दुपहर को शम्मी भाई होस्टल से आते हैं, तो जेली कुर्सी से उठ खड़ी होती है, उसकी आंखों में एक घुली-घुली-सी ज्योति निखर आती है और वह रूनी के कंधे झिंझोड़कर कहती है -जा, जरा भीतर से ग्रामोफोन तो ले आ.

रूनी क्षण-भर रुकती है, वह जाए या वहीं खड़ी रहे? जेली उसकी बड़ी बहन है, उसके और जेली के बीच बहुत-से वर्षों का सूना, लंबा फासला है. उस फासले के दूसरे छोर पर जेली है, शम्मी भाई हैं, वह उन दोनों में से किसी को नहीं छू सकती. वे दोनों उससे अलग जीते हैं. ...ग्रामोफोन महज एक बहाना है, उसे भेजकर जेली शम्मी भाई के संग अकेली रह जाएगी और तब... रूनी घास पर भाग रही है बंगले की तरफ... पीली रोशनी में भीगी घास के तिनकों पर रेंगती हरी, गुलाबी धूप और दिल की धड़कन, हवा, दूर की हवा के मटियाले पंख एरियल-पोल को सहला जाते हैं सर्र-सर्र, और गिरती हुई लहरों की तरह झाड़ियां झुक जाती हैं. आंखों से फिसलकर वह बूंद पलकों की छांह में कांपती है, जैसे वह दिल की धड़कन है, जो पानी में उतर आई है.

शम्मी भाई जब होस्टल से आते हैं, तो वे सब उस शाम लॉन के बीचोंबीच कैनवास की पैराशूटनुमा छतरी के नीचे बैठते हैं. ग्रामोफोन पुराने जमाने का है. शम्मी भाई हर रिकार्ड के बाद चाभी देते हैं, जेली सुई बदलती है और वह, रूनी चुपचाप चाय पीती रहती है. जब कभी हवा का कोई तेज झोंका आता है, तो छतरी धीरे-धीरे डोलने लगती है, उसकी छाया चाय के बर्तनों, टीकोजी और जेली के सुनहरी बालों को हल्के-से बुहार जाती है और रूनी को लगता है कि किसी दिन हवा का इतना जबरदस्त झोंका आएगा कि छतरी धड़ाम से नीचे आ गिरेगी और वे तीनों उसके नीचे दब मरेंगे.

शम्मी भाई जब अपने होस्टल की बातें बताते हैं, तो वह और जेली विस्मय और कौतूहल से टुकुर-टुकुर उनके चेहरे, उनके हिलते हुए होंठों को निहारती हैं. रिश्ते में शम्मी भाई चाहे उनके कोई न लगते हों किंतु उनसे जान-पहचान इतनी पुरानी है कि अपने-पराए का अंतर कभी उनके बीच आया हो, याद नहीं पड़ता. होस्टल में जाने से पहले जब वह इस शहर में आए थे, तो अब्बा के कहने पर कुछ दिन उन्हीं के घर रहे थे. अब कभी वह शनिवार को उनके घर

आते हैं, तो अपने संस्सग जेली के लिए यूनिवर्सिटी लायब्रेरी से अंग्रेजी के उपन्यास और अपने मित्रों से मांगकर कुछ रिकार्ड लाना नहीं भूलते.

आज इतने बरसों बाद भी जब उसे शम्मी भाई के दिए हुए अजीब-गरीब नाम याद आते हैं, तो हंसी आए बिना नहीं रहती. उनकी नौकरानी मेहरू के नाम को चार चांद लगाकर शम्मी भाई ने उसे कब सदियों पहले की सुकुमार शहजादी मेहरुन्निसा बना दिया, कोई नहीं जानता. वह रेहाना से रूनी हो गई और आपा पहले बेबी बनी, उसके बाद जेली आइसक्रीम और आखिर में बेचारी सिर्फ जेली बनकर रह गई. शम्मी भाई के नाम इतने बरसों बाद भी, लॉन की घास और बंगले की दीवारों से लिपटी बेल-लताओं की तरह, चिरंतन और अमर हैं.

ग्रामोफोन के घूमते हुए तवे पर फूल-पत्तियां उग आती हैं, एक आवाज उन्हें अपने नरम, नंगे हाथों से पकड़कर हवा में बिखेर देती है, संगीत के सुर झाड़ियों में हवा से खेलते हैं, घास के नीचे सोई हुई भूरी मिट्टी पर तितली का नन्हा-सा दिल धड़कता है... मिट्टी और घास के बीच हवा का घोंसला कांपता है... कांपता है... और ताश के पत्तों पर जेली और शम्मी भाई के सिर झुकते हैं, उठते हैं, मानो वे दोनों चार आंखों से घिरी सांवली झील में एक-दूसरे की छायाएं देख रहे हों.

और शम्मी भाई जो बात कहते हैं, उस पर विश्वास करना, न करना कोई माने नहीं रखता. उनके सामने जैसे सबकुछ छूट जाता है, सबकुछ खो जाता है... और कुछ ऐसी चीजें हैं, जो चुप रहती हैं और जिन्हें जब रूनी रात को सोने से पहले सोचती है, तो लगता है कि कहीं एक गहरा, धुंधला-सा गड्ढा है, जिसके भीतर वह फिसलते-फिसलते बच जाती है, और नहीं गिरती है तो मोह रह जाता है न गिरने का. ...और जेली पर रोना आता है, गुस्सा आता है. जेली में क्या-कुछ है कि शम्मी भाई जो उसमें देखते हैं, वह रूनी में नहीं देखते? और जब शम्मी भाई जेली के संग रिकार्ड बजाते हैं, ताश खेलते हैं, (मेज के नीचे अपना पांव उसके पांव पर रख देते हैं) तो वह अपने कमरे की खिड़की के परदे के परे चुपचाप उन्हें देखती रहती है, जहां एक अजीब-सी मायावी रहस्यमयता में डूबा, झिलमिल-सा सपना है और परदे को खोलकर पीछे देखना, यह क्या कभी नहीं हो पाएगा?

मेरा भी एक रहस्य है जो ये नहीं जानते, कोई नहीं जानता. रूनी ने आंखें मूंदकर सोचा, मैं चाहूं तो कभी भी मर सकती हूं, उन तीन पेड़ों के झुरमुट के पीछे, ठंडी गीली घास पर, जहां से हवा में डोलता हुआ एरियल-पोल दिखाई देता है.

हवा में उड़ती हुई शम्मी भाई की टाई... उनका हाथ, जिसकी हर अंगुली के नीचे कोमल-सफेद खाल पर लाल-लाल-से गड्ढे उभर आए थे, छोटे-छोटे चांद-से गड्ढे, जिन्हें अगर छुओ, मुट्ठी में भींचो, हल्के-हल्के से सहलाओ, तो कैसा लगेगा? सच कैसा लगेगा? किंतु शम्मी भाई को नहीं मालूम कि वह उनके हाथ को देख रही है, हवा में उड़ती हुई उनकी टाई, उनकी झिपझिपाती आंखों को देख रही है.

ऐसा क्यों लगता है कि एक अपरिचित डर की खट्टी-खट्टी-सी खुशबू उसे अपने में धीरे-धीरे घेर रही है, उसके शरीर के एक-एक अंग की गांठ खुलती जा रही है, मन रुक जाता है और लगता है कि लॉन से बाहर निकलकर वह धरती के अंतिम छोर तक आ गई है और उसके परे केवल दिल की धड़कन है, जिसे सुनकर उसका सिर चकराने लगता है (क्या उसके संग ही यह होता है, या जेली के संग भी?)

-तुम्हारी एल्बम कहां है? -शम्मी भाई धीरे-से उसके सामने आकर खड़े हो गए. उसने घबराकर शम्मी भाई की ओर देखा. वह मुस्करा रहे थे.

-जानती हो, इसमें क्या है? -शम्मी भाई ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया. रूनी का दिल धौंकनी की तरह धड़कने लगा. शायद शम्मी भाई वही बात कहनेवाले हैं, जिसे वह अकेले में, रात को सोने से पहले कई बार मन-ही-मन सोच चुकी है. शायद इस लिफाफे के भीतर एक पत्र है, जो शम्मी भाई ने चुपके से उसके लिए, केवल उसके लिए लिखा है. उसकी गर्दन के नीचे फ्राक के भीतर से ऊपर उठती हुई कच्ची-सी गोलाइयों में मीठी-मीठी-सी सुइयां चुभ

रही हैं, मानो शम्मी भाई की आवाज ने उसकी नंगी पसलियों को हौले-से उमेठ दिया हो. उसे लगा, चाय की केतली की टीकोजी पर जो लाल-नीली मछलियां काढ़ी गई हैं, वे अभी उछलकर हवा में तैरने लगेंगी और शम्मी भाई सबकुछ समझ जाएंगे... उनसे कुछ भी न छिपा रहेगा.

शम्मी भाई ने वह नीला लिफाफा मेज पर रख दिया और उसमें से टिकट निकालकर मेज पर बिखेर दिए.

-ये तुम्हारी एल्बम के लिए हैं...

वह एकाएक कुछ समझ नहीं सकी. उसे लगा, जैसे उसके गले में कुछ फंस गया है और उसकी पहली और दूसरी सांस के बीच एक खाली अंधेरी खाई खुलती जा रही है...

जेली, जो माली के फावड़े से क्यारी खोदने में जुटी थी, उनके पास आकर खड़ी हो गई और अपनी हथेली हवा में फैलाकर बोली -देख, रूनी, मेरे हाथ कितने लाल हो गए हैं!

रूनी ने अपना मुंह फेर लिया. ...वह रोएगी, बिलकुल रोएगी, चाहे जो कुछ हो जाए...

चाय खत्म हो गई थी. मेहरुन्निसा ताश और ग्रामोफोन भीतर ले गई और जाते-जाते कह गई कि अब्बा उन सबको भीतर आने के लिए कह रहे हैं. किंतु रात होने में अभी देर थी, और शनिवार को इतनी जल्दी भीतर जाने के लिए किसी के मन में कोई उत्साह नहीं था. शम्मी भाई ने सुझाव दिया कि वे कुछ देर के लिए वाटर रिजर्वायर तक घूमने चलें. उस प्रस्ताव पर किसी को कोई आपत्ति नहीं थी. और वे कुछ ही मिनटों में बंगले की सीमा पार करके मैदान की ऊबड़खाबड़ जमीन पर चलने लगे.

चारों ओर दूर-दूर तक भूरी-सूखी मिट्टी के ऊंचे-नीचे टीलों और ढूहों के बीच बेरों की झाड़ियां थीं, छोटी-छोटी चट्टानों के बीच सूखी घास उग आई थी, सड़ते हुए पीले पत्तों से एक अजीब, नशीली-सी, बोझिल, कसैली गंध आ रही थी, धूप की मैली तहों पर बिखरी-बिखरी-सी हवा थी.

शम्मी भाई सहसा चलते-चलते ठिठक गए.

-रूनी कहां है?

-अभी तो हमारे आगे-आगे चल रही थी -जेली ने कहा. उसकी सांस ऊपर चढ़ती है और बीच में ही टूट जाती है.

दोनों की आंखें मैदान के चारों ओर घूमती हैं... मिट्टी के ढूहों पर पीली धूल उड़ती है. ...लेकिन रूनी वहां नहीं है, बेर की सूखी, मटियाली झाड़ियां हवा में सरसराती हैं, लेकिन रूनी वहां नहीं है. ...पीछे मुड़कर देखो, तो पगडंडियों के पीछे पेड़ों के झुरमुट में बंगला छिप गया है, लॉन की छतरी छिप गई है ...केवल उनके शिखरों के पत्ते दिखाई देते हैं, और दूर ऊपर फुनगियों का हरापन सफेद चांदी में पिघलने लगा है. धूप की सफेदी पत्तों से चांदी की बूंदों-सी टपक रही है.

वे दोनों चुप हैं... शम्मी भाई पेड़ की टहनी से पत्थरों के इर्द-गिर्द टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियां खींच रहे हैं. जेली एक बड़े-से चौकोर पत्थर पर रूमाल बिछाकर बैठ गई है. दूर मैदान के किसी छोर से स्टोन-कटर मशीन का घरघराता स्वर सफेद हवा में तिरता आता है, मुलायम रूई में ढकी हुई आवाज की तरह, जिसके नुकीले कोने झर गए हैं.

-तुम्हें यहां आना बुरा तो नहीं लगता? -शम्मी भाई ने धरती पर सिर झुकाए धीमे स्वर में पूछा.

-तुम झूठ बोले थे -जेली ने कहा.

-कैसा झूठ, जेली?

-तुमने बेचारी रूनी को बहकाया था, अब वह न जाने कहां हमें ढूंढ़ रही होगी!

-वह वाटर रिजर्वायर की ओर गई होगी, कुछ ही देर में वापस आ जाएगी -शम्मी भाई उसकी ओर पीठ मोड़े टहनी से धरती पर कुछ लिख रहे हैं.

जेली की आंखों पर एक छोटा-सा बादल उमड़ आया है -क्या आज शाम कुछ नहीं होगा, क्या जिंदगी में कभी कुछ नहीं होगा? उसका दिल रबर के छल्ले की मानिंद खिंचता जा रहा है... खिंचता जा रहा है.

THE CORE IAS

-शम्मी! ...तुम यहां मेरे संग क्यों आए? और वह बीच में ही रुक गई. उसकी पलकों पर रह-रहकर एक नरम-सी आहट होती है और वे मुंद जाती हैं, अंगुलियां स्वयं-चालित-सी मुट्ठी में भिंच जाती हैं, फिर अवश-सी आप-ही-आप खुल जाती हैं.

-जेली, सुनो...

शम्मी भाई जिस टहनी से जमीन को कुरेद रहे थे, वह टहनी कांप रही है. शम्मी भाई के इन दो शब्दों के बीच कितने पत्थर हैं, बरसों, सदियों के पुराने, खामोश पत्थर, कितनी उदास हवा है और मार्च की धूप है, जो इतने बरसों बाद इस शाम को उनके पास आई है और फिर कभी नहीं लौटेगी. ...शम्मी भाई! प्लीज! ...प्लीज! ...जो कुछ कहना है, अभी कह डालो, इसी क्षण कह डालो! क्या आज शाम कुछ नहीं होगा, क्या जिंदगी में कभी कुछ नहीं होगा?

वे बंगले की तरफ चलने लगे-ऊबड़खाबड़ धरती पर उनकी खामोश छायाएं ढलती हुई धूप में सिमटने लगीं. ...ठहरो! बेर की झाड़ियों के पीछे छिपी हुई रूनी के होंठ फड़क उठे, ठहरो... एक क्षण! लाल-भुरभुरे पत्तों की ओट में भूला हुआ सपना झांकता है, गुनगुनी-सी सफेद हवा, मार्च की पीली धूप, बहुत दिन पहले सुने हुए रिकार्ड की जानी-पहचानी ट्यून, जो चारों ओर फैली घास के तिनकों पर बिछल गई है... सबकुछ इन दो शब्दों पर थिर हो गया है, जिन्हें शम्मी भाई ने टहनी से धूल कुरेदते हुए धरती पर लिख दिया था, 'जेली...लव'.

जेली ने उन शब्दों को नहीं देखा. इतने बरसों बाद आज भी जेली को नहीं मालूम कि उस शाम शम्मी भाई ने कांपती टहनी से जेली के पैरों के पास क्या लिख दिया था. आज इतने लंबे अर्से बाद समय की धूल इन शब्दों पर जम गई है. ...शम्मी भाई, वह और जेली तीनों एक-दूसरे से दूर दुनिया के अलग-अलग कोनों में चले गए हैं, किंतु आज भी रूनी को लगता है कि मार्च की उस शाम की तरह वह बेर की झाड़ियों के पीछे छिपी खड़ी है, (शम्मी भाई समझे थे कि वह वाटर-रिजर्वायर की ओर चली गई थी) किंतु वह सारे समय झाड़ियों के पीछे सांस रोके, निस्पंद आंखों से उन्हें देखती रही थी, उस पत्थर को देखती रही थी, जिस पर कुछ देर पहले तक शम्मी भाई और जेली बैठे थे. ...आंसुओं के पीछे से सबकुछ धुंधला-धुंधला-सा हो जाता है... शम्मी भाई का कांपता हाथ, जेली की अधमुंदी-सी आंखें, क्या वह उन दोनों की दुनिया में कभी प्रवेश नहीं कर पाएगी?

कहीं सहमा-सा जल है और उसकी छाया है, उसने अपने को देखा है, और आंखें मूंद ली हैं. उस शाम की धूप के परे एक हल्का-सा दर्द है, आकाश के उस नीले टुकड़े की तरह, जो आंसू के एक कतरे में ढरक आया था. इस शाम से परे बरसों तक स्मृति का उद्भ्रांत पाखी किसी सूनी घड़ी में ढकी हुई उस धूल पर मंडराता रहेगा, जहां केवल इतना-भर लिखा है, 'जेली...लव'.

उस रात जब उनकी नौकरानी मेहरुन्निसा छोटी बीवी के कमरे में गई तो स्तंभित-सी खड़ी रह गई. उसने रूनी को पहले कभी ऐसा न देखा था.

-छोटी बीबी, आज अभी से सो गईं? -मेहरू ने बिस्तर के पास आकर कहा.

रूनी चुपचाप आंखें मूंदे लेटी है. मेहरू और पास खिसक आई. धीरे-से उसके माथे को सहलाया -छोटी बीबी, क्या बात है?

और तब रूनी ने अपनी पलकें उठा लीं, छत की ओर एक लंबे क्षण तक देखती रही, उसके पीले चेहरे पर एक रेखा खिंच आई... मानो वह एक दहलीज हो, जिसके पीछे बचपन सदा के लिए छूट गया हो...

-मेहरू, ...बत्ती बुझा दे -उसने संयत, निर्विकार स्वर में कहा -देखती नहीं, मैं मर गई हूं!

THE CORE IAS

यदि महाभारत फिर से लिखा जाए तो, कृष्ण अर्जुन के सारथी बनते ही नहीं, साफ बोल देते कि....

शरद जोशी हिंदी व्यंग्य के आइकॉन हैं. उन्होंने व्यंग्य विधा को ना केवल हिंदी साहित्य में विशेष दर्जा दिलाया बल्कि व्यंग्य के ऐसे मानक तैयार किए जिन्हें अभी तक कोई रचनाकार पार नहीं कर पाया है. शरद जोशी जीवन की हर घटना-प्रतिक्रिया में व्यंग्य खोज लेते हैं. अब हमारे महाकाव्य और धर्मग्रंथ महाभारत की ही बात करें तो शरद जोशी अपनी शैली में कहते हैं कि अगर महाभारत आज के समय में लिखा जाए तो कैसा होगा, क्या महाभारत के पात्र फिर से वह मानक स्थापित कर पाएंगे जो उन्होंने आज से हजारों साल पहले किए थे.

शरद जोशी लिखते हैं कि महाभारत के रचियता वेद व्यास से लेकर भगवान श्रीकृष्ण से लेकर अर्जुन, युधिष्ठिर, कौरव, पाड़व तक हर पात्र क्या वर्तमान समय में अपने वचन, निष्ठा, त्याग, सत्य और समर्पण पर खरे उतर पाते. राजकमल प्रकाशन से शरद जोशी का व्यंग्य संग्रह 'वोट ले दरिया में डाल' प्रकाशित हुआ है. इसी संग्रह में एक व्यंग्य है- "यदि महाभारत फिर से लिखा जाए". आप भी आज की महाभारत का आनंद लें-

- आदमी का स्वभाव है कि वह गुटका तलाशता है. मगर हमारे देश में अभी विद्वान व्यक्ति और व्यस्त व्यक्ति की दो अलग-अलग श्रेणियां नहीं बनीं. हजार पन्नों की किताब देख कोई घबराता नहीं, पढ़ने पर बोर नहीं होता. लेखक अपनी बात को विस्तार देना जानते हैं. एक सामान्य कथानक के पिचके गुब्बारे में अपनी प्रतिभा से इतने शब्द फूंक देते हैं कि वह फूलकर मोटा हो जाता है और लेखक का नाम साहित्य के अंधेरे में 'निओन साइन'-सा चमकने लगता है. इसी कारण पाकेटबुक्स के इस जमाने में अभी भी कद्दू के आकार की किताबें बाजार में आती रहती हैं और वे पाठक जिनके दिमाग और काठ की अलमारियां मजबूत हैं, उन्हें खरीदते रहते हैं. इस प्रोत्साहन के बावजूद किसी लेखक में इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह महाभारत-सा महाग्रन्थ रच दे, जिसमें बड़ी, छोटी कथाओं, प्रसंगों और चरित्रों की अच्छी-खासी प्रदर्शनी लगी हो. यद्यपि उस महाभारत के बाद भी अनेक युद्ध लड़े गए, परिवारों में झगड़े हुए और षड्यन्त्र रचे गए, नया महाभारत नहीं रचा गया.

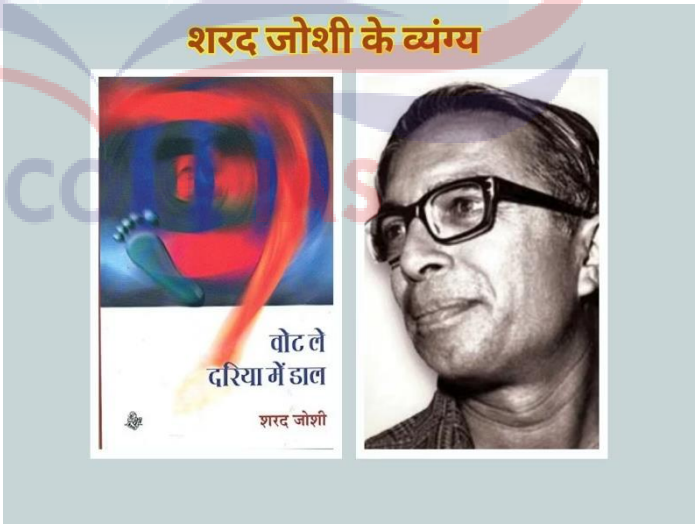

- महाभारतकार व्यासजी एक मामले में आज के लेखक की तुलना में किस्मतवाले थे. उनकी उम्र लम्बी थी. विचित्रवीर्य के जमाने से जनमेजय तक वे सक्रिय रहे. महाभारत की भूमिका से अन्त तक उन्होंने सब-कुछ देखा और महाग्रन्थ रच दिया. आज भी महाभारत होते हैं पर लेखक उससे दूर हैं और अगर पास हैं तो बात को पूरी तौर से समझने में असमर्थ. यदि चित दिखे तो पट का भेद समझने में असमर्थ और पट नजर आए तो चित की व्याख्या करने में असमर्थ. महाभारत-सा प्रोजेक्ट उसके बस की बात नहीं. एक जिन्दगी में यह काम नहीं हो सकता. धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कृष्ण, द्रौपदी, दुर्योधन, अश्वत्थामा और कर्ण की टक्कर का एक भी पात्र ठोस रूप में मिल जाए तो एक शानदार उपन्यास के लिए वह काफी हो. इनमें से सिर्फ एक के दम पर ऐसा तम्बू ताना जा सकता है कि साहित्य में नाम अमर हो जाए. व्यासजी ने तो इस मामले में गजब कर दिया. जयद्रथ, विदुर, शकुनि, दुःशासन, अभिमन्यु आदि छोटे चरित्र भी

इतने खड़े कर दिए कि भुलाए नहीं जा सकते. इसी कारण कई बार सन्देह होता है कि व्यास एक व्यक्ति है या लेखकों की कोआपरेटिव सोसाइटी-लगता है, एक कमेटी है जो सरकारी मदद से काम कर रही है.

जमाना बदल गया. अगर आज कर्ण से कोई ब्राह्मण कवच, कुंडल मांगने जाता तो वह तुरन्त कहता- "वाह प्यारे! हमी रहे मूर्ख बनाने को! तुम्हें कवच, कुंडल दे दें तो हम क्या करें, रोएं तुम्हारे नाम को? चलो, खिसको यहां से!" आज कौरव, पांडव जुआ या तीन पत्ती खेलते तो भूलकर भी कोई राज्य दांव पर न लगाता. और अगर लगाकर हार भी जाता तो दूसरे दिन राज्य देने से साफ इन्कार कर देता कि भाई मैं होश में नहीं था, माफ करना. पांडवों को अगर वन में जाना पड़ता तो वे जाते ही एक कोआपरेटिव सोसाइटी बना लेते और वन की लकड़ियां, तेंदू पत्ते आदि 'फास्फेट प्रोडक्ट' बेचने का धन्धा शुरू कर देते.

आज कृष्ण अर्जुन के सारथी बनते ही नहीं, साफ बोल देते कि मुझ-जैसी पोजीशन का आदमी ऐसी छोटी पोस्ट पर काम कैसे कर सकता है. और अगर बन ही जाते तो अर्जुन को गीता का उपदेश सुनने का मौका नहीं आता. अर्जुन कृष्ण से साफ कह देता- मेरे मामले में बोलने वाले तुम कौन? तुम्हारा काम है रथ चलाना, सो चलाओ, बेकार बहस करने की जरूरत नहीं. जिस दिन कौरव चक्रव्यूह रचते उस दिन अभिमन्यु उसमें घुसता ही नहीं. मुसीबत उठाने से क्या फायदा? एक दिन लड़ाई न सही, चलेगा. अगर अभिमन्यु चक्रव्यूह में फँस ही जाता तो कौरव के सिपाहियों को रिश्वत दे बाहर आ जाता.

जमाना बदल गया है, तौर-तरीके बदल गए हैं. नया-नया लेखक अगर महाभारत लिखना शुरू ही कर दे तो बात आगे न बढ़े. जुए में राज्य हार जाने वाले पांडवों को द्रौपदी तलाक दे देती और छुट्टी करती. और अगर जमीन के बँटवारे के सवाल को लेकर भाइयों में झगड़ा होता भी सही तो कचहरी में होता. मामला बरसों जिला-कोर्ट से आगे नहीं बढ़ता. इसी बीच अगर महाबली भीम किसी दिन दुर्योधन के साथ मारपीट कर लेते तो तुरन्त फौजदारी का मुकदमा और लग जाता. धर्मराज युधिष्ठिर, गांडीवधारी अर्जुन, महाबलशाली भीम, नकुल और सहदेव के साथ बरसों तक रोज कचहरी के बरामदे में सिर लटकाए बैठे रहते. कौरव तारीखें बढ़वाते रहते और मुकदमा टलता रहता. युधिष्ठिर के जमाने से चला मुकदमा अगर जनमेजय के समय भी निबट जाता तो उसे जल्दी ही निबटा माना जाता. उस महाभारत में 'नरो वा कुंजरो वा' किस्म का सिर्फ एक बयान कलंक बनकर रह गया, पर नए महाभारत का हर पात्र रोज कचहरी में झूठे बयान देता कि दूसरे पक्ष के लिए सबूत देना कठिन हो जाता. वकील के चक्कर लगाते बेचारे धर्मराज के पैर छिल जाते. जितना जुए में नहीं हारते उससे अधिक तो वकीलों पर खर्च हो जाता. कचहरी का कमरा कुरुक्षेत्र बन जाता और लम्बी, बोर, कानूनी लड़ाई के बाद पता नहीं निर्णय क्या होता! हो सकता है कौरव मामले को सुप्रीम कोर्ट तक खींचते.

आज का लेखक अगर महाभारत लिखता तो पूरी कहानी दूसरी होती. फिर भी अपेक्षाकृत वह मजे में रहता. किसी साहित्यिक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करवाता और अच्छा-खासा रुपया भी वसूल करता. कई भागों में छपवाता और भारी रॉयल्टी वसूलता. फिर संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित कर कोर्स में लगवा देता. व्यासजी महाभारत लिखते समय रॉयल्टी की कल्पना नहीं कर पाए, न फिल्म की, पर आज का लेखक इन सभी पक्षों पर विचार कर ही काम करता. हो सकता है वह एक महाग्रन्थ के अतिरिक्त कुछ लघु उपन्यास भी निकालता, जैसे–राजा नल की कहानी, विराट राजा के यहां पांडवों के किस्से, भीष्म पितामह की जीवनी, कर्ण की ट्रेजेडी, सुभद्राहरण आदि सभी घटनाओं पर छोटे-छोटे जोरदार उपन्यास बन जाते. अकेले अर्जुन के कारनामे किसी जेम्स बांड से कम नहीं.

बाकायदा सीरीज चल सकती थी. द्रौपदी की लम्बी कहानी और पाँच पतियों के साथ उसका जीवन कोई नया लेखक आत्म-कथात्मक शैली में लिखना पसन्द करता. द्रौपदी के अनुभव उसके लिए चुनौती बन जाते.

अश्वत्थामा के विषय में कहा जाता है कि कृष्ण के शाप से वह आज भी जीवित है. भला बताइए, महाभारत का एक पात्र अभी उपलब्ध है तो जरूर कहीं वोटर-लिस्ट में होगा. यह सच है कि वह कौरव-पक्षीय है पर नया लेखक भी तो तटस्थता पर जोर देता है. महाभारत की पुनः रचना के लिए अश्वत्थामा से काफी उपयोगी सामग्री मिल सकती है. लेखकों को चाहिए कि वे अश्वत्थामा की तलाश आरम्भ कर दें.
मगर भाई, महाभारत लिखकर भी क्या होगा? जनता में लोकप्रिय हो जाए, बिक्री खूब हो, मगर ये आलोचक लोग किताब को कौड़ी लिफ्ट नहीं देंगे. कहेंगे कि कथा को अनावश्यक विस्तार दिया गया है. इतिवृत्तात्मकता अधिक है. पात्रों के चित्रण में अतिरंजना है. लेखक ने अनेक सुपरमैन खड़े कर अस्वाभाविकता ला दी है. अनेक प्रसंग व्यर्थ हैं और मूल कथा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं. लेखक ने श्रम काफी किया, पर व्यर्थ! उसे उचित रूप से सम्पादन करना नहीं आता. उपदेशों की भरमार है, जैसे युद्ध आरम्भ होने की घड़ियों में कृष्ण द्वारा अर्जुन को इतना लम्बा उपदेश देना अस्वाभाविक जान पड़ता है. इस उपदेश के चलने तक लड़ाई कैसे रुकी रही होगी, समझ में नहीं आता. लेखक ने नाम रखने तक में पक्षपात किया है. कौरव-पक्ष के व्यक्तियों के नाम दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मुख आदि हैं, जो उचित नहीं प्रतीत होते. भला बताइए, जन्म के समय पिता को क्या पता था कि इन्हें आगे जाकर विलेन (खलनायक) बनना है, जो वह ऐसे नाम रखता!

बेचारे लेखक को जवाब देना मुश्किल हो जाता. इतना विशाल ग्रन्थ सिर पर उठाए वह साहित्य में अपनी जगह बनाने की कोशिश करता और आलोचक उसे मार भगाते. व्यासजी के सामने ये दिक्कते नहीं थीं. साहित्यिक वादों और अहंजीवी आलोचकों से वे घिरे हुए नहीं थे. और आज का लेखक यों भी अकेलेपन का चित्रण करने का इच्छुक है. उसका हीरो अर्जुन नहीं, अश्वत्थामा है, जो कड़वी स्मृतियों का भार ले आज भी जी रहा है, जो युद्ध के नाम से काँपता है. सो आज का लेखक अगर महाभारत लिखने भी बैठे तो वह वह जाने-अनजाने दूसरी, बिलकुल दूसरी, कहानी लिखने लग जाएगा. हो सकता है वह लिख भी रहा हो!
पुस्तकः **वोट ले दरिया में डाल**

महिलाओं का अस्तित्व तलाशता उपन्यास है 'पोरेर बेटी', बिहार की सीमांचल बोली सूरजापुरी में रची गई यह किताब

- भारत में पग-पग पर पानी और वाणी बदल जाती है. खासकर बात करें कि बिहार की तो यहां पर भिन्न-भिन्न भाषाएं बोली जाती हैं. उन्हीं बोलियों में एक है सूरजापुरी. यह बिहार के सीमांचल में बोली जाती है. सूरजापुरी मुख्य रूप से किशनगंज, कटिहार, अररिया और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों में बोली जाती है. इसी सूरजापुरी बोली को लेकर किशनगंज की बेटी मिली कुमारी ने अपना पहला उपन्यास लिखा है 'पोरेर बेटी'. इस उपन्यास का विमोचन जिले के जिलाधिकारी श्रीकांत शास्त्री ने किया. पोरेर बेटी का आशय है बेटी पराया धन. इसी विषय पर पोरेर बेटी उपन्यास की रचना की गई है.
- पिछले साल में सीमांचल के कुछ ग्रामीण इलाके में गई तो देखी कि हमारी स्वयं की बोली सूरजापूरी को लेकर लोग कितने उत्साही हैं. वही सूरजापूरी संस्कृति की बात करें तो यह सूरजापुरी में कहीं है ही नहीं. अपने क्षेत्र के लोगों से जब पूछते हैं कि सूरजापुरी में है क्या, तो वह कहने में कतराते हैं. इसलिए आखिरकार मैंने यह फैसला

किया कि पोरेर बेटी की रचना अपनी क्षेत्रीय बोली में ही करूंगी. अपनी संस्कृति और तहजीब को बताने का सबसे बड़ा जरिया साहित्य ही होता है. तो मैंने एक उपन्यास की रचना की. अपनी सूरजापुरी बोली को विशिष्ट पहचान मिले, इसके लिए लगातार प्रयासरत रहूंगी और आगे भी चाहूंगी कि अपनी क्षेत्रीय बोली में और भी रचना करूं.

चितरंजन त्रिपाठी एनएसडी के नए निदेशक नियुक्त

लगभग पांच साल के इंतजार के बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली को नया निदेशक मिल गया है. एनएसडी के 1996 बैच के प्रसिद्ध रंगकर्मी चिन्तरंजन त्रिपाठी को नया और स्थायी निदेशक नियुक्त किया गया है.

जल्द होगा 'तमस' का मंचन

चितरंजन त्रिपाठी ने पत्रकारों के सवालों के जवाब में कहा की वह इस संस्थान के छात्र हैं लेकिन अब उन्हें एक नई जिम्मेदारी दी गई है और यह एक चुनौती पूर्ण काम होगा. उन्होंने कहा कि वे अभी बहुत कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं. अभी तो वह निदेशक के रूप में एनएसडी को समझने का भी काम करेंगे.

यह पूछे जाने पर कि क्या अब भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' पर नाटक का मंचन होगा जो पिछले दिनों विवाद के चलते रोक दिया गया था, उन्होंने कहा कि यह नाटक अवश्य होगा. कुछ गलतफहमियों के कारण यह नाटक नहीं हो पाया था. उन्होंने उम्मीद जताई कि इस साल के अंत तक 'तमस' नाटक का मंचन हो सकता है. उन्होंने कहा कि 15 साल पहले उन्होंने तमस उपन्यास पढ़ा था और यह देश की एकता अखंडता को चित्रित करने वाला नाटक है.

चितरंजन त्रिपाठी ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल, श्रीराम सेंटर रंगमंडल और साहित्य कला परिषद रंगमंडल सहित कई प्रमुख थिएटर समूहों और कंपनियों के लिए नाटकों का निर्देशन किया है. उनके लोकप्रिय नाटकों में 'ताजमहल का टेंडर', 'कैपिटल एक्सप्रेस', 'अरे मायावी सरोवर', 'लडी नजरिया और हमारे शहर के रोमियो जूलियट', 'गुन्नो बाई और यहूदी की लड़की', 'डार्लिंग डार्लिंग', 'ताजमहल का उदघाटन', 'अरे शरीफ लोग', 'शबरह अनारकली', 'सीजोर मचाए शोर', 'चूहा बाकी', 'शोरवाला नाटक' और 'अंधेरा कमरा सच्चा प्यार शामिल' हैं.

चितरंजन त्रिपाठी के नाटक 'ताजमहल का टेंडर', 'हमारे शहर के रोमियो जूलियट' और 'लडी नाजरिया' को सर्वश्रेष्ठ नाटक का पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है.

चिरतंजन की लघु फिल्म टकोर्ट रूम नौटंकी' को वर्ष 2010 के आईएफएफआई, गोवा में भारतीय पैनोरमा अनुभाग में प्रदर्शित किया गया था. उनकी पहली फीचर फिल्म 'धौली एक्सप्रेस' (उड़िया) ने सर्वश्रेष्ठ फिल्म सहित कई राज्य पुरस्कार जीते है. इस फिल्म के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ संगीत निर्देशक और सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायक का पुरस्कार भी मिला.

चितरंजन त्रिपाठी ने हिंदी फिल्मों जैसे "दसवीं, 'शुभ मंगल सावधान', 'कनपुरिए', 'मुक्काबाज', 'छपाक', 'ए जेंटलमैन', 'दिल्ली-6', 'फैंटम', 'तलवार', 'जुबान', 'तेरा मेरा टेढ़ा मेधा', 'मुख्यमंत्री', 'प्रमोद गुप्ता जे.ई' सहित कई फिल्मों में अभिनय किया है. आपने थिएटर, फिल्म और टीवी के लिए सैकड़ों गाने लिखे हैं. त्रिपाठी को चिली अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में हिंदी लघु फिल्म 'बिस्कट' में भूमिका के लिए सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता का

पुरस्कार दिया गया था. उन्होंने 'सेक्रेड गेम्स' (त्रिवेदी के रूप में), 'रसभरी', 'रक्तांचल', 'फर्जी' और 'मॉम' जैसी वेब सीरीज में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है.

राजस्थानी भाषा अकादमी पुरस्कारों की घोषणा

- राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी ने वर्ष 2023-24 के लिए अकादमी पुरस्कारों की घोषणा कर दी है. इस वर्ष का 'राजस्थानी साहित्य सम्मान' नागौर के डॉ. तेज सिंह जोधा को, 'राजस्थानी संस्कृति सम्मान' उदयपुर के डॉ. माधव हाड़ा को और 'राजस्थानी प्रवासी साहित्यकार सम्मान' गुजरात के डॉ. भूपतिराम साकरिया को प्रदान किया जाएगा.
- राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी के सचिव शरद केवलिया ने बताया कि 'प्रेमजी प्रेम राजस्थानी युवा लेखन पुरस्कार' बाड़मेर के महेन्द्र सिंह सिसोदिया छायण को उनकी पुस्तक 'मेहा मांगिळया' को, 'राजस्थानी महिला लेखन पुरस्कार' जोधपुर की निर्मला राठौड़ को उनकी पुस्तक 'दीठ दरसाव' को, 'बावजी चतरसिंहजी अनुवाद पुरस्कारट बाड़मेर के डॉ. बंशीधर तातेड़ को उनकी पुस्तक 'अनासक्ति योग' को, 'सांवर दइया पैली पोथी पुरस्कार' सूरतगढ़ के सुरेन्द्र कुमार स्वामी को उनकी पुस्तक 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य री जस जोत' पर, 'जवाहरलाल नेहरू राजस्थानी बाल साहित्य पुरस्कार' नोहर की कीर्ति शर्मा को उनकी पुस्तक 'संगत री रंगत' पर प्रदान किया जाएगा.

शरद केवलिया ने बताया कि 'भत्तमाल जोशी महाविद्यालय पुरस्कार' के तहत प्रथम स्थान प्राप्त बीकानेर के आयुष अग्रवाल को उनकी कहानी 'जी रो नेछांव' को और द्वितीय स्थान पर रही हनुमानगढ़ की मानसी शर्मा को उनके संस्मरण 'मेरी उज्जैन जात्रा' पर प्रदान किया जाएगा.

निराला स्मृति सम्मान' प्रसिद्ध कवि अरुण कमल को

- निराला के निमित्त' संस्थान के अध्यक्ष और महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के प्रपौत्र विवेक निराला ने बताया कि कवि राजेश जोशी और कथाकार चित्रा मुद्गल को इस सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है. उन्होंने बताया कि पहले यह सम्मान निराला साहित्य संस्थान इलाहाबाद की ओर से दिया जाता था, लेकिन अब यह कार्य 'निराला के निमित्त' संस्थान कर रही है. निराला जी की पुण्यतिथि 15 अक्टूबर के दिन इलाहाबाद में आयोजित एक समारोह में चर्चित कवि अरुण कमल को यह सम्मान प्रदान किया जाएगा.
- अरुण कमल की कविताओं में जीवन के विभिन्न पहलुओं, समाजिक मुद्दों और मानवीय भावनाओं का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन मिलता है. वे लोक जीवन के कवि हैं. अरुण कमल की कविताओं में बदलाव से होने वाली उपेक्षा की चिंता स्पष्ट दिखलाई पड़ती है. विकास की दौड़ में विलुप्त होती चीजों का खेद अरुण कमल की रचनाओं में साफ झलकता है.

गुरुनानक देव और कबीर के साहित्य में समानताएं

मोको कहां ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में
ना तो कौनों क्रिया करम में, ना ही योग बैराग में
खोजी होय तो तुरत ही मिलिहौ, पल भर की तलास में

कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में...

हर सांस में ईश्वर का वास है. किसी विशेष स्थान या कर्म में नहीं. आडंबर या दिखावे से नहीं मिलेगा और ना ही वैराग से. दिल से खोजने पर पल भर भी नहीं लगेगा और आपको ईश्वर प्राप्त हो जाएगा.

कबीरदास जी जब ये बात कह रहे थे तब समाज में शिक्षा का घोर अभाव था. तैमूर का आतंक दिल्ली ने देखा था. लगातार 15 वर्षों तक लुटेरों ने दिल्ली में लूटपाट की और राजधानी को तहस-नहस कर दिया. समाज में एक ओर गरीबी थी, शोषण था, भ्रष्टाचार था और लुटेरों का आतंक था, वहीं दूसरी और कबीर वाचिक परंपरा में जनजागरण फैलाने में जुटे थे.

कबीर का जन्म काशी में हुआ था. उनके पद और दोहे गंगा से लगे क्षेत्रों में में में जागरूकता फैला रहे थे. वहीं सुदूर उत्तर के पंजाब प्रांत के तलवंडी में बालक नानक का जन्म हुआ. बचपन से ही वे कुशाग्र बुद्धि के थे. स्वभाव से जिज्ञासु होना ही उनकी प्रखरता का परिचायक था. खास कर ईश्वर को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इससे जुड़े सवालों से इनके शिक्षकों ने हार मान ली और सम्मान सहित बालक नानक को घर छोड़ गये. यानी लड़कपन में ही उनका स्कूल छूट गया. दिल ईश्वर में रम गया था तो ऐसे में उनमें सांसारिक विषयों के प्रति अनुराग की भी कमी देखने को मिलती. इसके बाद बालक नानक का पूरा समय आध्यात्मिक चिंतन और सत्संग में बीतने लगा. ज्ञानार्जन भी उन्होंने स्वाध्याय से ही किया.
जैसे कबीर ने कहा- मोको कहां ढूंढे रे बंदे... वैसे ही नानकदेव जी ने 'इक ओंकार' का संदेश दिया. यानी, एक ईश्वर, जो स्वनिर्मित हर रचना में वास करता है, एक ईश्वर जो शाश्वत सत्य का गठन करता है. कहते हैं कपूरथला के सुल्तानपुर लोधी के गुरुद्वारा बेर साहिब में एक बार गुरुनानक देव जी अपने मित्र मर्दाना के साथ नदी किनारे बैठे थे और अचानक ही उन्होंने पानी में छलांग लगा दी. हालांकि ये भी कहा जाता है कि वे नहाने गए थे और फिर कई दिन तक नहीं लौटे. काफी खोजबीन हुई लेकिन नानकदेव नहीं मिले. लोगों ने उन्हें डूबा हुआ मान लिया. लेकिन तीन दिन बाद अचानक वे वापस लौटे और तभी उन्होंने कहा 'इक ओंकार सतिनाम'. मान्यता है कि डूबकी के दौरान ही उन्हें ईश्वर से साक्षात्कार हुआ और ज्ञान प्राप्ति वाली जगह पर ही उन्होंने बेर का एक बीज बोया था जो घना और छायादार वृक्ष बन गया.

THE CORE IAS

किशोर नानक का विवाह कम उम्र में ही हो गया था. 16 वर्ष की उम्र में गुरदासपुर जिले की सुलक्खनी से उनकी शादी हुई और 16 वर्ष बाद उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई. चार साल के बाद दूसरा पुत्र होने के बाद नानक देव जी परिवार की जिम्मेदारी अपने ससुर को सौंप दी और चार साथियों के साथ सन 1507 में तीर्थयात्रा पर निकल पड़े. मरदाना, लहना, बाला और रामदास उनके साथ थे. तब नानकदेव जी की उम्र 38 वर्ष थी. तभी उन्होंने सिख धर्म की शुरुआत की थी. कहा भी जाता है यात्रा से अच्छा ज्ञान किसी किताब में नहीं मिल सकता. ये बात गुरुनानक देव जी युवावस्था में ही समझ गये थे. भ्रमण के दौरान सैकडों-हजारों किलोमीटर की यात्रा उन्होंने की और समाज को बेहद करीब से देखा, समझा.
तब तक लोदी वंश और सल्तनतकाल बीत चुका था. समाज में आक्रांताओं का दुष्प्रभाव साफ परिलक्षित हो रहा था. प्रार्थना के लिए भी बंदिशें लगाई जा रही थीं. अत्याचार बढ़ रहा था. धर्म काफी समय से थोथी रस्मों और रीति-रिवाजों का नाम बनकर रह गया था. उत्तरी भारत के लिए यह कुशासन और अफरातफरी का समय था. सामाजिक

जीवन में भारी भ्रष्टाचार था और धार्मिक क्षेत्र में द्वेष और कशमकश का दौर था. हिन्दू और मुसलमानों के लिए ही नहीं, बल्कि दोनों बड़े धर्मों के अलग-अलग संप्रदायों के बीच भी ये देखने को मिल रहा था.

इसकी वजह से अलग-अलग संप्रदायों के बीच पैदा हो चुकी कट्टरता बढ़ती जा रही थी. प्रतिरोध का भाव प्रबल होता जा रहा था. सामाजिक स्थिति दिनों दिन बिगड़ती जा रही थी. समाज जातियों और वर्गों में बुरी तरह विभक्त हो चुका था. ब्राह्मणवाद का एकाधिकार चहुंओर दिख रहा था जिसकी वजह से गैर-ब्राह्मण को वेद या शास्त्र पढ़ने-पढ़ाने से विमुख किया जाता था. छोटी जातियों के वेद-शास्त्र पढ़ने पर पूर्णत: प्रतिबंध था.
समाज में व्याप्त ऊंच-नीच की गंभीर बीमारी को समझने के बाद गुरु नानक ने कहना शुरू किया. 'जपुजी साहिब' में वे कहते हैं- 'नानक उत्तम-नीच न कोई' यानी ईश्वर के लिए कोई भी बड़ा या छोटा नहीं है, इसके बाद भी अगर कोई इंसान खुद को प्रभु की निगाह में छोटा समझे तो भगवान हमेशा उस इंसान के साथ होता है. और ये सिर्फ तभी हो सकता है जब इंसान भगवद् स्मरण से अपने घमंड पर विजय पा लेता है. तब वो इंसान भगवान के लिए सबसे बड़ा होता है और उस इंसान की बराबरी कोई नहीं कर सकता. तभी गुरुनानक देव ने 'इक ओंकार' का संदेश दिया, यानी एक ईश्वर, जो स्वनिर्मित हर रचना में वास करता है. एक ईश्वर जो शाश्वत सत्य का गठन करता है. इसके साथ ही उन्होंने कुछ और चीजों की तरफ समाज का ध्यान आकृष्ट करवाया. कबीर का साहित्य भी इसी ओर ले जाता है.

वंड छको - यानी भगवान ने आपको जो कुछ भी दिया है, उसे दूसरों के साथ बांटो. उन्होंने कहा कि जरूरतमंदों की मदद करना ही सबसे बड़ी नेमत है. इसे सिख धर्म के सिद्धांतों में से एक माना जाता है.

कीरत करो- यानी ईमानदारी से जीवन यापन करो. आत्म सुख का आनंद लेने के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए. उन्होंने बिना धोखे के कमाई और लगन से काम करने का उपदेश दिया.

नाम जपो- सच्चे भगवान के नाम का जाप करें, गुरु नानकदेव जी ने 5 बुराइयों पर काबू पाने के लिए प्रभु के नाम का स्मरण करने पर जोर दिया. वे हैं काम, क्रोध, लोभ मोह और अहंकार.

सरबत दा भला - जब भी प्रार्थना करो, भगवान से सबकी खुशी मांगो. उन्होंने सार्वभौमिक भाईचारे की अवधारणा पर जोर दिया. गुरु नानकदेव जी कहा कि धर्म, जाति और लिंग के बावजूद सभी को दूसरों का भला करना चाहिए और तभी बदले में वह अच्छाई वापस मिल सकती है.
बिना डरे सच बोलो - झूठ को दबाकर जीत हासिल करना अस्थाई है. सत्य पर दृढ़ रहना स्थायी है. सत्य पर अडिग रहना भी गुरु के हुकुम (आदेश) में से एक है.

थोड़े दिनों के अंतराल पर ही भ्रमण के दौरान गुरु नानकदेव जी ने भी ऐसी ही बात कही-
नीचा अंदर नीच जात, नीची हूं अति नीच
नानक तिन के संगी साथ, वडिया सिऊ कियां रीस..

इसी तरह से समाज में फैले जातीय भेदभाव को खत्म करने के लिए कबीर ने कहा है-

कबीर जाति न पूछो साधु की,
पूछ लीजिये ज्ञान,
मोल करो तलवार का,
पड़ा रहन दो म्यान

समाज में समानता का नारा देने के लिए गुरु नानकदेव जी कहते हैं- 'प्रभु हमारा पिता है और हम सब उसके बच्चे हैं. पिता के लिए कोई भी बच्चा कम या ज्यादा नहीं होता, सभी बच्चे एक समान होते हैं. ईश्वर ही हमें पैदा करता है और हमारे पेट भरने के लिए भोजन का प्रबंध करता है.'

गुरुनानक देव जी जाति-पाति का विरोध करना शुरू कर देते हैं. वे समाज से ही पूछते हुए जवाब भी देते चलते हैं. नानकदेव जी बताते हैं कि मानव जाति एक ही है इसीलिए जाति की वजह से ऊंच-नीच क्यों है? उनका मानना था कि मानव की जाति नहीं पूछनी चाहिए, जब व्यक्ति ईश्वर की शरण में जाता है तो क्या वहां जति पूछी जाती है? वहां जाति नहीं पूछी जाती, सिर्फ आपके कर्म ही देखे जाते हैं. गुरुनानक देव जी ने मुखवाणी 'जपुजी साहिब'कही. इसमें वे एक जगह कहते हैं-

नानक जंत उपाइके, संभालै सभनाह.
जिन करते करना कीया, चिंताभिकरणी ताहर..

अर्थात - जब हम सब एक पिता के वारिस बन जाते हैं तो पिता की निगाह में जात-पात का कोई सवाल पैदा नहीं होता.

गुरुनानक देव जी ने समाज में व्याप्त कई बुराइयों की आलोचना की है. छुआ-छूत और तंत्र-मंत्र उनके निशाने पर रहे. उनकी बातें समाज को आज भी रास्ता दिखाती हैं, लेकिन कौन कितना स्वीकार करता है, ये व्यक्ति विशेष पर निर्भर है. पंजाब में सिख धर्म की शुरुआत करने वाले गुरु नानकदेव जी को हिन्दू भी मानते हैं और मुसलमान भी. इस बात से एकदम अलग कि उन्होंने इन दोनों धर्मों से अलग एक भिन्न धर्म का प्रचार-प्रसार शुरू किया. जिसके सेवा भाव का उदाहरण आज दुनिया देती है.

समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर व्यंग्य है 'कर्मनाशा की हार'

'नीला चांद' शिवप्रसाद सिंह का बहुत ही चर्चित उपन्यास है. इस उपन्यास के लिए उन्हें वर्ष 1990 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'कर्मनाशा की हार' से वास्ता पढ़ाई के दौरान पड़ा था. कहानी अद्भुत थी. ग्रामीण रूढ़िवादि सोच, अंधविश्वास और स्त्री के प्रति शोषणवादी नजरिये के द्वंद में फंसी कहानी आगे बढ़ती है. और अंत विस्मय कर जाता है. जिस रूढ़िवादी सोच का पेरोकार भैरो पांडे रहे, वही आगे आकर समाज को इस कुचक्र से निकालने का संदेश देते हैं. प्रस्तुत है यह कहानी-

कर्मनाशा की हारः शिवप्रसाद सिंह

काले सांप का काटा आदमी बच सकता है, हलाहल ज़हर पीने वाले की मौत रुक सकती है, किंतु जिस पौधे को एक बार कर्मनाशा का पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता. कर्मनाशा के बारे में किनारे के लोगों में एक और

विश्वास प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मानुस की बलि लिये लौटती नहीं. हालांकि थोड़ी ऊंचाई पर बसे हुए नई डीह वालों को इसका कोई खौफ न था; इसी से वे बाढ़ के दिनों में, गेरू की तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियां मनाते, दो-चार दिन की यह बाढ़ उनके लिए तब्दीली बनकर आती, मुखियाजी के द्वार पर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-सावन की ताल पर ढोलकें उनकने लगतीं. गांव के दुधमुंहे तक 'ई बाढ़ी नदिया जिया ले के माने' का गीत गाते; क्योंकि बाढ़ उनके किसी आदमी का जिया नहीं लेती थी. किंतु पिछले साल अचानक जब नदी का पानी समुद्र के ज्वार की तरह उमड़ता हुआ, नई डीह से जा टकराया, तो ढोलकें बह चलीं, गीत की कड़ियां मुरझाकर होंठों पे पपड़ी की तरह छा गईं, सोखा ने जान के बदले जान देकर पूजा की, पांच बकरों की दौरी भेंट हुई, किंतु बढ़ी नदी का हौसला कम न हुआ. एक अंधी लड़की, एक अपाहिज बुढ़िया बाढ़ की भेंट रहीं. नई डीह वाले कर्मनाशा के इस उग्र रूप से कांप उठे, बूढ़ी औरतों ने कुछ सुराग मिलाया. पूजा-पाठ कराकर लोगों ने पाप-शांति की.

एक बाढ़ बीती, बरस बीता. पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों में फिर पानी उमड़ा. बादलों की छांव में सोया गांव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिचान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था. नई डीह के वातावरण में हौलदिली छा गयी. गांव ऊंचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर मार रही थी, बड़े-बड़े पेड़ जड़-मूल के साथ उलटकर नदी के पेट में समा रहे थे, यह बाढ़ न थी, प्रलय का संदेश था, नई डीह के लोग चूहेदानी में फंसे चूहे की तरह भय से दौड़-धूप कर रहे थे, सबके चेहरे पर मुर्दनी छा गई थी.

"कल दीनापुर में कड़ाह चढ़ा था पांडेजी," इंसुर भगत हकलाते हुए बोला. कुएं की जगत से बाल्टी का पानी लिये जगेसर पांड़े उतर रहे थे. घबड़ाकर बाल्टी सहित ऊपर से कूद पड़े.

"क्या कह रहे थे भगत, कड़ाह चढ़ा था, क्या कहा सोखा ने?" चौराहे पर छोटी भीड़ इकट्ठी हो गई. भगत अपने शब्दों को चुभलाते हुए बोले, "काशीनाथ की सरन, भाई लोगो, सोखा ने कहा कि इतना पानी गिरेगा कि तीन घड़े भरे जाएंगे, आदमी-मवेशी की छय होगी, चारों ओर हाहाकार मच जाएगा, परलय होगी."

"परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान, जिस गांव में ऐसा पाप करम होगा वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा?" माथे के लुग्गे को ठीक करती हुई धनेसरा चाची बोलीं, "मैं तो कहूं कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है. राम रे राम, कुतिया ने पाप किया, गांव के सिर बीता. उसकी माई कैसी सतवंती बनती थी. आग लाने गई तो घर में जाने नहीं दिया, मैं तो तभी छनगी की हो न हो दाल में कुछ काला है. आग लगे ऐसी कोख में. तीन दिन की बिटिया और पेट में ऐसी घनघोर दाढ़ी."

"कुछ साफ भी कहोगी भौजी," बीच में जगेसर पांड़े बोले, "क्या हुआ आखिर?"

"हुआ क्या, फुलमतिया रांड मेमना लेके बैठकी है. विधवा लड़की बेटा बियाकर सुहागिन बनी है."

"ऐ कब हुआ" सबकी आंखों में उत्सुकता के फफोले उभर आये. आगत भय से सबकी सांसें टंगी रह गईं. तभी मिर्चे की तरह तीखी आवाज़ में चाची बोलीं, "कोई आज की बात है? तीन दिन से सौरों में बैठी है डाइन. पाप को छाती से चिपकाये है, यह भी न हुआ कि गर्दन मरोड़कर गड़हे-गुच्ची में डाल दे."

लोगों को परलय की सूचना देकर, हवा में उड़ते हुए आंचल को बरजोरी बस में करती चाची दूसरे चौराहे की ओर बढ़ चलीं. गांव का सारा आतंक, भय, पाप उनके पीछे कुत्ते की तरह दुम दबाये चले जा रहे थे. सबकी आंखों में नई डीह का भविष्य था, रक्त की तरह लाल पानी में चूहे की तरह ऊभ-चूभ करते हुए लोग चिल्ला रहे थे, मौत का ऐसा भयंकर स्वप्न भी शायद ही किसी ने देखा था.

भैरों पांडे बैसाखी के सहारे अपनी बखरी के दरवाजे में खड़े बाढ़ के पानी का जोर देख रहे थे, अपार जल में बहते हुए सांप-बिच्छू चले आ रहे थे. मरे हुए जानवर की पीठ पर बैठा कौआ लहर के धक्के से बिछल जाता, भीगे चूहे पानी से बाहर निकलते तो चील झपट पड़ते. विचित्र दृश्य है- पांडे न जाने क्यों बुदबुदाए. फिर मिट्टी की बनी पुरानी बखरी की ओर देखा. पांड़े के दादा-देस-दिहात के नामी-गिरामी पंडित थे, उनका ऐसा इकबाल था कि कोई किसी को कभी सताने की हिम्मत नहीं करता था. उनकी बनवायी है यह बखरी. भाग की लेख कौन टारे. दो पुश्त के अंदर ही सभी कुछ खो गया, मुट्ठी में बंद जुगनू हाथ के बाहर निकल गया और किसी ने जाना भी नहीं. आज से सोलह साल पहले मां-बांप एक नन्हा लड़का हाथ में सौंपकर चले गये, पैर से पंगु भैरों पांडे अपने दो बरस के छेटे भाई को कंधे से चिपकाये असहाय, निरवलम्ब खड़े रह गये- धन के नाम पर बाप का कर्ज़ मिला, काम-धाम के लिए दुधमुंहे भाई की देख-रेख, रहने के लिए बखरी जिसे पिछली बाढ़ के धक्कों ने एकदम जर्जर कर दिया है.

"अब यह भी न बचेगी"- पांडे के मुंह से भवितव्य फूट रहा था जिसकी भयंकरता पर उन्होंने ज़रा भी ख्याल करना जरूरी नहीं समझा. दरारों से भरी दीवारें उनके खुरदरे हाथों के स्पर्श से पिघल गईं, वर्षा का पानी पसीज कर हाथों में आंसू की तरह चिपक गया.
सनसनाती हवा गांव के इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रही थी. विधवा फुलमतिया को बेटा हुआ है, बेटा-कुतिया के पाप से गांव तबाह हो रहा है, राम राम ऐसा पाप भैरों पांडे के कानों में आवाज़ के स्पर्श से ही भयंकर पीड़ा पैदा हो गयी. बैसाखी उनके शरीर के भार को सम्भाल न सकी और वे धम्म से चौखट पर बैठ गये. बाजू के धक्के से कुहनी छिल गयी, चिनचिनाती कुहनी का दर्द उनके रोयें-रोयें में बिंध रहा था, और पांडे इस पीड़ा को होंठों के बीच दबाने का प्रयत्न कर रहे थे.

"सब कुछ गया"- वे बुदबुदाए. कर्मनाशा की बाढ़ उनकी उस जर्जर बखरी को हड़पने नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठा को हड़पने आयी है, जिसे अपनी इस विपन्न अवस्था में भी पांडे ने धरती पर नहीं रखा. दुलार से पली वह प्रतिष्ठा सदा उनके कंधे पर पड़ी रही. "मैं जानता था कि वह छोकरा इस खानदान का नाश करने आया है"- पांडे की आंखों में उनके छोटे भाई की तस्वीर नाच उठी. अठारह वर्ष का छरहरा पानीदार कुलदीप, जिसकी आंखों में भैरों को मां की छाया तैरती नज़र आती, उसके काले काकुल को देखकर मुखियाजी कहते कि इस पर भैरों पांडे के दादा की लौछार पड़ी है. पांडे हो-हो कर हँस पड़ते. "जा रे कुलदीप, बरामदे में बैठकर पढ़." भैरों पांडे मन में बुदबुदाते- 'तेरे आंख में सौ कुंड चालू, हरामी कहीं का, लड़के पर नजर गड़ाता है, कुछ भी हुआ इसे तो भगवान कसम तेरा गला घोंट दूंगा, बड़ा आया मुखियाजी', फिर जरा बढ़ के बोलते- "क्या लौछार पड़ेगी मुखियाजी, दादा के पास तो पांच पछाहीं गाएं थीं, एक से एक, दो धन दुह लें तो पंचसेरी बाल्टी भर जाती थी. यहां तो इस लौंडे को दूध पचता ही नहीं. फिर साल-बारह महीने हमेशा मिलता भी कहां है हम गरीबों को?"

"अब वह पुराने जमाने की बात कहां रही पांडेजी," मुखिया कहता है और अपने संकेतों से शब्दों में मिर्चे की तिताई भरकर चला जाता. काले-काले काकुलों वाला नवजवान कुलदीप उसे फूटी आंखों नहीं सुहाता, किंतु भैरों पांड़े के डर से वह कुछ कह न पता.

भैरों पांडे, दिन-भर बरामदे में बैठकर रुई से बिनौले निकालते, तूंमते, सूत तैयार करते और अपनी तकली नचा-नचाकर जनेऊ बनाते, जजमानी चलाते, पत्रा देख देते, सत्यनारायण की कथा बांच देते, और इससे जो कुछ मिलता, कुलदीप की पढ़ाई और उसके कपड़े-लत्ते आदि में खर्च हो जाता.

यह सब-कुछ मर-मर कर किया था इसी दिन को- पांड़े की आंखों में प्यास छा गयी, लड़के ने उन्हें किसी ओर का नहीं रखा. आज यहां आफत मची है, आप पता नहीं कहां भाग कर छिपा है.

“राम जाने कैसे हो,” सूखी आंखों से दो बूंदें गिर पड़ीं, “अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था, भूखा बैठा होगा कहीं, बैठे-मरे हम क्या करें.” पांडे ने बैसाखी उठायी. बगल की चारपाई तक गये और धम्म से बैठ गये. दोनों हाथों में मुंह छिपा लिया और चुप लेटे रहे.

पूरबी आकाश पर सूरज दो लट्ठे ऊपर चढ़ आया था. काले-काले बादलों की दौड़-धूप जारी थी. कभी-कभी हल्की हवा के साथ बूंदें बिखर जातीं. दूर किनारों पर बाढ़ के पानी की टकराहट हवा में गूंज उठती. भैरों पांडे उसी तरह चारपाई पर लेटे आंगन की ओर देख रहे थे. बीचोंबीच आंगन के तुलसी-चौरा था जो बरसात के पानी से कटकर खुरदरा हो गया था. पुराने पौधे के नीचे कई मासूम मरकती पत्तियों वाले छोटे-छोटे पौधे लहराने लगे थे. वर्षा की बूंदें पुराने पौधे की सख्त पत्तियों पर टकराकर बिखर जातीं, टूटी हुई बूंदों की फुहार धीरे-से मासूम पौधों पर फिसल जातीं, कितने आनंद-मग्न थे वे मासूम पौधे. पांडे की आंखों के सामने कातिक की वह शाम भी नाच उठी. दो बरस पहले की बात होगी. शाम के समय जब वे बरामदे में लेटे थे, फुलमत आयी, अपनी बाल्टी मांगने, सुबह भैरों पांडे ले आये थे किसी काम से.

“कुलदीप, ज़रा भीतर से बाल्टी दे देना,” कहा था पांडे ने. सफेद साड़ी में लिपटी-लिपटाई गुड़िया की तरह फुलमत आंगन में इसी चौरे के पास आकर खड़ी हो गयी थी. और बाल्टी उठाने के लिए जब कुलदीप झुका था तो फुलमत भी अपने दोनों हाथों से आंचल का खूंट पकड़कर तुलसीजी की वंदना करने के लिए झुकी थी. कुलदीप के झटके से उठने पर वह उसकी पीठ से टकरा गयी थी अचानक. तब न जाने क्यों दोनों मुस्करा उठे थे. भैरों पांडे क्रोध से तिलमिला गये थे. वे गुस्से के मारे चारपाई से उठे तो देखा कि कुलदीप बाल्टी लिए खड़ा था और फुलमत तुलसी-चौरे पर सिर रखकर प्रार्थना कर रही थी. न जाने क्यों, पांडे की आंखें भर आईं. बरसात के दिनों के बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी मां पीली मिट्टी के लेवन से संवार फिर श्वेत बलुई माटी से पोत कर सफेद कर देतीं. शाम को सूखे हुए चबूतरे पर घी के दीपक जलाकर माथा टेककर वे लड़कों के मंगल के लिए विनय करतीं. तब वे भी ऐसे ही झुककर आशीर्वाद मांगतीं और पांड़े बगल में चुपचाप खड़े दियों का जलना देखा करते थे.

पांडे को सामने खड़ा देख कुलदीप हड़बड़ाया और फुलमत बाल्टी लेकर चुपचाप बाहर चली गई. पांडे के चेहरे पर एक विचित्र भाव था, जिसे सम्भाल सकने की ताकत उन दोनों के मन में न थी, और दोनों ही भय की कम्पन लिये इधर-उधर भाग खड़े हुए.

बहुत दिनों तक पांडे के चेहरे पर अवसाद का यह भाव बना रहा. कुलदीप डर के मारे उनकी ओर देख नहीं पाता, न तो पहले जैसी ज़िद कर सकने को हिम्मत होती, न हँसी के कलरव से घर के कोने-कोने को गुंजान बनाने का साहस. पांडे ने अपने दिल को समझाया, इसे लड़कों का क्षणिक खिलवाड़ समझा. सोचा, धरती की छाती बड़ी कड़ी है. ठेस लगते ही सारी गुलाबी पंखुरियां बिखर जाएंगी, दोनों को दुनिया का भाव-ताव मालूम हो जाएगा.

पांडे के रुख से फुलमत भी सशंक हो गई थी, वह इधर कम आती. कुलदीप के उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने पर पांडे की कड़ी नज़र थी. वह किताब खोलकर बैठता तो दीये की टेम में श्वेत वत्रों में लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तक के पन्ने खुले रह जाते और वह एकटक दीये की लौ की ओर देखता रह जाता. पांडे को उसकी यह दशा देखकर बड़ा क्रोध आता, पर कुछ कहते नहीं.

"कुलदीप", एक बार टोक भी दिया था- "क्या देखते रहते हो इस तरह, तबीयत तो ठीक है न?"

"जी," इतना ही कहा था कुलदीप ने, और फिर पढ़ने लग गया था. दीये की टेम कुलदीप के चेहरे पर पड़ रही थी, जिसे पीछे घने अंधकार में लेटे पांडे क्रोध, मोह और न जाने कितने प्रकार के भावों के चक्कर में झूल रहे थे. उन्हें फुलमत पर बेहद गुस्सा आता. टीमल मल्लाह की यह विधवा लड़की मेरा घर चौपट करने पर क्यों तुली है, बाप मरा, पति मरा, अब न जाने क्या करेगी. जाने कौन-सा मंत्र पढ़ दिया. यह कबूतर की तरह मुंह फुलाये बैठा रहता है. न पढ़ता है, न लिखता है. हँसना, खेलना, खाना सब भूल गया. पांडे चारपाई से उतरकर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे. पर कुछ निर्णय न कर सके.

समय बीतता गया. कुलदीप भी खुश नज़र आता. हँसता-खेलता. पांडे की छाती से चिंता का भारी पत्थर खिसक गया. एक बार फिर उनके चेहरे पर हँसी की आभा लौटने लगी. रुई-सूत का काम फिर शुरू हुआ. गांव के दो-चार उठल्ले-निठल्ले आकर बैठ जाते, दिन गपास्टक में बीत जाता. सुरती मल-मल ताल ठोंकने और पिच्च से थूककर किसी को गाली देते या निंदा करते. इन सब चीजों से वास्ता ना रखते हुए भी पांडे सुनते जाते. उनका मन तो चक्कर खाती तकली के साथ ही घूमता रहता, हूं-हां करते जाते और निठल्लों की बातों में सन्नाटे को किसी तरह झेल ले जाते.

पांडे उसी चारपाई पर लेटे थे. अंतर इतना ही था कि दिन थोड़ा और ऊपर चढ़ आया था, लहरों की टकराहट थोड़ी और तेज हो गई थी, रक्त की तरह खौलता हुआ लाल पानी गांव के थोड़ा और निकट आ गया था. उनकी नसें किसी तीव्र व्यथा से जल रही थीं. "पांडे के वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ था"- वे फुसफुसाये. बगल को दीवार में ताखे पर रामायन की गुटका रखी थी; उन्होंने उठाया, एक जगह लाल निशान लगा था. पिछले दिनों कुलदीप रात में रामायन पढ़ा करता था. जब से वह गया है आज तक गुटका खुली नहीं. पांडे के हाथ कांपे, गुटका उलटकर उनकी छाती पर गिर पड़ी. उठाकर खोला, वही लाल निशान-

THE CORE IAS

वह सीता भा विधि प्रतिकूला ।
मिलइ न पावक मिटइ न सूला।।
सुनहु विनय नम विटप असोका ।
सत्य नाम करु हरु मम सोका।।

पांडे की आंखें भरभरा आईं. झरझर आंसू गिरने लगे. हिचकी लेकर वे टूट पड़े. "यह चुड़ैल मेरा घर खा गयी"- शब्द फूटे, किंतु भीतर घुमड़कर रह गये. "गाली देने से ही क्या होगा अब, इतने तक रहता तो कोई बात थी, आज उसे बच्चा हुआ है, कहीं कह दे कि लड़का कुलदीप का है तो नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता," पांडे बडबड़ाये. उन्होंने अपने बालों को मुट्ठियों से कसकर खींचा, जैसे इनकी जड़ में पीड़ा जम गई है, खींचने से थोड़ी राहत मिलेगी. वे उठना चाहते थे, किंतु उठ न सके. आंखों के सामने चिनगारियां फूटने लगीं. उन्हें आज मालूम हुआ कि वे इतने कमज़ोर हो गये हैं. कुलदीप के जाने के बाद से आज तक उनका जीवन अव्यवस्था की एक कहानी बनकर रह गया है. चार-पांच महीने से कुलदीप भागा है; पहले कई दिनों तक वे जरूर बहुत बेचैन थे, किंतु समय ने दुख को भुलाने

में मदद की थी. आज फिर कुलदीप उनकी आंखों के सामने आकर खड़ा हो गया. बीती घटनाएं एक-एक कर आंखों के सामने नाचने लगीं.

फागुन का आरम्भ था. मुखिया जी की लड़की की शादी थी. गांवभर में खुशी छायी रहती, जैसे सबके घर शादी होने वाली हो. शादी के दिन तो गांववालों में बनने-संवरने की होड़ लग गई. सब लोग पट्टी कटा रहे थे, शौकीनों की पट्टी चार-चार अंगुल चौड़ी, छुरे से बनी थी. कुएं की जगत पर दोपहर के दो घंटे पहले से भीड़ लगी थी, और अब दो बजने को आये, साबुन लग रही थी, पैरों में जमी मैल सिकड़े से रगड़-रगड़ कर छुड़ायी जा रही थी.
बारात आई. द्वार-पूजा की शोभा का क्या कहना? बनारस की रंडी नाचने आई थी. छैल-छबीलों की भीड़ जम गई थी. शाम को महफिल जमी. मुखिया जी का दरवाज़ा आदमियों से खचाखच भरा था. एक ओर गली में सिमटकर औरतें बैठी हुई थीं. गांव की लड़कियां, बूढ़ियां और कुछ मनचली बहुएं. बाई जी आयी. अपना ताम-झाम फैलाकर बैठ गयी. सारंगी लेकर बूढ़े मियां ने किन-किन किया, बाई जी ने अलाप के बाद गाया-

नीच ऊंच कुछ बूझत नाहीं, मैं हारी समझाव
वे दोनों नैना बड़े बेदरदी दिल में गड़ि गयो हाव

महफिल से बहुत दूर, गांव के छोर पर आमों के पेड़ों पर फागुन के पीले चांद की छाया फैली थी, जिसके नीचे चितकबरे के चाम की तरह फैली चांदनी में एक प्रश्न उठा, "मुखिया जी की महफिल में पतुरिया ने जो गीत गाया था, कितना सही था?"
"कौन-सा गीत?"
"ये दोनों नैना बड़े बेदरदी"
"धत्!"
"उस दिन मैं बड़ी देर तक इंतज़ार करता रहा!"
"मेरी मां के सिर में दर्द था."
"कौन है?" जोर की आवाज गूंज उठी थी.
पास की गली में एक छाया खो गयी थी.
"कौन है?" फिर आवाज आयी थी.
"मैं हूं कुलदीप!"
"यहां क्या कर रहे हो?"
"नदी की ओर चला गया था!"
"इस समय?"
"पेट में दर्द था!"
क्रोध की हालत में भी भैरों पांडे मुस्करा उठे थे- झूठे, पेट में दर्द था कि आंख में. कुलदीप का सिर लज्जा से झुक गया था. उसे लगा जैसे एक क्षण का यह भयप्रद जीवन उसकी आत्मा पर सदा के लिए छा जाएगा. एक क्षण के लिए बोला हुआ यह झूठ उसके जीवन को झूठा साबित कर देगा. एक क्षण के लिए झुका यह माथा फिर कभी न उठ सकेगा. वह झूठ के इस पर्दे को फाड़ डालना चाहता था, किंतु "कुलदीप" भैरों पांडे ने आहिस्ते-आहिस्ते कहा, "तुम गलत रास्ते पर पांव रख रहे हो, बेटा, तुमने कभी अपने बाप-दादों की इज्जत के बारे में सोचा है? बड़े पुण्य के बाद इस घर में जन्म मिला है भाई, इसे कभी मत भूलना कि अच्छे घर में जन्म लेने से कोई बहुत बड़ा नहीं हो

THE CORE IAS

जाता, किंतु इस अवसर को गलत कहकर नीचे गिरने से बड़ा पाप और कोई नहीं है." कुलदीप को लगा कि तीखे कांटों वाली कोई जीवित मछली उसके गले में फँस गयी है, गर्दन को चीरती हुई यदि वह निकल जाए तो भी गनीमत, किंतु यह असह्य पीड़ा तो नहीं सही जाती और न जाने क्यों वह हिचकियों से फूट-फूटकर रो उठा था. भाई के मन की पीड़ा की कल्पना भी उसके लिए कष्टकर थी, किंतु उसकी आत्मा अपने सम्पूर्ण भाव से जिस वस्तु को वरेण्य समझती है, उसे वह एकदम ही व्यर्थ कैसे कह दे! जिस छाया में न जाने क्यों उसे एक अजाने आनंद का अनुभव होता है, उसे कालिख कह सकना उसके वश की बात नहीं थी, और इस कष्ट के भार को उसकी आंखें सम्भाल न सकीं. भैरों पांडे भी भाई से लिपट गये थे. उसकी पीठ सहला रहे थे और उसे बार-बार चुप हो जाने को कह रहे थे, "यदि कोई देख ले तो," उनके मन में आया और वे कुलदीप को जल्दी-जल्दी खींचते हुए एक ओर चले गये.

आंसुओं में जो पश्चाताप उमड़ता है, वह दिल की कलौज को मांज डालता है. पांडे ने सोचा था कि कुलदीप अब ठीक रास्ते पर आ जाएगा. उनके वंश की मर्यादा अपमान के तराजू पर चढ़ने से बच जाएगी, भूखों रहकर भी पांडे ने इज्जत के जिस बिरवे को खून से सींचकर तरोताज़ा रखा है, उस पर किसी के व्यंग-कुठार नहीं चलेंगे. किंतु एक महीना भी नहीं बीता कि कुलदीप फिर उसी रास्ते पर चल पड़ा. छोटे भाई के इस कार्य को छिपकर देखने की पापाग्नि में भैरों पांडे अपनी आत्मा को जलते हुए देखते, किंतु वे विवश थे.

चैत के दिनों में गर्मी से जली-तपी कर्मनाशा किनारे के नीचे सिमट गयी थी. नदी के पेट में दूर तक फैले हुए लाल बालू का मैदान, चांदनी में सीपियों के चमकते हुए टुकड़े, सामने के ऊंचे अरार पर घन-पलास के पेड़ों की आरक्त पांतें, बीच में घुग्घू, चारों ओर जल-विहार करने वाले पक्षियों का स्वर कगार से नदी तीर तक बने हुए छोटे-बड़े पैरों के निशानों की दो पंक्तियां सिर्फ दो.

"तुम मुझे मझधार में लाकर छोड़ तो नहीं दोगे!" घुटन और शंका में खोये हुए धीमे स्वर. श्यामा की चीरती दर्द-भरी आवाज़.
एक चुप्पी, फिर हकलाती आवाज़, "मैं अपना प्राण दे सकता हूं, किंतु तुमको... कभी नहीं".
चांदनी की झीनी परतें सघन होती जा रही थीं, सुनसान किनारे पर भटकी हवा की सनसनाहट में आवाज़ों का अर्थ खो जाता, कभी हल्के हास्य की नर्म ध्वनि, कभी आक्रोश के बुलबुले, कभी उल्लास तरंग, कभी सिसकियों की सरसराहट.

भैरों पांडे एक बार चांदनी के इस पवित्र आलोक में अपनी क्रूरता और निर्ममता पर विचार करने के लिए रुक गये, तो क्या आज तक का उनका सारा प्रयत्न निष्फल था? क्या वे असाध्य को सम्भव बनाने का ही प्रयत्न करते रहे? एक क्षण के लिए भैरों पांडे ने सोचा- काश, फुलमत अपनी ही जाति की होती! कितना अच्छा होता, यह विधवा न होती. तुलसी चौरे की वंदना पांडे के मस्तिष्क में चंदन की सुगंध की तरह छा गयी. उसका रूप, चाल-चलन, संकोच सब-कुछ किसी को भी शोभा देने लायक था. एक क्षण के लिए उनकी आंखों के सामने सफेद साड़ी में लिपटी फुलमत की पतली-दुबली काया हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, जैसे वह आंचल फैलाकर आशीर्वाद मांग रही हो. भैरों पांडे विजड़ित खड़े थे, दिग्मूढ़.
"यह असम्भव है!" पांडे ने बैसाखी सम्भाली और नीचे की ओर लपके.
"कुलदीप!" बड़ी कर्कश आवाज थी पांडे की.

दोनों सिर झुकाये सामने खड़े थे, आज पहली बार पाप की साक्षी में दोनों समवेत दिखाई पड़े थे. पांडे फिर एक क्षण के लिए चुप हो गये.

"मैं पूछता हूं, यह सब क्या है?" पांडे चिल्लाये, "इतने निर्लज्ज हो तुम दोनों?" पांडे बढ़कर सामने आये, फुलमत की ओर मुंह फेरकर बोले, "तू इसकी ज़िंदगी क्यों बिगाड़ना चाहती है? क्या तू नहीं जानती कि तू जो चाहती है वह स्वप्न में भी नहीं हो सकता, कभी नहीं!"

फुलमत चुप थी, पांडे दूने क्रोध-से बोले, "चुप क्यों है चुड़ैल, बोलती क्यों नहीं?"

"मैं क्यों इनकी ज़िंदगी बिगाड़ूंगी, दादा?"- वह सहसा एकदम निचुड़ गयी, "मैंने तो इन्हें कई बार मना किया."

"कुलदीप!" पांडे दहाड़े, "सीधे रास्ते पर आ जाओ, अच्छा होगा. तुमने भैरों का प्यार देखा है क्रोध नहीं; जिन हाथों से मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, उसी से तुम्हारा गला घोटते मुझे देर न लगेगी."

"दादा!" कुलदीप हकलाया, "हम दोनों."

"पापी, नीच" भैरों पांडे के हाथ की पांचों अंगुलियां कुलदीप के चेहरे पर उभर आईं, "मैं सोचता था तू ठीक हो जाएगा!" पांडे क्रोध से कांप रहे थे, "लेकिन नहीं, तू मेरी हत्या करने पर तुल ही गया है." वे फुलमत की ओर घूमकर चिल्लाये, "क्या खड़ी है डायन, भाग नहीं तो तेरा गला घोंटकर इसी पानी में फेंक दूंगा!"

अंधड़ को पीते हुए तृषित सांप जैसा स्वर, "यह सब मैंने किया था." पांडे चारपाई पर घायल सांप की तरह तड़फड़ाते हुए बुदबुदाये. उनकी छाती से सरककर रामायण का गुटका ज़मीन पर गिर पड़ा और उस पवित्र आराध्य वस्तु को उठाने का उन्हें ध्यान न रहा. कुलदीप दूसरे ही दिन लापता हो गया. पांडे अपनी बैसाखी के सहारे दिन भर गांव-गिरांव की खाक छानते फिरे, किंतु वह नहीं मिला. थककर, हार कर पांडे वापस आ गये. बाप-दादों की इज्ज़त की प्रतीक इतनी विशाल बखरी, जिसकी दीवारें मुंह दबाये शांत, पुजारी के तप की तरह अडिग खड़ी थीं, किंतु कितनी सुनसान, डरावनी, निष्प्राण पिंजर की तरह लगती थी यह बखरी. चौखट पर पैर रखते हुए पांडे की आत्मा कराह उठी- "चला गया!" बैसाखी रखकर पांडे आंगन के कोने में बैठ गये- "अब वह कभी नहीं लौटेगा."

रात में उन्हें बड़ी देर तक नींद नहीं आयी. कुलदीप को बचपन से लेकर आज तक उन्होंने कभी अपनी आंख की ओट नहीं होने दिया. छुटपन से लेकर आज तक खिलाया-पिलाया, पाला-पोसा, और आज लड़का दगा देकर निकल गया. पांडे अधरों की मेड़ के पीछे बिथा के सैलाब को रोकने का असफल प्रयत्न करते रहे.

भोर होने में देर थी, उनींदी आंखें करुआ रही थीं, किंतु मन की जलन के आगे उस दर्द का मोल. पांडे उठकर टहलने लगे. सामने की बंसवार के भीतर से पूरबी क्षितिज पर ललछौहां उजास फूटने लगा था. गली के मोड़ के कच्चे मकान के भीतर से जांत की घर्र-घर्र गूंज रही थी. एक घुमड़ता गरगराहट का स्वर, जिसके पीछे जांत वाली के कंठ की व्यथा की एक सुरीली तान टूट-टूटकर कौंध उठती थी.

'मोहे जोगिनी बनाके कहां गइले रे जोगिया'

पांडे एक क्षण अवाक् होकर इस दर्दीले गीत को सुनते रहे. प्यासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पांडे की आत्मा में जैसे समान वेदना को पहचानकर उतरते चले जा रहे हों. "अब रोने चली है चुड़ैल!" पांडे पागल की तरह बड़बड़ाते रहे, "रो-रोकर मर, मैं क्या करूं?"

बाढ़ के लाल पानी में सूरज डूब रहा था, पांडे बैसाखी के सहारे आकर दरवाजे पर खड़े हुए, नदी की ओर आदमियों की भीड़ खड़ी थी. वे धीरे-धीरे उधर ही बढ़े. सामने तीन-चार लड़के अरहर की खूंटियां गाड़कर पानी का बढ़ाव नाप रहे थे.

"क्या कर रहा है, छबीला!" पांडे बलात चेहरे पर मुस्कराहट का भाव लाकर बोले.
"देखता नहीं लंगड़े, बाढ़ रोक रहे हैं!"
पांडे मुस्कराये- "जैसा बाप वैसा बेटा. तेरा बाप भी खूंटिया गाड़ कर कर्मनाशा की बाढ़ को रोकना चाहता है."
"वह भीड़ कैसी है रे, छबीले?"
"नहीं जानते, फुलमत को नदी में फेंक रहे हैं. उसके बच्चे को भी. उसने पाप किया है." छबीला फिर गम्भीर खड़े पांड़े से सटकर बोला- "क्यों पांडे चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न?"
"हां, हां" पांडे आगे बढ़ा. बोतल की टीप खुल गयी थी. पांडे के मन में भयानक प्रेत खड़ा हो गया. "चलो, न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी. हूं, चली थी पांडे के वंश में कालिख पोतने. अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है."

फुलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये टूटते हुए अरार पर एक नीम के तने से सटकर खड़ी थी. उसकी बूढ़ी मां जार-बेजार हो रही थी, किंतु आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था, अपने-अपने प्राणों का मोह इन्हें पशु से भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्याय के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करता था. कर्मनाशा को प्रणों की बलि चाहिए, बिना प्रणों की बलि लिए बाढ़ नहीं उतरेगी फिर उसी की बलि क्यों न दी जाए जिसने पाप किया... परसाल जान के बदले जान दी गयी, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी... त्रिशुंक के पाप की लहरें किनारों पर सांस की तरह फुफकार रही थीं. आज मुखिया का विरोध करने का किसी में साहस न था. उसके नीचता के कार्यों का ऐसा समर्थन कभी न हुआ था. "पता नहीं, किस बैर का बदला ले रहा है बेचारी से." भीड़ में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किंतु कौन बोले सब मुंह सिये खड़े थे.

"तुम्हारी क्या राय है भैरों पांडे!" मुखिया बोला, "सारे गांव ने फैसला कर दिया- एक के पाप के लिए सारे गांव को मौत के मुंह में नहीं झोंक सकते. जिसने पाप किया है उसका दंड भी वही भोगे."
एक वीभत्स सन्नाटा. पांडे ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भय से चिल्ला उठी. पांडे ने बच्चे को उसकी गोद से छीन लिया. "मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुंहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बांधों को ठीक करना होगा. कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किंतु मैं कायर नहीं हूं. मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी मां का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता समझे?"
"तो यह है बूढ़े पांडे जी की बहू!" मुखिया व्यंग से बोला, "पाप का फल तो भोगना ही होगा, पांडे जी, समाज का दंड तो झेलना ही होगा."
"ज़रूर भोगना होगा, मुखिया जी मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता. किंतु, मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूं तो यहां खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा. है कोई तैयार जाने को?"
लोग अवाक् पांडे को देख रहे थे, जो अपने कंधे से छोटे बच्चे को चिपकाये अपनी बैसाखी के सहारे खड़े थे. पत्थर की विशाल मूर्ति की तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल कर्मनाशा के लाल पानी में सूरज डूब रहा था.
जिन उद्धत लहरों की चपेट से बड़े-बड़े विशाल पीपल के पेड़ धराशायी हो गये थे; वे एक टूटे नीम के पेड़ से टकरा रही थीं, सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टान की तरह अडिग थीं, लहरें टूट-टूटकर पछाड़ खाकर गिर रही थीं. शिथिल-थकी पराजित.

साहित्य के पास निदान नहीं होता, वह केवल सजग कर सकता है- प्रयाग शुक्ल

गांधी जयंती के अवसर पर आयोजित 'स्वच्छता ही सेवा' कार्यक्रम में प्रख्यात पर्यावरणविद् और संपादक पंकज चतुर्वेदी ने पर्यावरण शब्द को आधुनिक मानते हुए कहा कि पर्यावरण, विकास की तरह ही एक नई अवधारणा है और अब पर्यावरण कोई सम्मानित शब्द नहीं रहा है. अब इसने चिंता का रूप ले लिया है.

पंकज चतुर्वेदी ने कहा कि हमारे प्राचीन साहित्य में प्रकृति थी. उन्होंने 'महाभारत' के वन पर्व में युधिष्ठिर और मार्कण्डेय ऋषि के संवाद के आधार पर बताया कि कलयुग के लिए या आने वाले समय के लिए उनकी जो चिंताएं थीं वो आज हमारे सामने प्रत्यक्ष आ खड़ी हुई हैं. जिसमें ऋतुओं का बदलना, तालाब-नदियों का सूखना, फलों के स्वाद-सुगंध का कम होना और प्रचंड तापमान शामिल है.

आधुनिक हिंदी साहित्य में पंकज चतुर्वेदी ने फणीश्वर नाथ रेणु, चंद्रकांत देवताले, अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं और नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयां जान' का उदाहरण देते हुए कहा कि हमारे यहां पर्यावरण की चिंता तो है लेकिन वह बहुत व्यापक रूप में सामने नहीं आई है.

दिल्ली विश्वविद्यालय के राजीव रंजन गिरि ने कहा कि प्रकृति और पर्यावरण एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं लेकिन उनके अलग-अलग अर्थ और भाव हैं. उन्होंने कहा कि हिंदी साहित्य में प्रकृति का चित्रण प्रतीकों के रूप में तो बहुत है, लेकिन चिंता न के बराबर है.

राजीव रंजन गिरि ने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजेश जोशी और अरुण कमल की कविताओं के उदाहरण और काशीनाथ सिंह की कहानी का उदाहरण देते हुए बताया कि हमारे साहित्य में पर्यावरण की कतिपय चिंता यदि है, तो समाधान नहीं है. उन्होंने कहा कि प्रकृति पर विजय जब से विकास का पर्याय बनी है तब से मुश्किलें और बढ़ी हैं.

हमारे यहां के गुरुकुल में पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों का लालन-पालन और संरक्षण होता था. उन्होंने कहा कि संस्कृत साहित्य में ही पर्यावरण की सुरक्षा का वैश्विक निदान है. यह संस्कृत साहित्य के पास ही उपलब्ध है. 'अभिज्ञान शाकुंतलम' और 'मेघदूत' के उदाहरण देकर उन्होंने प्रकृति और मनुष्य के बीच के सहज और गंभीर संबंधों को उजागर किया.

उर्दू के प्रख्यात विद्वान, शिक्षा शास्त्री और जवाहरलाल यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर अनवर पाशा ने दो महान हस्तियों महात्मा गांधी और लाल बहादुर शास्त्री का उल्लेख करते हुए कहा कि उन्होंने हमेशा भौतिक विकास का विरोध किया और अपने पूरे जीवन में सादगी को प्रोत्साहित किया. उनके लिबास से भी उनका चिंतन, उनका दर्शन हमें हमेशा पर्यावरण की रक्षा के संदेश देते रहे. उन्होंने कहा कि गांधी और शास्त्री के सिद्धांत पूरी मनुष्यता की भलाई के लिए थे. उन्होंने कहा कि मनुष्य ने प्रकृति के साथ शैतान जैसा रिश्ता निभाया है जबकि उसे बचाने के लिए हमें उसके साथ फ़रिश्ता बनना होगा. अनवर पाशा ने कई उर्दू कविताओं, जिनमें पर्यावरण की त्रासदियां अंकित थीं, को प्रस्तुत किया.

अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रयाग शुक्ल ने कहा कि हम बहुत आगे निकल आए हैं. अब पीछे लौटना संभव नहीं लगता. लेकिन फिर भी हमें पर्यावरण की सुरक्षा के लिए गम्भीर प्रयास करने आवश्यक हैं. उन्होंने कहा कि साहित्य भविष्य की घटनाओं का संज्ञान तो लेता ही है लेकिन उसके पास निदान नहीं होता है. वह लोगों को केवल सजग कर सकता है.

प्रयाग शुक्ल ने रामचंद्र शुक्ल को याद करते हुए कहा कि उन्होंने कहा था कि एक राष्ट्र केवल मनुष्य से नहीं बनता, बल्कि वहां के पर्वत, नदियों, झीलों, पशु-पक्षियों और वनस्पतियों से बनता है. हमें इसके वास्तविक अर्थ को समझना होगा, तभी शायद हम प्रकृति के पास दोबारा पहुंच पाएंगे.

कृष्णं वंदे जगद्गुरुं - श्रीकृष्ण को उनके नाम से पुकारने पर अर्जुन क्यों पछताने लगते हैं

हिंदू देवताओं की परंपरा में श्रीकृष्ण ऐसे हैं, जिन्हें बहुत सारे रूपों में रचा-सजाया और पूजा जाता है. कोई लड्डू गोपाल, तो कोई राधे रानी के प्रिय के तौर पर मानता - पूजता है. गीता के उपदेश का अनुशीलन करने वाले उन्हें जगदगुरु के तौर पर देखते और मानते हैं. सूरदास ने श्रीकृष्ण को ऐसा रचा कि आज भी कविता और कवियों के लोक में चंद्रमा से चमक रहे हैं. सूर के अलावा अष्टछाप के बाकी कवियों की व्याख्या भी अद्भुत है. कबीर ने 'गोविंद' कह, उन्हें गाया है. राजरानी मीरा तो पद रचते-रचते खुद ही कृष्ण की पटरानी बन गईं. श्रीकृष्ण के विग्रह में समाहित हो जाने वाले चैतन्यमहाप्रभु ने हरे कृष्णा का ऐसा गान किया कि आज तक उसकी गूंज भौगोलिक सीमाओं से परे दुनिया भर में सुनाई देती है. यहां तक कि इस्लाम के अनुनाई सैय्यद इब्राहिम, रसखान बन कर कृष्ण की भक्ति में खुद डूबे और पढ़ने वालों को सराबोर कर दिया. युद्ध में तलावार चलाने वाले अब्दुल रहीम खानेखाना की कृष्ण भक्ति लाजवाब है. कृष्ण पर काजी नजरुल इस्लाम की रचनाएं भी मोहक हैं. कृष्ण काव्यधारा कुछ ऐसी प्रवाहशील है कि आज भी बहुत सारे रचनाकार अपनी अपनी रुचि और दृष्टि से श्रीकृष्ण को रच और गा रहे हैं.

गीता का अविरल आख्यान

इन तामाम रचनाओं में सबसे पुरानी और अनुपम होने का दर्जा श्रीमद्भगवद् गीता को है. इसे ही गीता के नाम से जाना जाता है. इस पर एकेडेमिक हलकों में भी खूब सारा शोध और विचार-विमर्श हुआ है. भारत के अलावा दुनिया के और हिस्सों में भी हिंदू धर्म की चर्चा होने पर गीता का न सिर्फ जिक्र किया जाता है, बल्कि बाकायादा एकेडेमिक शोध भी होते रहे हैं. 'महाभारत' या 'जय' नाम के ग्रंथ से ली गई इस रचना को व्यावहारिकता के निकट मान कर दर्शन के स्तर पर भी खूब मंथन हुए हैं. अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग भाषाओं में संस्कृत मूल की इस रचना का अनुवाद और उसकी टीका रची है. कृष्ण के अपने स्वरूप की ही तरह गीता में भी रसिकों, विद्वानों और साधकों को अपने-अपने अर्थ मिले हैं.

जिस विद्वान को जो कुछ तत्व गीता में मिला उसने उसी को अपनी टीका का आधार बनाया. अष्टावक्र से लेकर आचार्य रजनीश तक सभी ने गीता पर अपनी तार्किक और सटीक लगने वाली व्याख्याएं की हैं. बालगंगाधर तिलक और महात्मा गांधी की गीता की टीकाएं अपने-अपने तरीके से तार्किक लगती हैं. इस्कॉन की 'यथारूप गीता' में ग्रंथ के श्लोकों को हिंदी में समझने भर की व्याख्या की गई है. इस्कॉन संगठन के आकार के मुताबिक ही इसका भी खूब प्रचार प्रसार हुआ.

यथार्थ गीता

श्रीमद्भगवद् गीता की अपने तौर की एक अनूठी व्याख्या स्वामी अड़गड़ानंद ने 'यथार्थ गीता' के नाम की है. उन्होंने अंगरेजी समेत भारत की तकरीबन सभी भाषाओं में प्रकाशित इस पुस्तक में गीता के श्लोकों को अलग ही नजरिए से देखा है. उनके मुताबिक गीता का उद्देश्य कर्मकांड नहीं है. न ही श्रीकृष्ण ने आग जला कर उसमें धूप और घृत के यज्ञ का उपदेश किया है. स्वामी अड़गड़ानंद इस पर भी प्रश्न खड़ा करते हैं कि महाभारत में जितनी अक्षोहणी सेना के युद्ध लड़ने का वर्णन किया गया है, उतनी संख्या में लोगों के धरती के किसी हिस्से में एक साथ खड़ा होना भी मुश्किल है. यथार्थ गीता में अड़गड़नंद लिखते हैं -

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते

अर्थात "कौन्तेय (अर्जुन) यह शरीर ही एक क्षेत्र है, जिसमें बोया हुआ भला और बुरा बीज संस्कार-रूप से सदैव उगता है. दस इंद्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पांचों विकार और तीनों गुणों के विकार इस क्षेत्र के विस्तार हैं."

तो फिर कृष्ण कौन हैं

गीता के 11वें अध्याय के 41वें श्लोक में अर्जुन कहते हैं -

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।

अजानता महिमानं तवेदं, मया प्रमादात्यप्रणयेन वापी।।

अर्थात, आपके इस प्रभाव को न जानते हुए मेरे द्वारा आपको सखा, मित्र मान कर प्रेम अथवा प्रमादबस हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा के रूप में संबोधित किया गया. आगे चल कर 42वें, 43वें और 44वें श्लोक में अपने इन संबोधनों के लिए अर्जुन श्रीकृष्ण से क्षमा मांगने लगते हैं. अर्जुन कहते हैं "आप मेरे अपराधों को वैसे ही क्षमा कर दें जैसे पिता पुत्र के, मित्र, मित्र के या प्रिय अपने प्रेमी के अपराधों को क्षमा कर देता है."

यहां पर अड़गड़ानंद ने अपनी टिप्पणी की है कि कृष्ण और अर्जुन मित्र तो थे ही, श्रीकृष्ण यदुकुल में पैदा हुए थे, उनका नाम भी कृष्ण ही था, फिर अर्जुन क्षमा किस बात के लिए मांगते हैं? इसी को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि ज्ञान होने पर अर्जुन जान गए कि श्रीकृष्ण ओSकार है. इसके लिए अड़गडानंद लिखते हैं कि पूरी गीता में खुद कृष्ण ने पांच बार ओSम जपने पर बल दिया है. गीता के आठवें अध्याय के 13वें श्लोक में श्रीकृष्ण बता चुके हैं-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्यावहारन्मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात, जो ओम् इति -ओम इतना ही जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, उसका जप और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह परमगति को प्राप्त होता है.

भीष्म साहनी का 'तमस': आज और गहरा रहा है अंधेरा

*भोपाल के मशहूर शायर फजल ताबिश ने लिखा है, **'रेशा-रेशा उधेड़ कर देखो, रोशनी कहां से काली है.'** 1947 का दौर जब देश आजादी का अनुभव करना चाहता था तब मुक्ति की इस रोशनी में सांप्रदायिकता के काले रेशे शामिल थे. वे रेशे जो हमेशा के लिए गहरे घाव दे गए. तब से तमस (अंधकार) ऐसा छाया कि उसे मिटाने के लिए आज भी रोशनी कुछ कम पड़ रही है. इस अंधकार को उजागर करने के लिए प्रख्यात कथाकार-उपन्यासकार भीष्म साहनी ले 'तमस' लिखा. इस 'तमस' को हम जब जब पढ़ते हैं हमारे आसपास का अंधकार अधिक समझ आता है. इस अंधकार के कारकों का पता चलता है. वे कारक जो अंधेरे को कायम रखना चाहते हैं.*

THE CORE IAS

- उन्हें 'तमस' के सहारे याद करना सबसे मौजूं कार्य भी है. 8 अगस्त 1915 को रावलपिंडी में जन्मे भीष्म साहनी 1942 के भारत छोडो आंदोलन में शामिल हुए थे. विभाजन के बाद उनका परिवार भारत आ गया था. उन्होंने भारत आकर समाचार पत्रों में कार्य किया. बाद में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जुड़ गए. अंबाला और अमृतसर में भी शिक्षण के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने. भीष्म साहनी ने 1957 से 1963 तक मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह में अनुवादक के रूप के कार्य किया था. उनकी पहली कहानी 'अबला' इंटर कॉलेज की पत्रिका में तथा दूसरी कहानी 'नीली आंखें' 'हंस' में छपी. उन्होंने 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'मुआवजे' जैसे प्रसिद्धि नाटक लिखे हैं. साहित्य में उनके योगदान को देखते हुए 1998 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया. साहित्य अकादमी पुरस्कार और सोवियत लैंड नेहरू जैसे कई प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित भीष्म साहनी का 11 जुलाई 2003 को निधन हुआ.
- वे 30 वर्ष के थे जब देश आजाद हुआ था. यह आजादी विभाजन की त्रासदी लेकर आई थी. विभाजन की त्रासदी का दर्द वास्तव में सांप्रदायिक दंगों के आधार पर खड़ा है. भीष्म साहनी ने इन दंगों के कारण, परिणाम और

दूरगामी असर को अपने उपन्यास 'तमस' में उजागर किया है. आजादी के 25 साल बाद 1973 में प्रकाशित 'तमस' का कथानक यूं तो 5 दिनों की गतिविधियों में सिमटा है मगर इसका विस्तार सांप्रदायिता की सोच और उसके तमाम पहलुओं तक फैला है. भीष्म साहनी 'तमस' लिख पाए क्योंकि यह उनका भोगा हुआ यथार्थ था. उन्होंने अपने आसपास जो देखा था वह खरे रूप में कागज पर उतार दिया. यह सच साफगोई से लिखा गया है कि उपन्यास कम और एक डॉक्यूमेंट्री अधिक लगता है.

- 'तमस' का परिवेश मार्च-अप्रैल, 1947 का रावलपिंडी और यहां हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे है. ऐतिहासिक रूप से देखें तो यही वह समय है अंग्रेज शासन अंत की ओर था, तय योजना के अनुसार केंद्र में अंतरिम सरकार बन चुकी थी. विभाजन की सहमति हो चुकी थी. इस राजनीतिक निर्णय के परिणाम दिल्ली नहीं सुदूर क्षेत्रों में दिखाई देने शुरू हो गए थे. राजनीतिक दबाव समूह अपने अनुकूल माहौल बनाने के लिए हर संभव हथकंडे अपना रहे थे. इन हथकंडों में सबसे बड़ा 'टूल' था दंगे. पंजाब में सांप्रदायिक दंगों की आग जलाने की तैयारी से 'तमस' शुरू होता है. एक राजनेता मुराद अली दंगे भड़काने के उद्देश्य से सफाईकर्मी नत्थू को धोखे में रख कर सुअर मारने के लिए कहता है. नत्थू बड़ी मशक्कत से सुअर मारता है क्योंकि उसे बताया गया था कि मरा हुआ सुअर डॉक्टरों के काम आएगा. वह तो तब सन्न रह जाता है जब पता चलता है कि उसके द्वारा मारा गया सुअर मस्जिद के सामने फेंका गया है और इसके बाद शहर में सांप्रदायिक तनाव फैल गया. सफाईकर्मी नत्थू आत्मग्लानि से भर जाता है.
- जब शहर में कौमी एकता की बात आती है तब भी नत्थू का चौंकना स्वाभाविक था कि दंगे की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला मुराद अली शांति के नारे लगा रहा है. आज पाठक जब इस तथ्य से रूबरू होते हैं तो वे चौंकते नहीं है क्योंकि आज तो यह सबका जाना-माना सच बन चुका है. इसी तरह अखाड़ा संचालक मास्टर देवव्रत अपने किशोर शिष्य रणवीर को वीरता की कहानियां सुना कर दीक्षित कर रहे हैं. एक संप्रदाय से बदला लेने के लिए वे मुर्गी मारना सीखा कर रणवीर को हिंसक बनाते हैं. जो कभी मुर्गी को नहीं मार पाता था वह ऐसा हिंसक हो जाता है कि एक सूनी गली में एक कमजोर बूढ़े इत्रफरोश को मार देता है. उस इत्रफरोश को मारने में उसके हाथ नहीं कांपते हैं जो भय के माहौल में सहारा देते हुए रणवीर को अगली गली तक छोड़ने जाता है.

- जब 'तमस' लिखा गया था तब यह दृश्य उतना आम नहीं हुआ था जितना आज है कि हम कपड़ों से पहचान कर की जा रही हत्याओं के साक्षी बन रहे हैं. दंगों के खिलाफ और कौमी एकता की बात करने वाले उस वक्त भी 'कौम के गद्दार' कहे गए और आज भी कहला रहे हैं.नहीं भूलना चाहिए जब 'ब्रेन वॉश' कर समाज में दंगों का रसायन फैलाया जा रहा था तब देश आजादी की बागडोर थामने की तैयारी कर रहा था. तब आजादी से बड़ी बात सांप्रदायिकता हो गई थी. लोग घरों की देहरी और कब्र पर दीपक लगाने जैसे परंपरागत कार्य भी भूल गए थे. अंग्रेजी की फुट डालो और राज करो की नीति में स्थानीय संगठन बढ़-चढ़ कर भागीदारी कर रहे थे. इस तरह अंग्रेजों का स्वार्थ सिद्ध हो रहा था. 'तमस' के एक संवाद पर गौर कीजिए. ब्रिटिश अधिकारी रिचर्ड अपनी पत्नी लिजा को बताते हैं कि गांव के लोग हमारे और एक दूसरे के खिलाफ लड़ रहे हैं. आजादी के लिए वे हमारे खिलाफ लड़ रहे हैं तो धर्म के नाम पर वे आपस में लड़ रहे हैं. इस पर लिजा कहती है कि रिचर्ड चतुर बनने की कोशिश न करें. आजादी के लिए वे आपसे लड़ रहे हैं लेकिन धर्म के नाम पर आप उन्हें एक-दूसरे से लड़वाते हैं. क्या यह सही नहीं है?

- भीष्म साहनी लिखते हैं, 'समुद्र के घटते ज्वार की तरह, दंगों का ज्वार भी शांत हो गया था और अपने पीछे सभी प्रकार का कूड़ा-कचरा छोड़ गया था.' हर बार दंगे मानवता का छोटा बना कर जाते हैं. मानवता और संवेदना

को विस्तार देने के सारे प्रयास अक्सर छोटे पड़ जाते हैं. 'तमस' में लेखक भीष्म साहनी ने हमारे समाज, धर्म, संगठन और राजनीति के समूचे कर्मकांड को उघाड़ कर रख दिया है. यह 1947 के समय जितना प्रासंगिक था, 1973 में भी था और 2023 में सबसे ज्यादा प्रासंगिक है. इस प्रासंगिकता के कारण ही, बल्कि, बढ़ती सांप्रदायिकता के जवाब में मानवीय पहल करने के लिए ही 'तमस' को बार-बार पढ़ना चाहिए.

मैट्रिक पास होकर भी बने हिंदी के प्रोफेसर

क्या आप ऐसे किसी लेखक को जानते हैं जिन्हें महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पत्र में "हिंदी भूषण" लिखते थे, क्या आपको पता है कि जब निराला की मुक्त छंद की पहली कविता 'जूही की कली' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लौटा दी तो किसने छापी थी? ये लेखक और कोई नहीं बल्कि आश्चर्य शिवपूजन सहाय थे जो मैट्रिक पास होकर भी हिंदी के प्रोफेसर नियुक्त किए गए थे. आज उसी लेखक की 130वीं जयंती है. शिवपूजन सहाय का जन्म 9 अगस्त, 1893 को बिहार के शाहाबाद के उनवांस में हुआ था.

बिहार के बक्सर जिले के उनवांस में जन्मे आचार्य शिवपूजन सहाय के बारे में रामधारी सिंहर दिनकर ने लिखा था अगर शिवपूजन जी की सोने की मूर्ति बनाई जाए और उस पर चांदी का वर्क चढ़ाया जाए तो हिंदी साहित्य के प्रति उनकी सेवा की भरपायी नहीं की जा सकती.

दरअसल, हिंदी साहित्य की दुनिया में कहानीकारों, उपन्यासकारों, कवियों और आलोचकों की चर्चा तो बहुत हुई है और उनका मूल्यांकन भी हुआ है लेकिन हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता के निर्माण में अपना जीवन खपा देने वाले हिंदी सेवियों की चर्चा कम हुई है. इन हिंदी सेवियों ने अपने लेखन से ज्यादा ध्यान हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसकी सेवा करने में लगा दी हो चाहे वह महावीर प्रसाद द्विवेदी हों, अंबिका प्रसाद वाजपेयी हों, गणेश शंकर विद्यार्थी हों, विष्णु पराड़कर हों, किशोर दास वाजपेई हों या फिर कामिल बुल्के.
आज के दिन एक ऐसे ही लेखक का जन्म हुआ था जिसने हिंदी गद्य को ठेठ हिंदी का ठाठ बनाया, बोलियों मुहावरों से समृद्ध किया, ज्ञान-विज्ञान के भंडार को विकसित किया, हिंदी पत्रकारिता को पल्लवित पुष्पित किया और नई पीढ़ी का निर्माण किया, जो हिंदी का अजातशत्रु, संत और दधीचि भी कहलाया. हिंदी की निष्काम सेवा करने वाले आचार्य शिवपूजन सहाय ऐसे ही एक लेखक थे जिनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महापंडित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व घुला-मिला था और इन सभी लेखकों से उनका निजी सम्बंध रहा. उनकी रचनाएं छापी, उन पर संस्मरण आदि लिखे. 1912 ई. में आरा नगर के एक हाईस्कूल से शिवपूजन सहाय ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी. उसके बाद उन्होंने किसी स्कूल या कॉलेज से किसी प्रकार की विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की.

शिवपूजन सहाय ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह हिंदी पत्र और भाषा की निष्काम सेवा की तो जयशंकर प्रसाद की तरह भारतीय संस्कृति को अपने जीवन में अपनाया. प्रेमचन्द की तरह प्रगतिशील मूल्यों को बनाए रखा तो सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की तरह अपने स्वाभिमान की रक्षा की. यही नहीं आजाद भारत में हिंदी की पहली महत्वपूर्ण संस्था का निर्माण किया जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन के कार्यों का विस्तार था.

आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने लेखन को हिंदी सेवा के लिए दांव पर लगा दिया. 1926 में हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास 'देहाती दुनिया' लिखने वाले और 'मुंडमाल' तथा 'कहानी का प्लॉट' जैसी विलक्षण कहानियां लिखने वाले सहाय जी ने अपना जीवन दूसरों की रचनाओं के संपादन संशोधन में लगा दिया.

शिवपूजन सहाय कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के बीच एक कड़ी की तरह हैं. इन तीनों के साथ उनका रोज का उठना-बैठना रहा बल्कि उन तीनों की रचनाओं के संपादन संशोधन का भी उन्हें श्रेय जाता है. इतना करने के बाद भी शिवपूजन सहाय ने अपना कभी प्रचार नहीं किया और नहीं ढोल पीटा बल्कि खुद को हमेशा पर्दे के पीछे रखा. इसलिए उनके बारे में भी कहा गया कि वह हिंदी साहित्य की नींव की ईंट थे जो कभी दिखाई नहीं पड़ता. जगदीश चन्द्र माथुर का कहना था शिवपूजन सहाय बीसवीं सदी में हिंदी साहित्य के सबसे बड़े संत थे. उन्होंने 13 पत्रिकाओं, असंख्य ग्रंथों और पुस्तकों का सम्पादन किया. नाट्यमण्डलियों में अभिनय किया, नाटकों की समीक्षा भी लिखी, राजनीतिक लेख लिखे तो व्यंग्य भी लिखे. उन्होंने प्रेमचन्द की तरह गांवों के विकास पर ध्यान दिया.आजादी की लड़ाई में प्रेमचन्द की तरह गांधी जी के आह्वान पर 1921 में सरकारी नौकरी भी छोड़ दी.

आचार्य शिवपूजन सहाय को काजी नज़रुल इस्लाम के साथ 1960 में पद्मभूषण से सम्मानित किया पर आर्थिक अभाव में वह उसे लेने दिल्ली भी नहीं आ सके. उन्हें 1962 में जेपी, रामधारी सिंह दिनकर और राहुल सांकृत्यायन के साथ मानद डीलिट की उपाधि से भी सम्मानित किया गया.

श्रीकृष्ण का यशगान - मीरा और सूर के स्वर में, रहीम-रसखान और नज़रुल इस्लाम के गीत भी

श्रीकृष्ण सोलह कलाओं से परिपूर्ण हैं. हर रूप में उनकी लीला मोहक है. मैया यशोदा को रिझाने वाले लड्डू गोपाल जब ब्रजभूमि में निकलते हैं, तो सभी गोपिकाएं मोहित हो जाती हैं. सभी को लगता है कि केशव सिर्फ उन्हीं के साथ रास रचा रहे हैं. और ये प्रतीति हर एक को होती है. आगे कुरुक्षेत्र की रणभूमि में उतरते हैं तो वहां भी सबको मोह लेते हैं. प्रभाव ये होता है कि विराट स्वरूप दर्शन अर्जुन के सिवाय किसी और को नहीं होता. अर्जुन इस स्वरूप को इस वजह से देख पाते हैं क्योंकि वे खुद अनुराग हैं. दरअसल केशव को वही पा सकता है जिसमें अनुराग हो. जिसके अंतस में जितना अनुराग, उतना ही दिव्य और रोचक रूप - स्वरूप भी दिखता है.

आध्यात्मिक तौर पर ऐसी प्रतीति को प्रमाणित या खारिज करने का हक संतों, सिद्धों और साधकों को ही है. लेकिन हिंदी कविता में ये साबित हो चुका है कि कृष्ण रचनाकार के अनुराग से ही प्रकट होते हैं. सूर का अनुराग दिव्य है. माना जाता है कि वे देख नहीं पाते थे. इसे अगर कुछ ऐसे कहा जाए तो ज्यादा सही होगा कि सूर कृष्ण के अलावा कुछ और देखते ही नहीं. तभी तो उनका एक-एक शब्द सीधे रसिकों-पाठकों के हृदय में उतर जाता है-

मैया मैं नहीं माखन खायो
भोर भई गइन के पीछे

मधुवन मोहीं पठायो
चार पहर बंसीबट भटक्यो
सांझ परे घर आयो. . . .

सूरदास अपने कान्हा के हर रूप का वर्णन करते हैं. उनकी रचना का ही असर है कि जहां कहीं भी कृष्ण का जिक्र किया जाता है, समझाने के लिए सूरदास जी का नाम भी आ ही जाता है. विचित्र ये है कि लौकिक दृष्टि-क्षमता सूरदास जी किसी भी तरह से अपने प्यारे श्रीकृष्ण के निराकार स्वरूप की अराधना नहीं करना चाहते. लगता है उन्होंने गोपिकाओं के मुंह से अपना ही सवाल उधौ जी के सामने रख दिया है -

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो अपनो जो रे! कहैगो गाँसी॥
सुनत कौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥

उधौ जी ज्ञानमार्गी थे. ज्ञानमार्ग को अध्यात्म या भारतीय काव्य परंपरा में किसी प्रकार भी कमतर नहीं माना गया है. उधौ जी को प्रेममार्ग को समझाने के लिए श्रीकृष्ण उन्हें गोपियों के पास भेजते हैं. गोपिकाएं उन्हें समझा भी देती हैं. अपने प्रश्नों से निरुत्तर कर देती हैं. आखिरकार उधौ प्रेम में पग कर लौट आते हैं. फिर भी सूरदास जी को संतोष नहीं होता. उन्होंने इसके अपने दूसरे पदों में भी निराकार ब्रह्म की आराधना करने से करीब करीब मना ही कर दिया है -

अबिगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूंगो मीठे फल की रस अन्तर्गत ही भावै॥
परम स्वादु सबहीं जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कों अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रैख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं, तातों सूर सगुन लीला पद गावै॥

कुल मिलाकर ये सूरदास को तो उनके केशव पूरे रूप रंग और अपनी सारी लीलाओं के साथ चाहिए. यही स्थिति मीरा की भी है. उन्हें तो अपने प्रभु के स्वरूप का ही ध्यान आता है. ये अलग बात है कि बहुत से विद्वान उनकी भक्ति पर अलग अलग तरीक से व्याख्या करते हैं.

रसखान

श्रीकृष्ण के इस रूप-चित्रण का असर कहिए या श्रीकृष्ण की लीला का प्रभाव सैय्यद इब्राहिम रसखान बन गए. कहा जाता है कि उन्होंने श्रीमदभागवत कथा के असर में आकर कृष्ण की लीला का गायन शुरु किया. लेकिन जब उनकी रचनाएं याद आती हैं तो उनका असर देर तक दिल-दिमाग में कायम रहता है -

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर कारन।

जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन॥

ये तो महज कुछ लाइने हैं. जिन्होंने रसखान को अपनी क्लास की टेक्सबुक में पढ़ा होगा उन्हें पता है कि नाम के अनुरुप ही रस के खान ही हैं रसखान.

रहीम दास

सम्राट अकबर के संरक्षक बैरम खान के सुपुत्र अब्दुल रहीम ख़ानेखाना वैसे तो अकबर के मित्र और सेनापति थे, लेकिन उन्हें कृष्ण से ऐसी लगन लगी कि उन्होने श्रीकृष्ण पर खूब सारी रचनाएं की हैं. वैसे रहीमदास ने कृष्ण भक्ति से हट कर भी खूब लिखा और उनकी रचनाएं लोगों के दिमाग में छप सी गईं. आज भी लोग बात-बात में रहीमदास की रचनाओं का हवाला देते रहते हैं. उन्होंने श्रीकृष्ण को लेकर खासतौर से मदानाष्टक लिखा. इसी से एक रचना देखें -

शरद-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे वंशी बजाई।।
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी।
मदन- शिरसि भूय क्या बला आन लागी।।

काजी नज़रुल इस्लाम

अमीर खुसरो और उनकी परंपरा के कई कवियों ने कृष्ण भक्ति पर खूब लिखा. नजीर अकबराबादी के भी प्रिय विषय के तौर पर श्रीकृष्ण और उनकी लीला रही है. नवाब वाजिद अली शाह, मौलाना हसरत मोहानी, अली सरदार जाफरी और उनके बाद भी कई मुस्लिम शायरों ने कृष्ण काव्य को अपना विषय बनाया. लेकिन इन सबसे गाढ़ा रंग काजी नज़रुल इस्लाम पर चढ़ा. बांग्लादेश के इस राष्ट्रीय कवि ने श्रीकृष्ण की वंदना की तो अद्भुत की-

जयतू श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण मुरारी शंखचक्र गदा पद्मधारी।
गोपाल गोविन्द मुकुन्द नारायण परमेश्वर प्रभू विश्व-बिहारी।।
सूर नर योगी ऋषि वही नाम गावे,
संसार दुख शोक सब भूल जावे,
ब्रहमा महेश्वर आनन्द पावे गावत अनन्त ग्रह-नभचारी।।

THE CORE IAS

काज़ी नज़रुल इस्लाम सांप्रदायिक सद्भाव की मिसाल थे. उनकी रचनाओं चाहें वे कविता हों, गीत हों, उपन्यास या फिर कहानियों में मानवता, समानता और धार्मिक भक्ति के संदेश से ओत-प्रोत हैं. नजरुल ने लगभग 3000 गानों की रचना की. इनमें से अधिकांश गीतों में खुद उन्होंने ही संगीत और स्वर दिया है. क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम साब के गीतों को 'नजरुल संगीत' या "नजरुल गीति" नाम से जाना जाता है.

पश्चिम बंगाल के चुरुलिया गांव में 24 मई, 1899 को काज़ी नज़रुल इस्लाम का जन्म हुआ था. इनके पिता का नाम फ़कीर अहमद एक इमाम और स्थानीय मस्जिद के कार्यवाहक थे. काज़ी नज़रुल की शुरुआती तालीम मस्जिद द्वारा चलाये जा रहे मदरसे में हुई थी. नज़रुल पर उनके चाचा फज़ले करीम का बहुत असर पड़ा. फज़ले करीम की एक संगीत मंडली थी जो जगह-जगह घूमती हुई गीत-संगीत का प्रदर्शन करती थी. काज़ी नज़रुल भी अपने चाचा

की इस मंडली में शामिल हो गए और गाना गाने लगे. उन्हें मंडली के लिए गीत भी लिखे. यह मंडली पूर्वी भारत में छोटी-छोटी नृत्य नाटिकाएं करती थीं जो स्थानीय लोककथाओं खासकर हिंदू धार्मिक ग्रंथों पर आधारित होती थीं. मंडली के साथ विचरण करते हुए काज़ी नज़रुल ने संस्कृत और बांग्ला भाषा का भी ज्ञान लिया और रामायण-महाभारत का अध्ययन किया. वे हिंदू पुराणों से बहुत प्रभावित हुए. उन्होंने अपनी मंडली के लिए 'युधिष्ठिर गीत', 'दाता कर्ण' और 'शकुनि का वध' जैसे नाटक लिखे.

इस तरह काज़ी नज़रुल इस्लाम धीरे-धीरे कृष्ण भक्ति की तरफ आकर्षित होते चले गए. उन्होंने कृष्ण के बहुत से भजनों की रचना की. कृष्ण पर लिखे उनके भजन बहुत मशहूर हुए. आइए, पढ़ते हैं काज़ी नज़रुल इस्लाम के कृष्ण भजन-

कृष्ण कन्हइया आओ मन में मोहन मुरली बजाओ।
कान्ति अनुपम नील पद्मासन सुन्दर रूप दिखाओ।
सुनाओ सुमधुर नूपुर गुंजन
"राधा, राधा" करि फिर फिर वन वन
प्रेम-कुंज में फूलसेज पर मोहन रास रचाओ;
मोहन मुरली बजाओ।
राधा नाम लिखे अंग अंग में,
वृन्दावन में फिरो गोपी-संग में,
पहरो गले वनफूल की माला प्रेम का गीत सुनाओ,
मोहन मुरली बजाओ।
–
जयतू श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण मुरारी शंखचक्र गदा पद्मधारी।
गोपाल गोविन्द मुकुन्द नारायण परमेश्वर प्रभू विश्व-बिहारी।।
सूर नर योगी ऋषि वही नाम गावे,
संसार दुख शोक सब भूल जावे,
ब्रह्मा महेश्वर आनन्द पावे गावत अनन्त ग्रह-नभचारी।।
जनम लेके सब आया ये धराधाम
रोते रोते मैं प्रथम लिया वो नाम।
जाऊंगा छोड़ मैं इस संसार को सुनकर कानों में भयहारी।।
गोपाल गोविन्द मुकुन्द नारायण परमेश्वर प्रभू विश्व-बिहारी।
–

जगजन मोहन संकटहारी
कृष्णमुरारी श्रीकृष्णमुरारी।
रास रचावत श्यामबिहारी
परम योगी प्रभू भवभय-हारी।।
गोपी-जन-रंजन ब्रज-भयहारी,

THE CORE IAS

पुरुषोतम प्रभु गोलोक-चारी।।
बंसी बजावत बन वन-चारी
त्रिभुवन-पालक भक्त-भिखारी,
राधाकान्त हरि शिखि-पाखाधारी
कमलापति जय गोपी मनहारी।।

–

काज़ी नज़रुल इस्लाम अधेड़ उम्र में 'पिक्स रोग' से ग्रसित हो गए. बीमारी के वे साहित्यकर्म से अलग हो गए. बांग्लादेश सरकार के आमन्त्रण पर वे 1972 में परिवार के साथ ढाका आ गये. उन्हें बांग्लादेश की राष्ट्रीयता प्रदान की गई. 29 अगस्त, 1976 को 77 वर्ष की उम्र में उनका निधन हो गया. बांग्लादेश में दुर्गा और कृष्ण को लिखे उनके भजन आज भी पूरी श्रद्धा के साथ गाये जाते हैं.

ख़ानेख़ाना रहीम की रचनाओं में आलोचकों ने बहुत कुछ खोजा और लिखा है, *लेकिन हिंदी पट्टी के लोगों के लिए रहीम अनुभवों की खान हैं. लोगों के दिमाग में रहने वाले रहीम एक ऐसे कवि हैं, जिनके दोहे बात-बात पर कहे, सुने और सुनाए जाते हैं. दिल्ली बादशाह हुमायूं के मकबरे के पास उसी तरह के गुंबद के नीचे चिर निद्रा में लीन इस कवि के बगैर हिंदी कविता का एकेडेमिक पठन-पाठन भी नहीं होता. जबकि खुद इन्होंने फारसी में भी खूब लिखा है और उस समय जिस भाषा में लिख रहे थे उसे हिंदवी कहा जाता था.*

वैसे तो हिंदवी रहीम के दोहे ही ज्यादा प्रचलित हुए. उन्होंने और भी कई श्रेणियों की काव्य रचनाएं कीं. संस्कृत में भी उन्होंने छिट-फुट लिखा और फारसी से अनुवाद का काम भी खूब किया. कृष्ण-भक्ति शाखा में उन्होंने मदानाष्टक लिखा तो गंगाष्टकम् की भी रचना की. रहीम दास की रचनाओं को एक स्थान पर ला कर उसे पेपरबैक में राजपाल एंड सन्स ने कालजयी कवि और उनका काव्य के तहत प्रकाशित किया है. इस पुस्तक का संपादन माधव हाड़ा ने किया है. पुस्तक में रहीम के प्रमाणित दोहों को एक जगह संकलित किया गया है. माधव हाड़ा मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में आचार्य और विभागाध्यक्ष रहे हैं. उन्हें भक्तिकाल के विशेषज्ञ के तौर पर जाना जाता है. वे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला के फैलो भी रह चुके हैं.

रहीम की दोहावली के अलावा पुस्तक में सोरठा, नगर शोभा, बरवै नायिका भेद, बरवै भक्ति प्रधान, शृंगार सोरठ, मदानाष्टक, घनाक्षरी जैसे फुटकर काव्य और कुछ संस्कृत की रचनाओं को शामिल किया गया है. पुस्तक की तारीफ इसलिए भी की जानी चाहिए कि इतनी पतली किताब में एक जगह इतना सब कुछ मिलना सुखद है. वरना रहीम दास के प्रमाणिक दोहे के लिए लाइब्रेरी जाने के सिवाय कम ही विकल्प मिलते हैं. यहां ध्यान रखने योग्य है कि रहीम दास, कबीर दास और तुलसी दास जैसे बड़े कवियों के नाम पर बहुत सारे दोहे, ह्वाट्सएप यूनिवर्सिटी खुलने से बहुत पहले से जनमानस में प्रचलित हैं, जो दरअसल इन कवियों के नहीं हैं. बल्कि उनकी शैली को अपना कर गढ़ दिए गए हैं.

पुस्तक की शुरुआत में संपादक ने लिखा है कि 'बरवै' रहीम का प्रिय छंद है और उन्हीं के संदेशों के बाद बरवै रामायण की रचना की गई. रोचक ये है कि अपने ग्रंथ बरवै की रचना करते हुए शुरुआत में रहीम ने लिखा है-

श्रीरामोजयति अथ ख़ानख़ाना कृत बरवै. साथ ही तुलसी को भेजे संदेश का जिक्र करते हुए संपादक हाड़ा ने एक प्रकार से गोस्वामी तुलसी दास से उनके संवाद की पुष्टि भी की है.

रहीम की दोहावली को प्रामाणित तौर पर प्रकाशित करने से रहीम में रुचि रखने वालों को बहुत मदद मिलेगी. ये मदद इस कारण भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बहुत सारे लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपनी कोर्स की किताबों में तो रहीम को पढ़ा है या फिर उनके बुजुर्गों ने रहीम के दोहे सुनाए थे, लेकिन समय बीतने के बाद रहीम के दोहे का कोई हिस्सा उन्हें याद नहीं है और वे पूरे दोहे की खोज में हैं. पुस्तक में उन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं जो अब प्रचलन में नहीं है या अपेक्षाकृत कठिन हैं.

रोचक है कि दोहावली की पहली रचना के तौर पर रहीम के उस दोहे को स्थान दिया गया है, जिसमें उन्होंने गंगा से आग्रह किया है वे उन्हें शिव बनाएं जिन्होंने गंगा को सिर पर रखा -

अच्युत चरण तरंगिण, शिव सिर मालति भाल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल।।
रहीम के काव्य का औदात्य और हिंदू धर्म के प्रति उनका सम्मान उनके इस एक दोहे से ही प्रकट हो जाता है. आगे चल कर एक दोहा मिलता है -
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जहि रजि मुनिपत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।।
हिंदू धार्मिक कथाओं के जानकार रहीम ने इस दोहे में हाथी जैसे विशाल प्राणी के सिर पर बार-बार धूल फेंकने की जो कैफियत पेश की है उसने दोहे सौंदर्य कई गुना बढ़ा दिया है. रहीम योद्धा थे इस कारण उनके दोहों में व्यावहारिता कूट-कूट कर भरी दिखती है. कुछ दोहे देखें -

लोहे क न लोहार की, रहिमन कही विचार।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार।।
समय लाभ सम लाभ नहीं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।
नगर शोभा में उन्होंने अलग-अलग जाति (जाति व्यवस्था वाली) की नायिकाओं के बारे में वर्णन किया है. ये रोचक तो है लेकिन आज के दौर में अगर इसका राजनीतिक असर देखा जाया तो इसके प्रभाव अलग तरह के हो सकते हैं. इसे ही लेकर आलोचक रहीम के सामंती सोच पर प्रहार भी करते रहे हैं.
बरवै नायिका भेद की शुरुआत में उन्होंने मंगालाचरण की शुरुआत ही देवी शारदा की वंदना से की है
बंदौ देवी सरदवा, पद कर जोरी।
बरनत काव्य बरैवा, लगैन खोरी।।
इसी तरह भक्ति प्रधान बरैव की शुरुआत में रहीम विघ्नहर्ता श्री गणेश और शंकर जी की स्तुति करते दिख रहे हैं -

बंदौ बिघन- बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस।
निर्मल बुद्धि प्रकाशन, सिसु ससि सीस।।
पुस्तक में शृंगार रस सोरठ के छह दोहे लिए गए हैं -

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहीं बुझाय, भभकि भभकि बारि बर उठै।।
'मदानाष्टक' को रहीम की अत्यंत उत्कृष्ट रचनाओं में शामिल किया जाता है. इसमें उन्होंने गोपिकाओं और कृष्ण के जरिए प्रेम का शानदार वर्णन किया है -

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार की जुलफें।
अली कलित बिहारी आपने जी की कुलफें।।
ऐसा नहीं कि 'मदनाष्टक' में रहीम ने इस तरह से फारसी शब्दों का ही प्रयोग किया है. बल्कि सहज और ब्रज को छूती भाषा में इसकी रचना की है.

सकल शशिकला को रोशनी-हीन लेखौं।
अहह! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं।।
पुस्तक रहीम में घनाक्षरी के साथ रहीम के संस्कृत की भी कुछ रचनाएं ली गई हैं. खास बात ये है कि इस संकलन में रहीम के कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो दरअसल, बहुभाषा श्लोक कहे जा सकते हैं.

भार्ता प्राची गतो में, बहुरि न बगदे, शूं करुं रे हवे हूं।
माझी कर्माचि गोष्ठी, अब पुन शुणसि गांठ धेलो इ ईठे।।
म्हारी तीरा सुनोरा, खरच बहुत है, ईहरा टाबरा रो,।
दिट्ठी टैंडी दिलों दी, इश्क अल् फ़िदा ओडियो बच्चो नाडू।।
इसमें रहीम ने उस स्त्री का वर्णन किया है जिसके पति विदेश चले गए हैं. मेरे पति पूर्व की ओर जो गए सो फिर नहीं लौटे, अब मैं क्या करूं. मेरे कर्म की बात है. अब और सुनो कि गाठ में एक अधेला भी नहीं है. मुझसे सुनो कि ख़र्च अधिक है और परिवार बहुत है. तेरे देखने को मन में ऐसा हो रहा है कि प्रेम पर निछावर हो जाऊं. (विरहणी नायिका इस प्रकार कातर हो रही है कि जैसे किसी ने कहा कि) वह आया है.

पुस्तक - रहीम (कालजयी कवि और उनका काव्य , पेपर बैक.)

THE CORE IAS

प्यार की असली जंग तो प्रेम विवाह के बाद होती है, प्यार मोनोपॉली मांगता है - राजेंद्र यादव

प्रस्तुत है 'प्रेम' विषय पर राजेंद्र यादव का इंटरव्यू-

आपकी दृष्टि में 'प्रेम' किसे कहते हैं, प्रेम में दो शरीरों के आकर्षण और अनिवार्यता से आप कितने सहमत हैं, स्त्री-पुरुष के इतर प्रेम पर आपकी राय क्या है?

प्रेम एक प्राकृतिक आकर्षण है. इसमें दो शरीरों के बीच सम्बन्धों के होने की बात का पक्षधर हूं. पुरुष और स्त्री के बीच होने वाले प्रेम को लेकर समाज, परम्पराएं और उनका आदर्श पक्ष तमाम बाधाएं खड़ी कर देता है जबकि प्रेम के रास्ते में जाति, धर्म और राष्ट्रीयता जैसा कोई बन्धन है ही नहीं. जब स्त्री-पुरुष के बीच होने वाले प्रेम को लेकर इतनी मुसीबतें हैं, तब इससे इतर समलिंगी सम्बन्धों को लेकर स्वीकृति मिलना कहां सम्भव है.

प्रकृति तो चाहती है कि प्रेम किया जाए पर समाज ने जो अपने तौर-तरीके बनाए हैं उसमें सिर्फ विवाह करने की छूट है, प्रेम करने की नहीं. मेरी राय में कोई आध्यात्मिक और वायवीय प्रेम होता ही नहीं है. जब दो प्रेमियों का शारीरिक मिलन नहीं हो पाता है तो विक्षिप्त होकर उसे आत्मा-परमात्मा के मिलन से जोड़ कर देख लिया जाता है. दरअसल यह पुरानी और नई संस्कृति का एक द्वंद्व है. आज भी समाज में ऐसे लोग हैं जो कबीलाई और सामंती संस्कृति में जी रहे हैं. हीर-रांझा से लेकर अनारकली की कहानी भले ही फिक्शन हो, पर इससे प्रेम को लेकर समाज का एक 'चेहरा' तो सामने आता है.

इसके बावजूद समाज बदलने की प्रक्रिया जारी है. दिल्ली में ही देख लीजिए कितने ऐसे परिवार हैं जिनके बच्चों ने प्रेम विवाह किए हैं. धर्म व जाति बन्धन तोड़े हैं. जो समाज 50 वर्ष पहले था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं रहेगा.

'हंस' के दफ्तर में ही श्री धर्म नाम का एक ब्राह्मण युवक काम करता था. उसे लेखिका रमणिका गुप्ता के घर पर काम करने वाली दलित लड़की प्रोमिला से प्यार हो गया. दोनों ने विवाह करना चाहा और मुझे बुलाया. इस विवाह में उच्च ब्राह्मण वर्ग के उसके माता-पिता भी शामिल हुए. आज उनके विवाह को कई साल बीत गए हैं. ये दोनों खुशहाल वैवाहिक जीवन जी रहे हैं. प्रेम का यह एक आदर्श उदाहरण है.

भारतीय ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य में भी प्रेम की महिमा का विशाल वर्णन किया गया है. आपको भारतीय और विदेशी साहित्य में कौन-सी प्रेम कहानी श्रेष्ठ लगी?

प्रेम को लेकर लिखे गए देशी और विदेशी साहित्य को खूब पढ़ा है. जहां तक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' का सवाल है वह मुझे सिर्फ एक भावनात्मक प्रेम की कहानी लगती है.

प्रेम को लेकर दुखान्त गाथाएं ज्यादा लिखी गई हैं. कभी मैं भी 'देवदास' और 'शेखर एक जीवनी' के प्रेम को ही प्रेम मानता था. अज्ञेय ने प्रेम के वैज्ञानिक स्वरूप को 'नदी के द्वीप' में अभिव्यक्त किया है. मुझे सत्येंद्र कुमार की 'शेरनी' और अशोक गुप्ता की 'ठहाका' कहानी अच्छी प्रेम कहानी लगी. केए अब्बास और यशपाल ने भी प्रेम को लेकर अच्छी रचनाएं दी हैं. विदेशी साहित्य में टॉलस्टॉय की 'अन्ना केरनिना' फ्लेयर का उपन्यास 'मदान बावरी', आद्रेजीद की 'स्ट्रेट इज दि गेट' (संकट द्वार) और टॉमस मान की 'मैजिक माउन्टेन' प्रेम को लेकर अच्छी कृति लगीं.

प्रेम के जिस रूप को आपने अभिव्यक्त किया है, क्या उसको आपने जीवन में जिया भी है?

जहां तक मेरे अनुभवों का सवाल है तो मुझे लड़कियों को प्यार करना अच्छा लगता है. करीना कपूर मुझे अच्छी लगती है. प्रायः ब्यूटी को इनोसेंस से जोड़ लिया जाता. माना जाता है कि जो करीना सुन्दर है वो देवीय रूप होने के साथ सद्गुण सम्पन्न होगी. यह बात मुझे पता है कि करीना एक हीरोइन है, लटके-झटके दिखाना उसका प्रोफेशन भी है. पर मेरे भीतर आदर्श प्यार का जो सौन्दर्य है, वह ध्वस्त होता है.

पुराने जमाने के फिल्म निर्माता-निर्देशक किशोर साहू की फिल्मों में एक अभिनेत्री आती थी उसका नाम रमोला था. बात कोई सन् 1948 की होगी. मुझे उससे प्यार हो गया था. अखबारों में उसकी छपी फोटो की कटिंग करके अपने पास रखता था. मेरा कोलकाता जाना हुआ मुझे पता चला कि रमोला फिल्मी दुनिया से विदा होने के बाद यहीं

इकबालपुर में रह रही हैं. मैं उसे खोजते हुए उसके घर गया. सिलेटी रंग के साधारण से मकान की चौथी मंजिल पर उसका दरवाजा खटखटाया तो एक काला कलूटा पहलवान छाप आदमी निकला. मैंने कहा कि मैं एक पत्रकार हूं, रमोला से मिलना चाहता हूं पर उसने झट से दरवाजा बंद करना चाहा. इसी बीच मैंने देखा कि मोटी भद्दी-सी ब्लाऊज और पेटीकोट में रमोला खड़ी थी. उसे देखकर मुझे धक्का लगा.

हम अपनी प्रेमिका को जिस उम्र और रंग रूप में देखते हैं ताउम्र उस स्थिति में देखना चाहते हैं. बदलाव बर्दाश्त नहीं होता है. प्रेम के बारे में जानने के लिए लोग शायद मेरे पास इसलिए आते हैं क्योंकि इस पर मैं बेबाक तरीके से बात करता हूं, औरों के लिए यह वर्जित विषय है. लोग खुलकर कह नहीं पाते हैं कि प्रेम ही सेक्स का दूसरा रूप है. प्रेम का आदर्श रूप मुझे मिला नहीं.

सेक्स की चेतना का उद्भव पन्द्रह सोलह वर्ष की उम्र में होता है. और वह बेचैन करता है. उस बेचैनी में चुनाव नहीं होता है जो पहली लड़की दिखी बस उसी से प्यार हो गया. प्यार की असली जंग तो प्रेम विवाह के बाद होती है. तब लड़की सोचती है कि लड़का बेवकूफ है. मेरे चक्कर में आ गया है. लड़का भी ऐसा ही सोचता है. प्यार मोनोपॉली मांगता है. शक और शंकाएं खड़ी होती हैं.

जिस लड़की से मेरा पहला प्यार हुआ था. वह करीब 15 साल की थी और मैं 20 साल का. मैंने अपना जेबखर्च चलाने के लिए उसकी ट्यूशन की थी. वह दोनों हाथों से खूबसूरत ढंग से लिखती थी. उस जैसी शार्प मैमोरी की लड़की मुझे नहीं मिली. मैंने जब विवाह किया तो उससे कहा कि अब तुम भी किसी से शादी कर लो तो उसने कहा कि अब तुमने विवाह कर लिया है. अब मेरी जिंदगी पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है. उसकी वजह से ही मेरा घर टूटा. वह मुझे ऊर्जा देती है.

प्रेम आदमी का सबसे बड़ा गुण है, जिसके पास दिल है वह संवेदनशील होगा ही. और हर संवेदनशील आदमी प्रेम करता है.

पुस्तकः शब्द, विचार और समाज

भोपाल में होगा एशिया का सबसे बड़ा साहित्य उत्सव 'उन्मेष'

एशिया के सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय साहित्य उत्सव 'उन्मेष' का आयोजन मध्य प्रदेश के भोपाल शहर में होने जा रहा है. कार्यक्रम का आयोजन 3 से 6 अगस्त तक किया जाएगा. साहित्य अकादमी के सचिव के. श्रीनिवासराव ने बताया कि इस अंतरराष्ट्रीय साहित्य उत्सव के साथ ही संगीत नाटक अकादेमी द्वारा 'उत्कर्ष' शीर्षक से लोक एवं जनजातीय प्रदर्शन कलाओं का राष्ट्रीय उत्सव भी आयोजित किया जा रहा है. इन दोनों समारोहों का उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मु द्वारा किया जाएगा. 'उन्मेष' का यह दूसरा संस्करण है. पहला आयोजन पिछले वर्ष जून में शिमला में आयोजित किया गया था.

सही हिंदी - 'दूध वाला' ठीक है या 'दूधवाला', क्या कहते हैं नियम

हिंदी वैसे तो इतनी व्यावहारिक भाषा है कि इसमें गड़बड़ियों का अंदेशा बहुत कम ही रहता है. लेकिन कुछ शब्द युग्म लोगों को परेशान करते हैं. परेशानी की बड़ी वजह ये भी है कि दो शब्दों को मिला कर गढ़े गए ऐसे शब्दों के

गलत और सही, दोनों ही रूप चलन में हैं. इस कारण लिखते समय भ्रम की स्थिति आ जाती है कि कौन-सा रूप सही है. ये भी ध्यान रखने वाली बात है कि गड़बड़ियों का अंदेशा ऐसे गढ़े हुए शब्द-युग्म में ही आती है. अगर ये युग्म पारंपरिक है तो संस्कृत व्याकरण का प्रकाश भ्रम से निकालने में अक्सर मददगार होता है.

हिंदी का व्याकरण किसी न किसी रूप में संस्कृत के पीछे-पीछे ही चलता है. आजादी के बाद जिस तरह से उर्दू और फारसी का असर होने के कारण भले ही कुछ समय तक व्याकरण को लेकर कुछ हिस्सों में लेखकों के अलग-अलग खेमे रहे. राजनीतिक नेतृत्व भी उस दौर में सद्भावना के लिए हिंदी और हिंदुस्तानी, दो भाषाओं के प्रयोग का हामी था. हिंदुस्तान उर्दूजदा हिंदी को कहा जा रहा था. लेकिन हिंदी लेखकों के भारी-भरकम आभा मंडल ने हिंदी को संस्कृत व्याकरण का अनुगामी ही रखा. नतीजा ये हुआ कि व्याकरण स्थिर हो गया.

दिक्कत नए गढ़े शब्दों को लेकर ही हुई. ये वे शब्द थे जो देसज बोलियों से अलग बना दिए गए. मिसाल के तौर पर 'ग्वाला' शब्द पहले से था. उसकी जगह दूधवाला नया शब्द बना. अब इस शब्द को कैसे लिखा जाए ये सवाल खड़ा हुआ. सवाल की वजह ये थी कि हम किसी अपने बीच से कहीं और जाने वाले का जिक्र करते समय 'जाने' और 'वाला' दो अलग-अलग शब्दों में लिखते रहे. इसी तर्ज पर कुछ लोगों ने दूध वाला (दो अलग शब्दों के तौर पर) लिखना शुरू कर दिया. अल्प ही सही लेकिन इस तरह के चलन से भ्रम की स्थिति आना स्वाभाविक था.

इस भ्रम की स्थिति से निकालने का काम किया शिक्षा मंत्रालय ने. हालांकि फिर कहा जाए कि संस्कृत व्याकरण से परिचित लोगों के लिए ये नया नहीं था. लेकिन शिक्षा मंत्रालय के नियमन से स्थिति और साफ हो गई. वैसे तो उस समय के शिक्षा मंत्रालय ने 1966 में देवनागरी का मानीकरण प्रकाशित किया था. लेकिन इसके बाद में अलग-अलग संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय से प्रकाशित होते रहे. कंप्युटरों के बढ़ते प्रभाव के साथ भाषा को कंप्युटर के अनुरूप बनाने के लिए निदेशालय ने देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी का मानकीकरण नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया. इसमें कई नियमों को साफ किया गया है.

इसी के नियम 3.13 में वाला प्रत्यय के बारे में बताया गया है. यहां लिखा गया है कि क्रिया रूप में करने वाला, आने वाला, बोलने वाला आदि को अलग लिखा जाए, जैसे मैं घर जाने वाला हूं. जाने वाले लोग. लेकिन संज्ञा और विशेषण के योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दिलवाला, दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएंगे. 'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब मिलाकर लिखा जाएगा, अन्यथा अलग से. यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में 'वाला' निर्देशक शब्द है. अतः इसे अलग से ही लिखा जाए. इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी 'वाला' अलग लिखा जाएगा. इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे-

गाँववाला - (ग्रामीण), गाँव वाला मकान (गाँव का मकान.)

मुंबई में खुला पहला 'कॉन्टेंट हैडक्वार्टर'

किसी भी प्रोफेशन में हिंदी लेखन को दोयम दर्ज का काम समझा जाता रहा है, लेकिन वक्त के साथ-साथ अब हिंदी लेखन और हिंदी लेखकों की तस्वीर तेजी से बदल रही है. हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं में लेखन पूरी तरह से प्रोफेशनल होता जा रहा है.

कॉन्टेंट हैडक्वार्टर

- दरअसल हॉलीवुड में राइटर्स रूम का चलन है. भारत में भी फिल्म दुनिया में कुछ बड़े निर्माता-निर्देशक लेखकों को वेतन पर अपने यहां रखते है. यहां लेखक और निर्माता-निर्देशक की भूमिका कर्मचारी और नियोक्ता की तरह होती है, जहां लेखक निर्माता-निर्देशकों के केवल 'यस मैन' होते हैं. यहां लेखकों को अपने दृष्टिकोण से कहानियां रचने की आजादी नहीं है. ऐसी कहानी के कॉन्सेप्ट्स से लेकर सीन फाइनल करने तक के सारे अधिकार सिर्फ निर्माता-निर्देशक के पास ही होते हैं. कई बार तो लेखक के क्रेडिट तक में निर्माता-निर्देशक तक का ही नाम जाता था.
- अमित खान बताते हैं कि उनका हमेशा से ही सपना रहा था कि भारत में भी राइटर्स रूम होना चाहिए, जहां एक लेखक पूरी आजादी के साथ अपनी कल्पनाओं को शब्द दे सके. उसके ऊपर किसी भी निर्माता-निर्देशक का दवाब न हो. बस इसी कल्पना को 'कॉन्टेंट हैडक्वार्टर' के रूप में साकार किया है. उन्होंने बताया कि राइटर्स रूम हिंदी लेखक आपस में मिलकर नई-नई स्क्रिप्ट तैयार करेंगे.

प्रेमचंद ने खुद को कहते थे 'कलम का मजदूर', कहा- मजदूर को मजदूर का ही जीवन बिताना चाहिए

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जयंती के अवसर पर साहित्य प्रेमी उन्हें अपने-अपने तरीके से याद कर रहे हैं. यूं तो प्रेमचंद का साहित्य अथाह है. उन्होंने उर्दू और हिंदी में खूब लिखा है. लेकिन प्रेमचंद को नजदीक से जानने के लिए उनके साहित्य के साथ-साथ उनकी जीवनियों का भी बड़ा महत्व है. उसकी पत्नी शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'प्रेमचंद घर में', अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' और मदन गोपाल की 'कलम का मजदूर' प्रेमचंद की जीवनियां हैं.

'कलम का मजदूर' पुस्तक के बारे में कहा जाता है कि यह हिंदी के जीवनी साहित्य में बहुचर्चित पुस्तक है. लेखक मदन गोपाल का कहना है कि प्रेमचंद की जीवनी के रूप में यह पुस्तक उनकी 20 वर्षों की मेहनत का परिणाम है. राजकमल प्रकाशन ने इसे पहली बार 1965 में प्रकाशित किया था.

'कलम का मजदूर' पुस्तक के बारे में मदन गोपाल का कहना है कि इस पुस्तक की तैयारी में उन्होंने 'हंस' तथा 'ज़माना' के प्रेमचंद अंक, शिवरानीदेवी की पुस्तक 'प्रेमचंद घर में' तथा कुछ ऐसे निबंध संग्रहों का भी इस्तेमाल किया जिनमें प्रेमचंद की कृतियों पर सामयिक आलोचनाएं छपी थीं. मदन गोपाल बताते हैं कि 'कलम का मजदूर' तैयार करने में उपलब्ध तमाम सामग्रियों के अलावा प्रेमचंद की चिट्ठी-पत्रियों का सहारा लिया गया. इसमें प्रेमचंद के वास्तविक व्यक्तित्व को पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ उभारकर रखने का प्रयास किया गया है. प्रस्तुत है इस पुस्तक का एक अंश-

कलम का मजदूर: प्रेमचंद

प्रेमचंद आदर्शवादी थे. समाज की कुरीतियों को खत्म करना चाहते थे. इन्हीं कमजोरियों ने देश के लोगों को गुलाम बनाया. यदि ये समाप्त हो जाएं तो देश के नागरिकों, विशेषत: गरीबों का स्तर ऊपर उठेगा. यह तो हम देख ही चुके हैं कि गरीबों से प्रेमचंद को विशेष सहानुभूति थी. शिवरानी देवी ने बतलाया है कि उनसे सम्पर्क में आनेवाले छोटे-से-छोटे व्यक्तियों के लिए भी वह सर्वदा भरसक वह सभी-कुछ करते थे जो करना उनके लिए सम्भव होता. चाहे वह कहारी हो, नौकर हो, नाई का कुटुम्ब हो या प्रेस के कर्मचारी हों.

वह स्वयं छोटे समझे जानेवाले लोगों में मिलने का प्रयत्न करते थे. जो मोटा-झोटा मिला, खा लिया; जो साधारण वस्त्र मिले, पहन लिए. जमीन पर बैठकर लिखते थे. सामने डैस्क होता. घर में कोई कुर्सी नहीं थी. कहते- "जिस देश में छः पैसे रोज की आमदनी हो, वहां लोग कैसे लवाजमात को पूरा कर सकते हैं?" अपने आपको मजदूर समझते और कहते- "मैं कलम का मजदूर हूं और मजदूर को मजदूर का ही जीवन बिताना चाहिए."

शिवरानी देवी कहतीं- "विख्यात लेखक हो. घर पर लोग आते हैं उनके बैठने के लिए दो-चार कुर्सियां तो मंगवा लो." परन्तु प्रेमचंद कहते– "ये सब झंझट की जड़ हैं, विलासिता की निशानी हैं. मेज-कुरसी आ जाएंगी तो तुम एक कालीन के लिए भी कहोगी. कालीन आ जाएगा तो उसकी सफाई के लिए एक नौकर रखना पड़ेगा. एक के बाद दूसरी मांग और मांगों का कायदा है कि वे बढ़ती जाती हैं."
एक बार साहित्य प्रेमी कालाकांकर नरेश प्रेमचंद के घर पर आए और अगले दिन सवेरे आठ बजे आने का बुलावा दे गए. उनके जाने के बाद शिवरानी देवी को पता लगा कि आगन्तुक व्यक्ति राजा साहब के आदमी नहीं थे, परन्तु स्वयं राजा साहब थे. उन्होंने पूछा- "आपने उन्हें कहां बैठाया?"
प्रेमचन्द- "जहां (जमीन पर) मैं बैठा था."
शिवरानी देवी- "उन लोगों ने क्या सोचा होगा?"
प्रेमचंद- "तो मैं राजा लोगों के लिए थोड़े ही इन्तजाम करता हूं. मेरी गद्दी तो जमीन है. उनको अच्छा न लगे तो इसके लिए मैं क्या करूं?"

बात से बात निकली. स्वराज्य मांगनेवालों के रहन-सहन का जिक्र आया.
शिवरानी देवी- "ये मेज-कुर्सीवाले ही तो स्वराज्य मांग रहे हैं. स्वराज्य की मांग गरीबों के दिमाग की उपज तो नहीं है."
प्रेमचन्द- "जब स्वराज्य मिलेगा तो सबका कल्याण हो जाएगा. उनका भला तभी होगा जब उनमें शक्ति आएगी."
शिवरानी देवी- "भगवान को चाहिए कि उन गरीबों में ताकत भरे."
प्रेमचन्द- "भगवान तो मन का भूत है, जो इन्सान को कमजोर कर देता है. दुनिया स्वावलम्बी पुरुषों की है. अंधविश्वास में पड़कर हमारी रही-सही बुद्धि भी मारी जाती है."
शिवरानी देवी- "परन्तु गांधीजी तो दिन-रात ईश्वर-ईश्वर चिल्लाते रहते हैं."
प्रेमचन्द- "वह एक प्रतीक-भर है. वे देख रहे हैं कि जनता अभी बहुत सचेत नहीं है और फिर जो जनता सदियों से भगवान पर विश्वास किए चली आ रही है, वह (कैसे) एकाएक अपने विचार बदल सकती है? अगर एकाएक जनता को कोई भगवान से अलग करना चाहे तो सम्भव भी नहीं है. इसी से वे भी शायद भगवान का ही सहारा लेकर चल रहे हैं."
शिवरानी देवी- "आप भले ही न मानें, दुनिया थोड़े ही नास्तिक हो सकती है."
प्रेमचन्द- "मेरा कहना झूठ नहीं है. तुम सच मानो, जो भी आज धर्म के नाम पर हो रहा है, सब अंधविश्वास है. यह सब मूर्खों के बहकाने के तरीके हैं. पुरुषों ने भी अंधविश्वास द्वारा स्त्रियों को मूर्खता का पाठ पढ़ाया है."

फर्नीचर से लेकर बात आस्तिकता तक जा पहुंची, परन्तु यह तो कोई नई बात न थी. प्रेमचंद ने कुर्सियां मंगाने की स्वीकृति नहीं दी. परन्तु शिवरानी देवी ने पचास रुपए का फर्नीचर मंगवा ही डाला. कमरा सजा दिया गया. प्रेमचंद के लिए यह एक प्रकार की मुसीबत हो गई. स्वयं तो जमीन ही पर बैठते, परन्तु फर्नीचर की सफाई करने लगते.

शिवरानी देवी अपने दिल में सोचतीं- "मैंने नाहक फर्नीचर मंगवाकर उनकी बला बढ़ा दी, झाड़ने-पोंछने में उनका वक़्त खराब होने लगा."
ऊपर दिए गए वृत्तान्त से प्रेमचंद के जीवन की सरलता का तो पता चलता ही है, साथ ही हमें इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि वे अपने जीवन को गरीबों के जीवन के नजदीक लाना चाहते थे.

मदन गोपाल

मदन गोपाल चर्चित लेखक और पत्रकार रहे हैं. 22 अगस्त 1919 में हरियाणा के हिसार जिले के हॉसी में उनका जन्म हुआ था. पत्रकारिता जीवन की शुरूआत उन्होंने लाहौर की सिविल एंड मिलिटरी गजट के संपादन से शुरू की. इसके बाद स्टेट्समैन, नई दिल्ली में लंबे समय तक अपनी सेवाएं दीं. मदन गोपाल प्रकाशन विभाग के निदेशक पद से सेवामुक्त हुए.

मदन गोपाल उन अग्रणी लेखकों में रहे जिन्होंने अंग्रेजी पाठकों को हिंदी लेखकों को परिचित कराने की शुरूआत की. उनका मदन गोपाल ने 1944 में प्रेमचंद पर अंग्रेजी में एक पुस्तक प्रकाशित की जो उन दिनों प्रेमचंद पर पहली पुस्तक थी. उन्होंने प्रेमचंद के पत्रों को बड़े श्रम से एकत्र किया और दो भागों में 'चिट्ठी-पत्री' नाम से प्रकाशित किया.

पुस्तक- कलम का मजदूरः प्रेमचंद
लेखक- मदन गोपाल
प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन

हिंदी भाषा में नहीं है अपना कोई विराम चिह्न, केवल पूर्ण विराम को छोड़कर

निश्चित ही हिंदी का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है. आज हिंदी भारत की सीमा से परे जाकर भी बड़ी संख्या में बोली और पढ़ी जा रही है. अंग्रेजी मीडिया का भी तेजी से हिंदीकरण हुआ है. भारत के हिंदी से इतर भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी में कविता-कहानी लिखी जा रही हैं. कह सकते हैं कि हिंदी का वैश्वीकरण हो रहा है. लेकिन इस वैश्वीकरण में हिंदी में तमाम नए-नए शब्द आ गए हैं. तमाम देशज शब्द अब धड़ल्ले से बोले जाने लगे हैं. कई बोलियों के शब्द बड़ी सरलता से हिंदी में आकर समाहित हो गए हैं.

ऐसे में जब कोई हिंदी के सही शब्दों को चुनने या उस पर चर्चा करता है तो भ्रम की स्थिति हो जाती है कि सही शब्द क्या है, या इस शब्द का सही अर्थ क्या है. कई बार चर्चा करते हुए शब्दों की उत्पत्ति, उनकी वर्तनी, प्रयोग या कोई शब्द विशेष कहां और कैसे इस्तेमाल किया जाता है, को लेकर सवाल खड़े हो जाते हैं. कई बार कई शब्द एक जैसी ध्वनि उत्पन्न करते हैं, लेकिन उनके अर्थ अलग-अलग होते हैं या फिर ऐसा भी होता है कि एक ही अर्थ के लिए हम अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल करते हैं. आप कह सकते हैं कि हम हिंदी भाषा और हिंदी व्याकरण की बात कर रहे हैं. अगर आप व्याकरण या फिर किसी भाषाविद् के हिंदी शब्द कोश में शब्दों की खोजबीन में जुटेंगे तो निश्चित ही यह कार्य बड़ा ही बोझिल लगेगा.

शब्द कोश, व्याकरण या फिर किसी भाषाविद् की पुस्तक पढ़ते हुए निरसता का अनुभव होता है. पाठक जिस जिज्ञासा के साथ पुस्तक के पन्नों में विचरण करने लगता है, भाषा की जटिलता उसके सफर को बोझिल बना देती है.

'शब्दों के साथ-साथ' पुस्तक में पाठक की रोचकता निरंतर बनी रहती है. इसमें पारिभाषिक शब्दाबली नहीं दी गई है. जैसे- अगला, आगामी और अग्रिम शब्द. इस शब्दों को लेकर हमेशा भ्रम की स्थिति बनी रहती है कि कौन-सा शब्द कहां इस्तेमाल होगा. यहां इस शब्दों को इस तरह समझा गया है-

- *शनिवार से अगला (Next) दिन रविवार है.*
- *कहते हैं अगले (Past) जमाने के लोग सीधे-साधे होते थे.*
- *कौन जाने, अगला (Coming) समय कैसा आएगा.*
- *पता नहीं अगला (Someone) क्या सोचेगा.*

इनसे अगला अध्याय है 'अच्छा-भला'. आम बोलचाल में अच्छा और भला शब्दों का हम ना जाने कितनी बार प्रयोग करते हैं. अलग-अलग स्थानों पर इनके अर्थ भी अलग-अलग होते हैं. पुस्तक में बताया गया है कि किसी के लिए कोई विशेषण तत्काल ने सूझे तो हम 'अच्छा' का प्रयोग करते हैं.

अच्छा-भला शब्दों के बारे में सुरेश पंत लिखते हैं- हिंदी में अच्छा शब्द का बहुत अर्थ-विस्तार हुआ है. विशेषण के रूप में इसका प्रयोग अनेक संदर्भों में होता है- जब किसी की प्रशंसा उसके कार्यों, गुणों या अन्य बातों के लिए की जाती है. जैसे-

- प्रशंसनीय या अनुकरणीय होने परः अच्छा विचार है आपका, अच्छे काम कीजिए, अच्छा स्वभाव हो तो मित्र बना लो, अच्छा मित्र हितैषी भी होता है आदि.
- देखने-सुनने में मन को प्रसन्न करने वाला, मनोरंजकः अच्छा कार्यक्रम, अच्छा संगीत, अच्छी पेंटिंग, अच्छी धूप आदि.
- खोट या मिलावट रहित, शुद्धः अच्छी मिठाई दीजिए, अच्छा देसी घी चाहिए, अच्छा मोती चमकदार होता है.
- गुणी, अनुभवी, विश्वसनीयः हमें अच्छा डॉक्टर मिल गया, अच्छे नागरिक बनिए, कोई अच्छा शिक्षक बताइए आदि.

इस तरह पुस्तक में 128 अध्यायों में छोटे-छोटे प्रकरणों के माध्यम से शब्दों के प्रयोग को समझाया गया है. अब जैसे 'जूठा' शब्द को ही लें. यहां डॉ. सुरेश पंत बताते हैं कि किसी के द्वारा खाना खाते हुए छुआ या खाने के बाद बचा हुआ अन्न, पीने से बचा पानी, जिस थाली या गिलास में खाया-पिया गया हो, खाना खाने वाले हाथों से छुआ हुआ पात्र आदि के लिए 'जूठा' विशलेषण का प्रयोग किया जाता है.

यहां यह बात भी ध्यान खींचती है कि पश्चिमी सभ्यता में 'जूठा' की कोई विशेष संकल्पना ही नहीं है. इसलिए वहां 'जूठा' के लिए कोई उपयुक्त शब्द भी नहीं है.

क्या होता है 'तकिया कलाम'

'तकिया कलाम' उर्फ टेक चैप्टर में इसके बारे में विस्तार से बताया गया है. वे शब्द या वाक्यांश जिन्हें कुछ लोग बातचीत करते हुए प्रायः बार-बार कहा करते हैं, तकिया कलाम (Catchphrase) कहे जाते हैं. वस्तुतः ये एक प्रकार की टेक का काम करते हैं. टेक का अर्थ है टिकना, थमना, सहारा लेना. जैसे संगीत में प्रत्येक अंतरा के बाद गायक घूम-फिर कर टेक पर आता है, उसी प्रकार तकिया कलाम वाला भी.

यह तकिया और कलाम से बना यौगिक शब्द है. तकिया का अर्थ है आराम के लिए सोने, लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखने अथवा पीठ-कमर आदि को सहारा देने के लिए प्रयुक्त एक उपधान. कलाम अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है वाणी, वाक्य, वचन, कथन या बातचीत.

वैसे तो पूरी किताब ही बहुत रुचिकर है. छोटे-छोटे अध्यायों में बंटी यह किताब पाठक को ठहरकर शब्दों पर सोचने-समझने का मौका देती है. और जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते जाते हैं, शब्दों में आपकी रुचि बढ़ती ही जाती है. लगता है कि पूरी किताब खत्म करके ही चैन लिया जाए.

किताब में खुर्द, कलां, नांगल, डीह, माजरा; कड़ाह, कड़ाही, कड़ाई, कढ़ाई और काढ़ा; पिता और बाप की बात; पूज्य और पूजनीय; प्रणय, प्रणयन, परिणय, प्रणीत और परिणीत; कविराज और वैद्यराज; कांड, घोटाला से घूस तक समेत कई अध्यायों के शीर्षक पाठक को अपनी ओर खींचते हैं.

इस प्रकार तमाम शब्दों की यात्रा करते हुए आप जब पुस्तक के अंत में कथा 'पूर्णविराम' की पर जाकर समाप्त होती है. यह पढ़कर आश्चर्य होता है कि हिंदी में सभी विराम चिह्न अंग्रेजी से ज्यों की त्यों ले लिए गए हैं. केवल पूर्ण विराम का चिह्न (।) पारंपरिक है. उसका भी एक विकल्प बिंदु (.) के रूप में उपस्थित है.

यहां डॉ. सुरेश पंत लिखते हैं- "वस्तुतः संस्कृत में प्रारंभ के वैदिक साहित्य में विराम चिह्नों की आवश्यकता थी ही नहीं. मौखिक परंपरा थी और गुरुओं के द्वारा शिष्यों को उच्चारण, विराम, गति-यति सहित मंत्रों को रटा दिया जाता था और यही परंपरा चलती रही."

इस पुस्तक की उपयोगिता के बारे में डॉ. सुरेश पंत लिखते हैं- "निरंतर प्रयोग से हिंदी के शब्द भंडार में नए-नए शब्द जुड़ रहे हैं. पारंपरिक शब्द संपदा कोशीय अर्थों से बाहर विविध प्रकार की अर्थ छवियां ग्रहण कर रहे हैं. कहीं-कहीं शब्द परंपरागत अर्थ छोड़ रहे हैं और उनमें अर्थ विस्तार हो रहा है. ऐसे में हिंदी का उपयोग करने वालों के सामने यह एक चुनौती होती है कि अपनी बात को व्यक्त करने के लिए अमुक शब्द उपयोगी होगा या नहीं, उसे वाक्य में प्रभावी ढंग से कैसे पिरोया जाए और उसकी वर्तनी क्या होगी."

THE CORE IAS

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं- वर्तनी, प्रयोग, अर्थ संदर्भ, वाक्य गठन आदि के प्रति जागरूकता में कमी होना कोई नई बात नहीं थी, किंतु अब सही रूप को समझने और बरतने के प्रति भी उदासीनता दिखाई पड़ती है जो 'सब चलता है' के दृष्टिकोण में परिणत हो गई है.

इस प्रकार इस पुस्तक में रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल होने वाले बहुत-से शब्दों के बारे में छोटे-छोटे अध्यायों में बांटकर बड़ी ही रोचक शैली में बताया गया है. अगर आप हिंदी के सुधी पाठक हैं, शिक्षक हैं या विद्यार्थी हैं, मीडिया में काम करते हैं या फिर अनुवाद करते हैं या शोध करते हैं निश्चित ही यह पुस्तक बहुत मददगार साबित होगी.

डॉ. सुरेश पंत

सोशल मीडिया पर डॉ. सुरेश पंत लोगों की शब्दों से जुड़ी जिज्ञासाओं और भाषा संबंधित समस्याओं का समाधान करते नजर आते हैं. उत्तराखंड के पिथौरागढ़ में जन्मे पंतजी ने आगरा विश्वविद्यालय से स्नातक, दिल्ली

विश्वविद्यालय से हिंदी में परास्नातक, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से संस्कृत में परास्नातक और मेरठ विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है. आपने तमिल और रूसी भाषा में भी डिप्लोमा किया है.

सुरेश पंत उत्तर प्रदेश और दिल्ली में हिंदी शिक्षण के साथ-साथ अनेक अहम सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में हिंदी के विषय विशेषज्ञ; परामर्शदाता; पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक और पठन सामग्री निर्माता इत्यादि विभिन्न भूमिकाओं में सक्रिय रहे हैं.

पुस्तकः शब्दों के साथ-साथ
लेखकः डॉ. सुरेश पंत
प्रकाशकः हिंद पॉकेट बुक्स

क्यों मनाई जाती है गीता जयंती और क्या है इसका महत्व!

- हर वर्ष मार्गशीर्ष माह में शुक्ल पक्ष की एकादशी को गीता जयंती मनाई जाती है. इस एकादशी को मोक्षदा एकादशी कहते हैं. ऐसी मान्यता है कि आज के दिन उपवास करने, पूजा-पाठ करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है. यह भी बताते हैं कि आज ही के दिन भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत का युद्ध शुरू होने से पहले कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का ज्ञान दिया था. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का ज्ञान देकर इस संसार में कर्म का महत्त्व स्थापित किया गया था. यानी आज ही के दिन 'गीता' ग्रंथ का प्रादुर्भाव कुरुक्षेत्र में हुआ था.

- गीता हिंदू धर्म का सबसे पवित्र ग्रंथ माना जाता है. लोग गीता पर हाथ रखकर सच बोलने की शपथ लेते हैं. गीता को मानव जीवन में सभी प्रकार की चिंताओं और दुख को खत्म करने का साधन माना जाता है. हिंदू धर्म से सबसे बड़े ग्रंथ गीता के जन्मदिवस को 'गीता जयंती' के रूप में मनाया जाता है. भारत ही नहीं पूरी दुनिया में गीता को बड़े ही आदर और सम्मान के साथ देखा जाता है. भारत के तमाम विद्वान और मनीषियों ने गीता के अलग-अलग रूपों को अपने जीवन में उतारा है, तो दुनिया के कई दिग्गजों ने भी गीता को अपने जीवन में उतारा है.

गीता की उत्पत्ति

- कुरुक्षेत्र के युद्ध मैदान में अर्जुन जब दुश्मनों की कतार में अपने सगे-संबंधियों और परिजनों को देखकर व्याकुल हो गए थे और उन्होंने युद्ध न लड़ने का फैसला किया तो उनके सारथी भगवान श्रीकृष्ण ने उपदेशों के माध्यम से जीवन में कर्म, धर्म और अन्य व्यवहारों के बारे में ज्ञान दिया था. यही उपदेश गीता में दर्ज हुए और गीता उपदेश बने.

महाभारत के छठवें अध्याय में है गीता का ज्ञान

- जय नामक ग्रंथ को भारत ग्रंथ के साथ मिलाकर महाभारत के नाम से जाना गया है. इसके छठे अध्याय 'भीष्म पर्व' में गीता के उपदेश दिए गए हैं. गीता के अठारह अध्याय हैं. इन अध्यायों में मनुष्य के सभी धर्म-कर्म का ब्यौरा दिया गया है. मनुष्य क्या है, यह जीवन क्या है, मनुष्य क्यों जन्म लेता है और फिर मृत्यु के बाद कहां जाता है, उसके धर्म और कर्म क्या हैं, परिवार के प्रति कर्तव्य, सगे-संबंधी, आचार-व्यवहार, योग, राजनीति आदि सभी के बारे में गीता में बताया गया है.

- गीता में कुल 710 श्लोक हैं. कहा जाता है कि इनमें से लगभग 575 श्लोक भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में रथ पर सवार अर्जुन को एक ही दिन में सुनाए थे. और वह भी युद्ध शुरू होने से पहले. ताकि युद्ध के शंख बजते ही अर्जुन लड़ाई के लिए तैयार हो जाए. 'श्रीभगवद्गीता' और 'भागवत' दोनों ही पुस्तकें बिल्कुल अलग-अलग हैं, लेकिन दोनों के केंद्र में श्रीकृष्ण हैं. श्रीभगवद्गीता को महर्षि वेदव्यास ने लिखा है और इसके वक्ता कृष्ण हैं.

बाल दिवस विशेष - मोबाइल और इंटरनेट के जाल में गुम होता बाल साहित्य और बालपन

बाल साहित्य किसी भी सभ्य समाज का वह हिस्सा होता है जो भविष्य की दिशा तय कर रहा होता है. संस्कृत और फिर उससे लेकर हिंदी साहित्य ने बाल साहित्य के लिए उत्कृष्ट भंडार तैयार किया. इसका चलन भी खूब हुआ. यहां तक कि एक समय तक ये लोगों के जीवन का हिस्सा रहा. लेकिन हाल के एक डेढ़ दशक में बच्चों की लगन मोबाइल टैब, लैपटॉप और कंप्यूटरों में लग गई है. बच्चे अपने खाली और आगे जा कर कहा जाए कि पढ़ने वाले समय में से एक हिस्सा इन्हीं डिजिटल डिवाइस पर स्वाहा कर रहे हैं. खेल मैदानों में नहीं बल्कि छोटी से स्क्रीन तक सिमट गया है. कहानियां और कहानियां सुनाने वाले, दोनों उनसे बहुत दूर हो गए हैं.

दुनिया भर में की श्रेष्ठ सभ्यताएं अपने आने वाले समय को दिशा देने के लिए बच्चों के साहित्य पर जरुर काम करती हैं. भारतीय वांगमय में इसका खजाना है. 'पंचतंत्र' अपने आप मेंविश्व साहित्य के लिए आकर्षण का बहुत बड़ा केंद्र है. तमाम भाषाओं में इसकी कथाओं का अनुवाद किया जा चुका है. दरअसल, इसकी कहानियां बाल मन को सिर्फ गुदगुदाती ही नहीं हैं, बल्कि बाल मन को बड़ी खूबी के साथ उस ओर मोड़ने में सक्षम हैं जिधर इसके सर्जक चाहते हैं. कथानक और कहानी के नतीजे इस कदर प्रभावी हैं कि बहुत सारी कहानियों का असर मानव मन पर जीवन भर रहता है. हो सकता है कि कालांतर के साथ कुछ कहानियों को इसमें जोड़ दिया गया हो, लेकिन मौलिक तौर पर जो कहानियां हैं उन्हे देख कर सहज ही समझ में आ जाता है कि कहानियों को मोती की तरह चुन चुन कर सहेजा गया है.

कहानियों का विस्तार

कहानियों की ये यात्रा वाचिक परंपरा में खूब फली-फूली. बुजुर्ग बच्चों को जोड़ने के लिए उन्हें रोचक कथाएं सुना कर बांधे रहते थे. इस तरह बाल कहानियों की यात्रा चलती रही. हिंदी भाषा को गढ़ने-रचने वाले साहित्यकारों ने साहित्य के समानांतर ही बाल साहित्य का निर्माण भी किया. भारतेंदु काल में ही 'बाल दर्पण' और 'बाल बोधिनी' नाम की पत्रिकाओं के प्रकाशन किए गए. इसी क्रम में 'बाल प्रभाकर', 'शिशु', 'बाल सखा', 'छात्र सहोदर', 'वीर बालक', 'बालक', 'चमचम', 'तितली' और 'बाल बोध' जैसी पत्रिकाएं छापी गईं. ये सभी प्रकाशन आजादी के पहले किए जा रहे थे. आजादी के बाद की चर्चा की जाए तो 'प्रकाश', 'अमर कहानी' और 'मनमोहन' जैसी पत्रिकाएं निकाली गईं.

इसके बाद 'चंदामामा' का प्रकाशन शुरु हुआ और ये भी विशेष बात रही कि 'चंदामामा' अहिंदी-भाषी इलाके से शुरू की गई और बहुत लोकप्रिय पत्रिका के तौर पर याद की जाती है. चित्रों और कार्टूनों से भरपूर इस पत्रिका ने बच्चों को खूब रिझाया. देश के दूसरे प्रकाशन केंद्रों ने भी बच्चों के लिए खूब सारी पत्रिकाएं छापीं, लेकिन सातवें -आठवें दशक में बालपन जी रहे लोगों को खूब याद होगा कि 'चंदा मामा', 'बाल भारती', 'नंदन', 'चंपक' ऐसी पत्रिकाएं रहीं जिनका पूरी की पूरी पीढ़ी पर असर था. बाद के दौर में चित्र कथा के तौर पर कॉमिक्स छपने लगीं जिनके चरित्र बच्चों को अलग ही दुनिया में ले जाते थे. चाचा चौधरी, लंबू-छोटू, छोटू-मोटू जैसे चरित्र तो भी वास्तविक दुनिया से कहीं जुड़े होते थे. बहुत सारे कैरेक्टर उसी तरह किसी और दुनिया से थे, जैसे इस दौर के टीवी कार्टूनों के बहुत सारे

कैरेक्टर. हां, चाचा चौधरी का एक कैरेक्टर साबू ज्यूपिटर ग्रह से आया था और जब उसे गुस्सा आता था तो ज्वालामुखी फट पड़ता था, लिहाजा रोचक ये था कि वो हवाई जहाज के अंदर बैठने की बजाया छत पर बैठ कर यात्रा करता था. बहरहाल, कैरेक्टर रोचक बनाने के लिए जो भी रचा गया, कैरेक्टर का अता-पता था.

बाद के दौर में जो कॉमिक्स आए उनके कैरेक्टर का सिलसिला कहां से था, ये रहस्य जैसा बनने लगा. हो सकता है उनमें से तमाम चरित्र दूसरी भाषाओं से लिए गए हों और उन्हें अपना बनाने के लिए उनमें इधर-उधर की बातें डाल दी गईं.

टीवी और इंटरनेट की दुनिया

इधर 1984 के उत्तरार्द्ध में देश भर टीवी का प्रसार देश में तेजी से होने लगा. ये समय सरकारी कंट्रोल वाले दूरदर्शन का था. इस पर ऊटपटांग सीरियल्स तो नहीं आए लेकिन बच्चों को पढ़ कर समय काटने का एक अन्य विकल्प मिल गया. समय बदलने के साथ जब केबल टीवी का असर बढ़ा तो वहां कार्टून के चैनल्स ही मिलने लगे. ये प्रकोप डीटीएच के साथ और बढ़ा. कई कार्टून चैनल सुलभ हो गए. इसी के साथ माता -पिता को ये सुविधा भी मिल गई कि वो पढ़ाई की उम्र से भी छोटे बच्चे को टीवी कार्टून में उलझा कर अपने जरूरी काम निपटाने लगे. टीवी का ये सिलसिला मोबाइल फोन के साथ भी बढ़ा. रोते हुए बच्चे को बझाने का सबसे सहज तरीका उनके बहुत सारे अभिभावकों को ये मिला कि उसके हाथ में एंड्रायड फोन पकड़ा दिया जाए. साथ उसे कुछ रोचक दिखाना भी था लिहाजा कोई कार्टूननुमा शो चला भी दिया जाता था.

इन दोनों का असर ये हुआ कि अगर कोई सर्वे कराया जाय तो मिलेगा कि बहुत ही कम परिवार ऐसे हैं जिनके बच्चे सार्थक बाल साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हों. मौका मिलते ही उनके लिए फोन, टैब और लैपटॉप या कम्प्यूटर पर चल रहा कोई शो और गेम में घुस जाना ही बहुत से बच्चों की आदत बन गई है. थोड़ा समझदार होने पर ये बच्चे सोशल मीडिया के जाल में फंस कर अपना समय गंवाने लगे. ये सब इस हद तक बढ़ने लगा कि जानकार और विशेषज्ञ सेहत के लिए आग्रह कर रहे हैं कि सप्ताह में कम से कम एक दिन उन्हें डिजिटल उपवास रखना चाहिए. यानी उस दिन गेम्स या शो बगैरह से बचें.

कोरोना में स्थिति और बिगड़ी

कोढ़ में खाज की स्थिलकति कोरोना के दौरान हो गई. कोरोना से परेशान लोगों को ऑनलाइन स्टडी के नाम पर बच्चों को आधिकारिक तौर पर फोन और कंप्यूटर जैसे इंस्ट्रूमेंट देने पड़े. बहुत से बच्चों का समय इन इंस्ट्रूमेंट्स पर वक्त की बर्बादी वाले गेम्स या शो पर गुजराते हैं. ऐसा नहीं है कि ये नए डिजिटल इंस्ट्रूमेंट बिल्कुल ही बेकार हैं बल्कि इनका सही और तार्किक प्रयोग बच्चों के लिए फायदेमंद भी हैं और जरूरी भी. फिर भी अच्छे और सार्थक साहित्य का स्थान दूसरी कोई भी चीज नहीं ले सकती.

भोजपुरी के शादी ब्याह से लेकर कजरी तक में बापू का वर्णन

खादी के कपड़े न पहनने पर शादी न करने की चेतावनी तक है भोजपुरी गीतों में रोजी-रोटी के लिए पलायन न करने की सलाह भी देती हैं महिलाएं महात्मा गांधी पर दुनिया भर के शास्त्रीय रचनाकारों ने बहुत कुछ लिखा, लेकिन बापू दुनिया उन चुंनिदा जन-नेताओं में हैं, जिन्हें लोक ने लोकगीतों में बसा लिया. शादी-ब्याह से लेकर अलग-अलग मौकों पर गाए जाने वाले लोकगीतों में बापू को शामिल कर लिया था. वैसे तो ये देश भर की तमाम

बोलियों-भाषाओं के गीतों में हुआ लेकिन अगर भोजपुरी भाषी इलाके का जिक्र किया जाए तो वहां के शादी-ब्याह में गीतों का खास महत्व है. बताने की जरुरत नहीं है कि लखनऊ से आगे उत्तर प्रदेश के पूरबी हिस्सों से लेकर तकरीबन पूरे बिहार में शादियों में जितनी अहमियत पंडित-पुरोहित के शास्त्रीय कर्म का है उतना ही महत्व महिलाओं के गीतों का भी है. महिलाएं झुंड बना कर शादी में लगातार गीत गाती हैं और इनमें से ज्यादातर राम-सीता विवाह प्रकरण से जुड़े होते हैं. लेकिन आजादी के संघर्ष के दौरान इनमें से बहुत से गीतों में बापू का जिक्र अभिन्न भाव से किया जाने लगा. यहां तक कि महिलाओं ने गाना शुरु कर दिया कि अगर खादी के कपड़े पहने लोग नहीं हैं तो शादी नहीं होगी -

फिरि जाहु फिरि जाहु, घर के समधिया हो
मोर धिया रहिहें कुंआरि.
बसन उतारि सब फेंकहु विदेशिया हो
मोर पुत रहिहें उघारि.
बसन सुदेसिया मंगाई पहिराइबि
तब होइहें धिया के बियाह.

शादी ब्याह के प्रसंग से आजादी के संघर्ष को जोड़ते हुए भोजपुरी समाज ने गांधी बाबा को दूल्हा बना दिया-

गाँधी बाबा दुलहा बनलें, नेहरू बनलें सहबलिया
भारतवासी बनलें बाराती, लंदन के नगरिया ना
बान्हि के खद्दर के पगड़िया, गाँधी ससुररिया चलले ना.

लोक में गांधी के प्रेम ने उन्हें अवतारी पुरुष बताते हुए भी भोजपुरी की रचनाएं की -

धीरे बहु धीरे बहु पछुआ बयरिया.
घमवा से बदरी करहुं रखवरिया.
जुग-जुग जोहि जेहि जगत पुरातन.
धरती पर उतरेला पुरुस सनातन.
नाहीं बड़ुए संखचक्र, नाहीं गदाधारी.
नाहीं बड़ुए दशरथ-सुत धनुधारी.
कान्हे पटपीत नाहीं, मुरली अधर नाहीं.
साक्य-राजपूत नाहीं, बनल भिखारी.
अबकी अजब रूप धइले, धइले गिरधारी.

बिहार में गांधीजी के जाने और आंदोलन के बाद के हालत का जिक्र करते हुए एक रचनाकार ने किसानों के धन जमा करके कोठिया खड़ा कराने वालों को चेतावनी दी -

गांधी के लड़ाई नाही, जितने फिरंगिया, चाहे करूं केतनो उपाय.
भल भल मजवा उड़वले हमर देसवा में, अब जइहें कोठिया बिकाय.

बापू के चरखा आंदोलन का समर्थन करते हुए लिखा गया -

मोरे चरखा के टूटे न तार, चरखवा चालू रहे।
गान्ही बाबा बनलै दुलहवा, अरे दुल्हिन बनी सरकार, चरखवा चालू रहे.
अपने प्रिय गांधी जी को जेल भेज देने पर भी भोजपुरी रचनाकारों ने खूब लिखा और कविता के जरिए अपना दुख जनता के बीच बांटा -

गांधी जइसन जोगी भईया जेहल में पड़ल बाटे
मिलि जुलि चलु आजु गांधी के छोड़ाईं जा
दुनिया में केकर जोर गांधी के जेहल राखे
तीस कोटि चलु अगिया लगाईं जा
गांधी के चरनवा के मनवा में ध्यान धरीं
असहयोग चलु आजु सफल बनाईं जा.
भोजपुरी में शादी व्याह के अलावा दूसरे मौकों पर गाएं जाने वाले गीतों में भी बापू को उसी तरह शामिल किया गया. खासतौर से कजरी जैसी विधा के गीतों में बापू का चित्रण रोचक है-

सावन भदऊवा बरसतवा के दिनवा रामा
हरि हरि बैठि के चरखवा कतबै रे हरि...
भोजपुरी गीतों में रोजी रोटी के लिए पूरब दिशा यानी कलकत्ता जाने के प्रसंग का चित्रण बहुत मार्मिक तरीके से किया गया है. इसे भी गांधी जी के ग्रामस्वराज से जोड़ते हुए गीत रचे गए और लोगों से अपील की गई कि वे यहीं रहे रोजी रोटी के ले पलायन न करें -

कातब चरखा, सजन तुहु कात,
मिलही एहि से सुरजवा न हो,
पिया मत जा पुरूबवा के देसवा न हो.

THE CORE IAS

क्या राम सिर्फ हिंदुओं के लिए ही हैं या बाकी सभी के लिए भी! ऐसे सवालों का प्रमाणिक जवाब है 'मेरे राम सबके राम'

बचपन से ही रोम-रोम में बसने वाले भगवान श्रीराम की महत्ता के बारे में हम सुनते आ रहे हैं. स्कूल-कॉलेज के दिनों में श्रीराम के बारे में पढ़ने के बाद उनके पुरुषों में उत्तम यानी मर्यादा पुरुषोत्तम होने का पता चला. लेकिन पिछले कुछ सालों में हुईं राजनीतिक घटनाओं को देखें तो लगने लगा कि ये वो राम नहीं जो रोम-रोम में बसते हैं. लेकिन फिर मैंने पत्रकार और लेखक फजले गुफरान कि नई किताब 'मेरे राम सबके राम' पढ़ी, तब पता चला कि श्रीराम का मतलब क्या है और क्यों उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं.

फजले गुफरान की किताब सच्चे अर्थों में एक मुकम्मल किताब है. इस किताब में राम के अवतार लेने से लेकर उनके जल समाधि लेने तक की जीवन यात्रा है. राम के आदर्श जीवन को पढ़ने के बाद पता चला कि मनुष्य होने

का मतलब क्या है, एक पुत्र होने का मतलब क्या है, एक भाई होने का मतलब क्या है, और सबसे बढ़कर एक पति होने का मतलब क्या है!

किसी का जीवन इतना विशाल भी हो सकता है कि उस पर सैकड़ों-हजारों किताबें लिखी जाएं, नाटक रचे जाएं, महाकाव्य की रचना की जाए! इतने के बाद भी ऐसा लगता है कि अभी बहुत कुछ है जो लिखा जाना बाकी है और अभी बहुत कुछ है जिसे पढ़े जाने की जरुरत है. लेकिन इस बहुत कुछ के बारे में अब सोचने की जरुरत नहीं है क्योंकि अब आपके हाथ में 'मेरे राम सबके राम' है जो आपको एक ऐसे जीवन की यात्रा पर ले जाएगी जो न सिर्फ सच्चे और आदर्श मनुष्य से रूबरू कराएगी, बल्कि सच्चे धर्म से भी मिलवाएगी और उस सच्चे समाज से भी जिसके निर्माण के लिए कोशिश हो रही है.
'मेरे राम सबके राम' एक ऐसी किताब है जो भारत के युवाओं को जागरूक भी करती है और श्रीराम के आदर्श पर चलने का रास्ता भी बताती है. आज विश्व भर में 300 से भी अधिक रामायण मौजूद हैं जो विभिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में रचित हैं. सिनेमा से लेकर साहित्य तक, लोककथाओं से लेकर नाटकों तक, हर जगह श्रीराम के जीवन की अदभुत गाथा मौजूद है. श्रीराम की जीवनी तो एक ही है लेकिन इनके जीवन को जितने लोगों ने चुना है, पढ़ा है वो सभी जानते हैं कि उनके जीवन के कितने आयाम हैं जो हमें दिखाई ही नहीं दे रहे.

प्रभात प्रकाशन से आई फजले गुफरान कि यह किताब वाकई में एक सम्पूर्ण किताब कही जाएगी. इस किताब को लिखने में दर्जनों किताबों से शोधपरक जानकारियां ली गई हैं. इसलिए पाठकों के लिए तो यह किताब बहुत रोचक बन पड़ी है. श्रीराम की पौराणिक बातों को तो अक्सर लोग जानते हैं लेकिन क्या कोई ऐतिहासिक बातों को भी जानता है? न के बराबर लोग जानते हैं. इस किताब में इतिहास और विज्ञान के शोध ग्रंथों से तथ्य लेकर ये प्रमाणित किया गया है कि श्रीराम का इतिहास क्या है!

इस किताब का सबसे रोचक पहलु इसके अध्यायों की विविधता है जो श्रीराम के जीवन को समझने में आसानी पैदा करती है. श्रीराम के बारे में तो आप सभी बहुत कुछ जानते हैं, क्योंकि वो आपके-हमारे आराध्य हैं. लेकिन अभी बहुत कुछ ऐतिहासिक रूप से जानना जरुरी है इसलिए ही इस किताब की रचना की गई है.

इस किताब को लिखने में फजले गुफरान ने ऐसी बहुत-सी बातों का ध्यान रखा है जो बेहद जरुरी चीज है. मसलन - फजले ने इस किताब के शीर्षक के जरिये ही ये संदेश दिया है कि श्रीराम पर पूरी दुनिया के हर इंसान का हक बनता है कि सब उन्हें प्यार करें. किसी एक धर्म या एक देश के श्रीराम हो ही नहीं सकते क्योंकि उन्होंने पूरे विश्व का मार्गदर्शन किया है, क्योंकि राम तो हम सबके हैं और हम सबके लिए बहुत प्यारे भी हैं.

कबीर के राम में खोजिए अपने राम

राम हम सबके हैं. कोई राम को जपता है, कोई राम को घट-घट में पाता है. किसी के राम तुलसी बाबा के राम है तो किसी के लिए कबीर के राम. एक सगुण के गीत गाता है तो दूजा निर्गुण का उपासक है. कबीर के यहां भक्ति में प्रभु से एकात्म हो जाने की आकांक्षा है. कबीर के लिए ईश्वर घट-घट के वासी हैं. उन्हें बाहर खोजने की जगह भीतर खोजने की आवश्यकता है.

इस वर्ष 4 जून को कबीर दास की 568 वीं जयंती है. कबीर दास के जन्म और जन्म तिथि को लेकर तमाम भ्रांतियां हैं. मान्यताओं के अनुसार उनका जन्म संवत 1456 विक्रमी ज्येष्ठ मास शुक्लपक्ष की पूर्णिमा के दिन लहरतारा तालाब, काशी (वाराणसी) में हुआ था. इनके मूल माता-पिता का नाम प्रमाणिक नहीं है. मान्यता अनुसार उनका जन्म किसी विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था, जिसने लोकलाज के भय से उन्हें टोकरी में सुला कर नदी की धारा में छोड़ दिया था. नदी तट पर नीरू और नीमा नामक निसंतान मुस्लिम दंपत्ति ने शिशु को देखा. उसे घर लाए और उसकी पुत्रवत परवरिश की. नीरू पेशे से जुलाहा था और कबीर पूरी उम्र खुद को हिंदू या मुस्लिम की जगह जुलाहा कहते रहे. इस तरह जन्म और माता-पिता के रूप में हिंदुओं और मुसलमानों ने कबीर को बांटना चाहा. विभाजन का यह झगड़ा कबीर के अंत समय तक चला.

किंवदंती हैं कि कबीर ने स्वामी रामानंद से दीक्षा प्राप्त करने के लिए एक सुबह अंधेरे पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर लेट गए. अंधेरे में स्वामी रामानंद कबीर को देख नहीं सके और उनका पैर कबीर को लग गया. कबीर को पैर लगा तो उनके मुंह से राम-राम निकल गया. कबीर ने इसे ही गुरुमंत्र माना.

कबीर दास वाराणसी में पैदा हुए और लगभग पूरा जीवन उन्होंने वाराणसी यानी काशी में ही बिताया लेकिन जीवन के अंत समय में वे मगहर चले गए थे वर्ष 1518 में यहीं उनकी मृत्यु हुई. कबीर स्वेच्छा से मगहर गए थे. वे इस अंधविश्वास को तोड़ना चाहते थे कि काशी में मृत्यु से मोक्ष मिलता है और मगहर में मृत्यु से नरक. ऐतिहासिक तथ्य यह भी संकेत करते हैं कि धर्म के ठेकेदारों ने जब बादशाह सिकंदर लोदी से शिकायत कर दी कि कबीर खुद को भगवान से बड़ा मानता है. सिकंदर लोदी की नाराजगी और कबीर को सजा देने तथा राम की कृपा से कबीर के इन सभी सजाओं से मुक्त हो जाने के अनगिनत किस्से हैं. यह भी माना जाता है कि सिकंदर लोदी और समाज के ठेकेदारों के दबाव में अंत समय में कबीर को काशी छोड़नी पड़ी थी. जीते जी भी कबीर को हिंदू-मुस्लिम में विभाजन को देखना पड़ा था और मृत्यु के बाद भी उनकी देह की अंति क्रिया अपने रिवाजों के अनुसार करने को लेकर हिंदू-मुसलमान भिड़ गए थे. मगहर में अब कबीर की समाधि भी है और उनकी मजार भी.

कबीर दास को पढ़ते हैं तो राम के होने के कई अर्थ खुलते हैं. जैसे वे कहते हैं कि हे मानव! तू केवल प्रभु का स्मरण कर, केवल उसी को अपना ध्येय बना. वही तुझको सब दु:खों से मुक्त कर सकता है, अन्यथा जैसे निहाई पर रखा हुआ लोहा हथौड़े की चोट से पीटा जाता है, वैसे ही तुझे सिर पर सांसारिक दु:खों की चोट सहनी पड़ेगी.

कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाड़ै ओट
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनो सहै सिरि चोट.
तुलसी और सूर जैसे सगुण भक्तों के विपरीत कबीर ने निर्गुणराम नाम के स्मरण को ही निर्गुण भक्ति का आधार माना है -

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई
अवगति की गति लखी न जाई.
चारि वेद जाके सुमृत पुरांना,
नौ व्याकरणां मरण ना जाना.

वरिष्ठ आलोचक व लेखक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी कबीर के राम को समझने में हमारी मदद करते हैं. वे बताते हैं कि कबीर और तुलसी दोनों मानवीय भावना के आश्रय हैं, आलंबन तो हैं ही. अंतर यह है कि कबीर के राम के पास केवल मानव हृदय है, तुलसी के राम के हृदय और शरीर दोनों हैं. कबीर के राम जननी हैं, भरतार हैं, पिता हैं और तो और उन्हें कुत्ते पालने का भी शौक है, लेकिन सब भाव रूप में लीला रूप में नहीं. कबीर और तुलसी के रामों का यह अंतर कबीर और तुलसी की संगति में है. कबीर के राम लोकनायक नहीं. कबीर के राम लोक में समाए जरूर हैं लेकिन निराकार हैं. डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं, कबीर के राम उस अर्थ में सामाजिक-ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं जिस अर्थ में तुलसी के राम. कबीर के रामराज्य के संस्थापक नहीं जहां बौद्धिक, दैहिक, भौतिक ताप न हो. कबीर के राम राजा न हों लोकनायक न हों लेकिन वे निर्गुण होते हुए भी सामाजिक-मानवीय गुणों के प्रतीक, स्रोत एवं समुच्चय हैं.

साहित्य आलोचकों ने कबीर के लेखन को साहित्य की दृष्टि से अनेक रूपों में देखा और विश्लेषित किया है. उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का सबसे बड़ा सेक्यूलर और क्रांतिकारी कवि करार दिया है मगर हम यहां साहित्य का विश्लेषण और आकलन नहीं कर रहे हैं. हमारा लक्ष्य तो लोक में व्याप्त कबीर हैं. कबीर को कई लोग दशकों से अपनी-अपनी तरह से गा रहे हैं. कुछ लोग आडंबरों, कुप्रथाओं, जड़ता और अंधविश्वासों के खंडन के लिए कबीर का साथ ले रहे हैं तो कुछ के लिए आस्था को व्यक्त करने का माध्यम बन रहे हैं कबीर. इस तरह मुहावरों और अनुभवों की अभिव्यक्ति में कबीर सारी सीमाओं को तोड़ते हुए प्रतीत होते हैं.

मेरे संगी दोइ जणा, एक वैष्णौ एक राम
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम.
मेरे तो ये दो ही संगी साथी हैं, एक वैष्णव और दूसरे राम. राम जहां मुक्ति के दाता हैं, वहीं वैष्णव नाम-स्मरण करवाता है. तब और किसी साथी से मुझे क्या लेना-देना?

कबीर' बन-बन में फिरा, कारणि अपणैं राम
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सबरे काम.

कबीर कहते हैं, अपने राम को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं एक वन से दूसरे वन में गया. जब मुझे वहां राम सरीखे भक्त मिल गए और उन्होंने मेरे सारे काम बना दिए. मेरा वन-वन भटकना तभी सफल हुआ.

जानि बूझि सांचहि तजै, करैं झूठ सूं नेहु
ताकी संगति रामजी, सुपिनें ही जिनि देहु.

जो मनुष्य जान-बूझकर सत्य को छोड़ देता है और असत्य से नाता जोड़ लेता है, हे राम! सपने में भी कभी मुझे उसका साथ न देना.

आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ
जब लग भेद न जाँणिये, राम कह्या तौ काइ.

आग कह देने से कोई इससे दग्ध नहीं होता है, अग्नि से जलने के लिए जरुरी है की कोई आग पर पांव रखे तभी वह अग्नि से जल सकता है. ऐसे ही जब तक भेद को जाना नहीं जाता है केवल राम-राम कह देने से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। यानी केवल दिखावे की भक्ति से कुछ लाभ नहीं होने वाला है जब तक रहस्य को समझ नहीं लिया जाए और सच्चे हृदय से भक्ति नहीं की जाए.

कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढ़े वन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया खोजत नाहिं.

जिस प्रकार कस्तूरी हिरण की नाभि में होती है और उसकी सुगंध से आकर्षित हिरण उसे जंगल में इधर-उधर खोजता रहता है उसी प्रकार मनुष्य भी भगवान को जगह-जगह ढूंढता रहता है जबकि ईश्वर संसार के कण-कण में व्याप्त है. कबीर ने राह दिखाई है, हम अपने राम को कबीर के राम में खोज सकते हैं. कबीर के वे राम जो घट-घट के वासी हैं.

आलोचक रमेश कुंतल मेघ का निधन, 'विश्वमिथकसरित्सागर' के लिए मिला साहित्य अकादमी पुरस्कार

हिंदी साहित्य की दुनिया में प्रतिष्ठित आलोचक और चिंतक रमेश कुंतल मेघ का 1 सितंबर, शुक्रवार को निधन हो गया. वे 92 वर्ष के थे. वे चंडीगढ़ में अपनी पुत्री शिप्राली टंडन के साथ रहते थे. रमेश कुंतल लंबे समय से बीमार चल रहे थे. शुक्रवार की सुबह उन्हें हार्ट अटैक आया और वे इस दुनिया से रुखस्त कर गए. जनवादी आलोचना के स्तंभ कहने जाने वाले प्रो. रमेश कुंतल मेघ ने अपना शरीर दान कर दिया है.

मेघ के निधन पर साहित्य जगत में शोक की लहर है. साहित्य अकादमी ने साहित्य जगत की इस क्षति पर शोक सभा का आयोजन करके रमेश कुंतल मेघ के साहित्य योगदान को याद किया. साहित्य अकादमी के सचिव के. श्रीनिवासराव और अन्य साहित्यकारों ने रमेश कुंतर मेघ को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की.

सचिव के. श्रीनिवासराव ने कहा कि प्रोफेसर रमेश कुंतल मेघ अपने पीछे समृद्ध कृतियों की अमूल्य विरासत छोड़ गए हैं, जो हमेशा हमारे बीच रहेंगी. साहित्य अकादमी प्रो. रमेश कुंतल मेघ के निधन पर अत्यंत शोक प्रकट करती है तथा दिवंगत लेखक के परिवार के प्रति संवेदना निवेदित करती है.

रमेश कुंतल मेघ का मूल नाम रमेश प्रसाद मिश्र था. वे हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित आलोचक और चिंतक थे. उनका जन्म 1 जून, 1931 को उत्तर प्रदेश के कानपुर में हुआ था. रमेश कुंतल मेघ ने अमरिका के आरकंसास विश्वविद्यालय में फुलब्राइट प्रोफ़ेसर और अमृतसर स्थित गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के भाषा संकायाध्यक्ष के रूप में कार्य किया था.

रमेश कुंतल मेघ ने आलोचनात्मक साहित्य साधना की शुरूआत जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कृति 'कामायनी' से की. मध्यकालीन साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय विश्लेषण के लिए उनके योगदान को हमेशा याद किया जाएगा. 'विश्वमिथकसरित्सागर', 'मनखंजन किनके', 'काँपती लौ', 'आथतो सौन्दर्यजिज्ञासा', 'मिथक से आधुनिकता तक' आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं.

मेघ को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान तथा बिहार सरकार के राजभाषा विभाग के सम्मान सहित आलोचना पुस्तक 'विश्वमिथकसरित्सागर' के लिए वर्ष 2017 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया. यह कृति घने परिश्रम और सघन चिंतन के सहारे तैयार की गई थी. इसमें सर्वत्र मिथ भौगोलिक मानचित्रों, समय-सारणियों, तालिकाओं, दुर्लभ चित्रफलकों तथा रेखाचित्रों का समावेश इसे अनूठा बनाता है.

डिप्लोमेसी ही नहीं साहित्य में भी 'जी 20' की गूंज, साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किया अनूठा कविता संग्रह

पूरी दुनिया की निगाहें इस समय नई दिल्ली में आयोजित हो रहे जी 20 शिखर सम्मेलन पर टिकी हुई हैं. दुनिया के अग्रणी 20 देशों के राष्ट्राध्यक्षों और प्रतिनिधियों की अगुवाई के लिए पूरा भारत भी जी 20 के रंगों में रंगा हुआ है. देश की राजधानी दिल्ली तो इन दिनों नई नवेली दुल्हन के शृंगार में सजी हुई है. विदेशी मेहमानों के स्वागत की विशेष तैयारी की गई हैं. ऐसे में भारतीय साहित्य ने भी इस अवसर को यादगार बनाने के लिए अनूठी पहल की है.

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने साहित्य अकादमी के सहयोग से एक कविता संग्रह का प्रकाशन किया है. "अंडर द सेम स्काई" नाम से प्रकाशित इस संग्रह में जी 20 समूह के 19 सदस्य और 9 आमंत्रित देशों की कविताएं प्रस्तुत की गई हैं.

साहित्य अकादमी के सचिव डॉ. के. श्रीनिवासराव ने बताया कि "अंडर द सेम स्काई" कविता संग्रह को प्रख्यात कवि, अनुवादक और निबंधकार रंजीत होसकोटे ने संपादित किया है. इस कविता संग्रह में विभिन्न स्थानों, शैलियों, पीढ़ियों और इतिहास से जुड़े 29 कवियों को एक साथ एक मंच पर लाने का काम साहित्य अकादमी द्वारा किया गया है.

सचिव के. श्रीनिवासराव ने बताया कि दुनिया की 17 भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते इस कविता संग्रह में बांग्ला, पुर्तगाली, स्पेनिश, अंग्रेजी, फ्रेंच, चीनी, स्लोवेनियाई, जर्मन, जापानी, कोरियाई, रूसी, अरबी, ज़िट्सौंगा, तुर्की, बहासा, इंडोनेशिया, डच और बहासा मेलायु भाषाओं की कविताएं अपनी मूल भाषा में अंग्रेजी अनुवाद के साथ शामिल हैं. उन्होंने बताया कि इस संग्रह में जिन कवियों की कविताएं शामिल की गई हैं वे अपने-अपने देश और वहां की साहित्यिक परंपराओं के दिग्गज हैं. इसमें कुछ युवा, समकालीन कवि भी शामिल हैं जिनकी रचनाएं वैश्विक वर्तमान की तात्कालिकता की गवाही देती हैं.

THE CORE IAS

साहित्य अकादमी के सचिव ने बताया कि कविता संग्रह में जी 20 में शामिल प्रत्येक देश की एक कविता को चुना गया है. भारतीय कवि के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' पुस्तक से 35 नंबर का गीत लिया गया है. उन्होंने बताया कि जिन कवियों और अनुवादकों ने इस खंड में योगदान दिया है, वे भौगोलिक दृष्टि से, पृथ्वी के सभी छह महाद्वीपों- एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, यूरोप, उत्तरी अमेरिका और दक्षिण अमेरिका से संबंधित हैं और "एक पृथ्वी, एक परिवार और एक भविष्य" की थीम का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं.

स्त्री की मुक्ति ही मानवता की मुक्ति है- अनामिका

पंडिता रमाबाई एक ऐसी महिला विद्वान थीं जिन्होंने हिंदू धर्म में महिलाओं की खराब स्थिति की ओर ना केवल ध्यान खींचा बल्कि विद्रोह भी किया. रमाबाई को देश की पहली फेमिनिस्ट कहा जाता है. उन्हें हिंदू धर्म के तमाम धर्मग्रंथ कंठस्थ थे. अपने तर्कों से वह हिंदू धर्म के बड़े से बड़े विद्वानों पस्त कर देती थीं. पंडिता रमाबाई ने ना

केवल अंतरजातीय विवाह किया बल्कि धर्म भी बदला. वे हिंदू से ईसाई बनीं. ऐसी ही विद्वान रमाबाई के व्यक्तित्व और उनके कार्यों को लेकर चर्चित लेखिका सुजाता ने उनकी जीवनी तैयार की है- 'विकल विद्रोहिणी: पंडिता रमाबाई'. यह पुस्तक राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुई और खूब चर्चित भी रही. इस पुस्तक पर राजकमल प्रकाशन समूह द्वारा एक गोष्ठी का आयोजन किया गया.

कार्यक्रम का संचालन कर रहे शोभा अक्षर ने श्रोताओं को गोष्ठी के विषय से परिचित करवाते हुए कहा कि सुजाता द्वारा लिखी गई पंडिता रमाबाई की जीवनी स्त्रीद्वेष से पीड़ित पितृसत्तात्मक समाज पर एक कड़ा प्रहार है.

सुजाता ने अपने वक्तव्य में कहा कि पंडिता रमाबाई की जीवनी लिखने का फैसला इसलिए लिया, क्योंकि वह उस वक्त को जीना चाहती थी, जो उन्होंने (रमाबाई ने) जिया. उनका जीवन अति नाटकीय, तूफानों और उथल-पुथल से भरा हुआ था. 19वीं सदी, जो कि एक पुरुष प्रधान सदी थी, वह उसमें अपने पांव जमा पाने में सफल रहीं. जिस तरह का वह समाज था, उस समय उनके चरित्र पर कई लांछन लगे होंगे. रमाबाई के इसी निर्भीक व्यक्तिव ने उन्हें प्रभावित किया.

सुजाता ने कहा, "भारत में सबसे पहले पंडिता रमाबाई ने ही नारीवाद की अवधारणा को उद्घाटित किया. उन्होंने अपनी किताब 'द हाई कास्ट हिन्दू वुमन' (The High-Cast Hindu Woman) में लिखा कि किस तरह हिन्दू धर्म में एक औरत को औरत बनाए जाने की ट्रेनिंग दी जाती है. रमाबाई ने देश-विदेश में अकेले यात्राएं करते हुए अपने भाषणों के जरिए धन एकत्रित किया और भारत लौटने पर हिन्दू विधवा लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला. यह कोई आसान काम नहीं था. ऐसा कर पाना आज भी किसी के लिए बहुत मुश्किल है."

सुजाता ने कहा कि जब भी समाज सुधारकों की फेहरिस्त बनती है तो उसमें पंडिता रमाबाई का नाम शामिल नहीं किया जाता है. क्या केवल इसलिए कि वह एक स्त्री थी? आज के समय में कई राजनीतिक दल और संगठन उनका नाम लेकर फायदा लेना चाहते हैं, लेकिन अगर वो एक बार रमाबाई के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे तो उनके नाम से दूरी बना लेंगे.

वरिष्ठ कवयित्री अनामिका ने कहा कि पंडिता रमाबाई हमारे समाज को समझाने निकली थीं. इसके लिए उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत और बंगाली भाषाएं सीखीं ताकि वह लोगों से संवाद कर सके. उनका सबसे बड़ा योगदान यही है कि वह संवाद के लिए प्रस्तुत होती है. उन्होंने कहा कि हर बड़े स्त्रीवादी आंदोलन के आंचल के तले हमेशा कोई न कोई बड़ा मुद्दा रहा है. स्त्रियों ने कभी अकेले अपनी मुक्ति के प्रयास नहीं किए. जिस तरह एक स्त्री को शिक्षित करना पूरे परिवार को शिक्षित करना है, उसी तरह स्त्री की मुक्ति ही मानवता की मुक्ति है. बृहत्तर मानवता की सेवा के रमाबाई के प्रयासों में भी हमें यही देखने को मिलता है.

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित अनामिका ने कहा कि पंडिता रमाबाई पर सुजाता की किताब बहुत ही व्यवस्थित किताब है. इसमें रमाबाई के बारे में सब कुछ है. इसमें उनकी पब्लिक डिबेट, कई लोगों से उनके संवाद भी शामिल हैं. यह बहुत ही सहज और सरल ढंग से लिखी गई किताब है.

इतिहासकार सुधीर चन्द्र ने पुस्तक से सुजाता की पंक्तियों को उद्धरित करते हुए कहा कि उन्नीसवीं सदी भारत में पुनर्जागरण की सदी मानी जाती है. खासतौर पर महाराष्ट्र और बंगाल में इस दौर में समाज सुधारों के जो आन्दोलन चले उन्होंने भारतीय मानस और समाज को गहरे प्रभावित किया.

उन्होंने कहा कि वह लेखक से पूर्ण सहमत हैं कि न केवल महाराष्ट्र बल्कि पूरे देश के नवजागरण को हमने अभी तक समझा ही नहीं है. देश में नवजागरण की चेतना फिर से जगानी चाहिए. यह हम तभी जान सकेंगे जब हमारे समाज में जो महान स्त्री-पुरुष थे, जिन्होंने समाज में नवजागरण की ज्योति जलाई, उन पर गंभीरता से ऐसा कुछ लिखा जाए जो कभी नहीं लिखा गया. इसका बीड़ा खास कर युवा वर्ग को उठाना होगा.

गौरतलब है कि सुजाता द्वारा लिखित किताब 'विकल विद्रोहिणी : पंडिता रमाबाई' भारत में स्त्रीवादी आंदोलन की अवधारणा की शुरुआत करने वाली एक प्रमुख चिंतक पंडिता रमाबाई की जीवनी है. यह किताब हमें बताती है कि किस तरह प्राचीन शास्त्रों की अद्वितीय अध्येता पंडिता रमाबाई उपेक्षाओं और अपमानों से लगभग अप्रभावित रहते हुए औरतों के हक में न केवल बौद्धिक हस्तक्षेप किया अपितु समाज सेवा का वह क्षेत्र चुना जो किसी अकेली स्त्री के लिए उस समय लगभग असंभव माना जाता था. उनके द्वारा विधवा महिलाओं के आश्रम की स्थापना, उनके पुनर्विवाह तथा स्वावलंबन की पहल और यूरोप तथा अमेरिका में जाकर भारतीय महिलाओं के लिए समर्थन जुटाने का उनका भगीरथ प्रयास अक्सर धर्म परिवर्तन के उनके निर्णय की आलोचना की आड़ में छिपा दिया गया. यह किताब उस दौर की उन अनेक महिलाओं के बारे में भी जरूरी सूचनाएं उपलब्ध कराती है जिन्हें आधुनिक इतिहास लेखन करते हुए अक्सर छोड़ दिया जाता है.

लोकचेतना के समांतर, जानिए परंपराओं से क्यों जुड़ी हैं स्त्रियां और प्रतीक

आज न पुराने रूप में संयुक्त परिवार हैं, न ही नगरों में वह सामुदायिक जीवन और न कृषि सभ्यता के मजबूत आधार। लेकिन ज्यादातर त्योहारों का शहरीकरण हो गया है। यह गांवों से चलकर छोटे कस्बों, शहरों और महानगरों में अपना विस्तार कर चुका है। जाहिर है कि पर्व का स्वरूप भी बदला है। गांवों में बड़े घरों और विस्तृत परिवेश में ज्यादा लोगों के जुटान की सहजता थी।

- संस्कृति में बहुत-सी परंपराएं ऐसी हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि इन्हें स्त्रियों ने बनाया होगा। इनकी मूल चेतना कृषि सभ्यता और सामंती व्यवस्था से जुड़ी हुई है, इसके स्पष्ट चिह्न इन परंपराओं में दिखाई देते हैं। कृषि सभ्यता में शारीरिक ताकत के प्रतीक वृषभ और पुरुष संतान की अहमियत है। युद्ध और खेती के लिए पुरुष शक्ति की प्रधानता स्थापित हुई। स्त्रियां खेती-किसानी का प्रमुख आधार रही हैं, लेकिन कठोर श्रम के काम के लिए तुलनात्मक रूप से बलिष्ठ ज्यादा मुफीद होते हैं।
- राजाओं, सामंतों, जमींदारों और धनी किसानों में बहु-पत्नी प्रथा थी
- दूसरा बड़ा कारण वैयक्तिक संपत्ति का उदय रहा है। वैयक्तिक संपत्ति के उदय ने संचित संपत्ति के वारिस का सवाल भी खड़ा किया। संतानोत्पत्ति के लिए स्त्रियों की उपयोगितामूलक भूमिका और बहु-पत्नी प्रथा को वैधता प्रदान की। अपने-अपने क्षेत्रों के लिए निरंतर होने वाले युद्धों ने बहुविवाह और एक से अधिक स्त्रियों से संबंध को सामान्य जीवन का अंग बना दिया। राजाओं से लेकर स्थानीय सामंतों, जमींदारों और धनी किसानों में बहु-पत्नी प्रथा विद्यमान थी। साधारण लोगों में भी बहु-पत्नी प्रथा स्वीकार्य थी।

- छठ पर्व का स्वरूप स्थानीय से राष्ट्रीय और अब वैश्विक हो गया
- ऐसे में राजा और धनी-मानी परिवारों में उसी स्त्री का सम्मान हो सकता था जो संपत्ति का वारिस यानी पुत्र पैदा करे। बहुत सारे पर्वों में इसी आग्रह का उदाहरण मिलता है। बिहार और कुछ अन्य हिंदीभाषी राज्यों में धूमधाम से मनाया जानेवाला हाल ही में बीता छठ भी एक ऐसा ही पर्व है। अब इसका स्वरूप स्थानीय से राष्ट्रीय और वैश्विक हो गया है। जहां-जहां पूर्वांचली पहुंचे हैं, अपने साथ इस व्रत को भी ले गए हैं।
- इसकी परिकल्पना किसी स्त्री या स्त्री समुदाय की ही होगी
- यों तो यह व्रत स्त्री-पुरुष सभी करते हैं, कई अन्य धर्मों के लोगों को भी विधि-विधान से छठ करते देखा जा सकता है, लेकिन इसकी परिकल्पना किसी स्त्री या स्त्री समुदाय की ही होगी। ऐसा इसके संपूर्ण कलेवर को देखकर कहा जा सकता है। इसके अधिकतर गीतों में प्रतापी पुत्र पैदा होने की प्रार्थना की गई है। इस पूरी प्रक्रिया पर गौर करें तो संयुक्त परिवार और भाई-भतीजियों से भरे-पूरे मायके की कामना भी होती है।
- आज न पुराने रूप में संयुक्त परिवार हैं, न ही नगरों में वह सामुदायिक जीवन और न कृषि सभ्यता के मजबूत आधार। लेकिन ज्यादातर त्योहारों का शहरीकरण हो गया है। यह गांवों से चलकर छोटे कस्बों, शहरों और महानगरों में अपना विस्तार कर चुका है। जाहिर है कि पर्व का स्वरूप भी बदला है। गांवों में बड़े घरों और विस्तृत परिवेश में ज्यादा लोगों के जुटान की सहजता थी।
- मसलन, पर्व में इस्तेमाल में आने वाला गेहूं सुखाने, महीनों से अन्य सामान जुटाने से लेकर प्रसाद बनाने तक जितनी जगह, साधन और सुविधा थी, जिस सहजता से प्रकृति प्रदत्त मौसमी फल-फूलों से नदी या तालाब के किनारे घाट बनाकर पूजा की जा सकती थी, वह शहरों में संभव नहीं। प्रदूषित नदियों और मिलावटी सामानों, छोटे घरों, कैसेट पर बजते गीतों ने इस सामुदायिक पूजा का स्वरूप ही बदल दिया है। लेकिन भारतीय मानस ने इन सबके साथ सामंजस्य बैठा लिया है। सब उपादानों के साथ कुछ फेर-बदल करके पूजा का स्वरूप उसी अनुसार बदल लिया है। कुछ नई चीजें भी शामिल हुई हैं, जैसे मेंहदी, महंगे वस्त्र, अलंकार, आधुनिक सौंदर्य। कहीं-कहीं कथा कहते पंडित जी!
- यह अपने आप से पूछा जानेवाला सवाल है कि भारतीय परिवेश में रहकर क्या हम तीज-त्योहारों से दूर रह सकते हैं? होली, दिवाली, दुर्गापूजा, कालीपूजा, गणेश पूजा, ईद, क्रिसमस, नया साल सबका है। इनसे जुड़े आयोजन आनंदोत्सव का रूप हैं। समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण के पुराने अस्त्र हैं। जीवन की एकरसता को तोड़ते हैं और आपस में घुलने-मिलने का अवसर देते हैं। ऐसे में पढ़ा-लिखा, वैज्ञानिक चेतना से संपन्न स्त्री या पुरुष तबका विभिन्न कारणों से इनसे अलगाव का भाव प्रकट करता है तो उसके जायज कारण होने के बावजूद स्वीकार्य नहीं होगा।
- इसे ऐसे समझा जा सकता है कि हम दहेज हत्या के खिलाफ चेतना पैदा करने के लिए शहर के सात सितारा होटल में मुट्ठी भर नामचीन लोगों की गोष्ठी करें। जरूरत है कि जब तक हम समाज को एकदम आधुनिक, वैज्ञानिक और शिक्षित नहीं बना लेते, तब तक समाज के भीतर रह रहे साधारण लोगों की चेतना, विश्वासों, सांस्कृतिक रूपों और लोक-शिक्षा को जानने का प्रयास किया जाए।
- इस लिहाज से देखें तो पारंपरिक पर्वों के गीत लिखने वाले नए गीतकार पैदा होने चाहिए, जिनकी कलम से नई बदली सामाजिक चेतना को स्वर मिल सके। बेटा-बेटी बराबर हैं, विवाह के भीतर स्त्रियों के अधिकार बराबर हैं, पितृसत्तात्मक विचारों और प्रथाओं में स्त्री का दमन होता है- यह चेतना काफी लोगों में है, लेकिन अमल में फर्क आ जाता है। इसे दूर करने की जरूरत है। इससे लोकपर्व भी बचेगा और समाज को भी उनसे गति और उत्साह मिलता रहेगा। लोक-आनंद के रूपों को सचमुच बचाना है तो त्योहार के स्वरूप में बदलाव लाना होगा

भाषा का जीवन, बहुत-सी भाषा और बोलियों के मध्य 'हिंदी' ने बनाए रखा अपना स्थान

हिंदी के भाषिक प्रयोग के लिए देवनागरी लिपि की अपेक्षा रोमन लिपि के बढ़ते चलन ने एक वर्ग को भारतीय भाषाओं के साहित्य से दूर कर दिया है। आज भारतीय साहित्य हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा में अधिक पढ़ा जा रहा है।

भाषा को मजबूत बनाने में लिपि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आज हिंदी का अपना बाजार है। यह बाजार सिनेमा, विज्ञापन और प्रौद्योगिकी का है। किसी भी भाषा का बाजार पर अपनी मजबूत पकड़ बनाना सरल नहीं होता है। भाषा का आर्थिक, सामाजिक और भाषिक व्यवहार ही उसे बाजार की भाषा बनाता है। आज हिंदी वैश्विक बाजार की भाषा बन कर उभर रही है। मगर यह भाषा 'हिंग्लिश' है। बाजार की इस चकाचौंध में हिंदी का व्यावहारिक पक्ष तो मजबूत हुआ है, लेकिन उसका भाषिक पक्ष कमजोर हुआ है। आज हिंदी को बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या सबसे ज्यादा है। यही कारण भी है कि विविधताओं से भरे हमारे देश में जहां हर चार कोस में बोली-भाषा का स्वरूप बदल जाता है, वहां बहुत-सी भाषा और बोलियों के मध्य 'हिंदी' ने अपना स्थान बनाया है। वह संप्रेषण और रोजगार की भाषा बनी है।

हिंदी की देवनागरी लिपि के प्रयोग की अपेक्षा रोमन लिपि में लिखने का चलन बढ़ा

हिंदी की इस मजबूत स्थिति के साथ उसका कमजोर पक्ष भी उभरा है। यह पक्ष हिंदी की लिपि का है। आज जब हम बाजार की चकाचौंध में चमकती हिंदी का गुणगान करते हैं तो उसके व्यावहारिक पक्ष को देखते हैं, लेकिन भाषिक पक्ष को अनदेखा कर देते हैं। बाजार, सिनेमा और विज्ञापन में हिंदी और उसकी लिपि के प्रति भेदभाव की मानसिकता को नहीं देख पा रहे हैं। हिंदी की देवनागरी लिपि के प्रयोग की अपेक्षा रोमन लिपि में लिखने का चलन बढ़ा है। यह चलन हिंदी के भाषिक पक्ष को कमजोर बनाता है।

सोशल मीडिया से लेकर कंप्यूटर तक की भाषा अंग्रेजी है

अक्सर प्रश्न किया जाता है कि 'हिंदी' चूंकि संस्कृत के अधिक निकट है, इस कारण भाषिक व्यवहार में कठिन शब्दों के प्रयोग के कारण युवाओं को उसे सीखने में समस्या आ रही है। दूसरा, सोशल मीडिया से लेकर कंप्यूटर तक की भाषा अंग्रेजी है। इसका कारण भाषा की संप्रेषणीयता है। वहीं अंग्रेजी के प्रति इस तरह की धारणा सुनने को नहीं मिलती है। चूंकि वह भाषा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अधिक सक्षम है तो हम हिंदी भाषी होने के बावजूद अन्य भाषा को सीखकर उस पर पूरी तरह अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और वह हमारे विद्यालयी पाठ्यक्रम में अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ी-पढ़ाई जा रही है।

वहीं हम 'हिंदी' के प्रति संस्कृत से उसकी निकटता के कारण कठिनता का आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहे हैं। भाषा कोई भी कठिन और सरल नहीं होती है। यह हमारी मानसिकता है, जिसने इसे दो खेमों में विभाजित किया है। इसी ने अंग्रेजी को उपयोगी और सरल बताया और हिंदी को दुरूह होने की श्रेणी में डाल दिया।

देवनागरी लिपि की बात करें तो यह जितनी सरल और वैज्ञानिक है, वह वैज्ञानिकता अन्य भाषाओं की लिपियों में नहीं मिलती है। हिंदी की देवनागरी लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न का प्रयोग होता है जो रोमन लिपि में

नहीं है। यहां एक ही ध्वनि 'क' के लिए 'सी', 'के' और 'क्यू' का प्रयोग होता है। इस कारण अंग्रेजी भाषा की रोमन लिपि को सीखते समय उसके उच्चारण क्रम में एक ही वर्ण के प्रयोग के साथ शब्दों के अलग-अलग उच्चारण क्रम को भी सीखना पड़ता है। लेकिन अंग्रेजी भाषा के प्रति प्रेम और सीखने की ललक उस लिपि के प्रत्येक पक्ष को सीखने में सहायक बनता है। यहां मकसद किसी भाषा को श्रेष्ठ या फिर कमतर बताना नहीं है, बल्कि हिंदी के प्रति हमारी संकुचित दृष्टि को जानना है।

भाषा के विकास में केवल उसका व्यावहारिक पक्ष ही कारगर नहीं होता है, बल्कि उसका भाषिक प्रयोगात्मक पक्ष भी अनिवार्य होता है। हम एक को लेकर दूसरे को छोड़ नहीं सकते हैं। हिंदी के भाषिक प्रयोग के लिए देवनागरी लिपि की अपेक्षा रोमन लिपि के बढ़ते चलन ने एक वर्ग को भारतीय भाषाओं के साहित्य से दूर कर दिया है। आज भारतीय साहित्य हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा में अधिक पढ़ा जा रहा है। लिपि जो भाषा की प्राणतत्व है, भाषा को स्थायित्व और संग्रहणीय बनाती है। यह कैसे हो सकता है कि हम उसके एक पक्ष को अपनाएं और दूसरे को छोड़ दें। हिंदी भाषा की मूल समस्या उसके व्यावहारिक प्रयोग की नहीं है। बावजूद इसके हिंदी की सबसे बड़ी समस्या उसके लिपिगत प्रयोग से है। किसी भाषा की मूल लिपि के प्रयोग की अपेक्षा सरलता के क्रम में रोमन लिपि का बढ़ता प्रचलन किसी भी भाषा के लिए हितकर नहीं है।

आज के दौर में कठिन से सरल के प्रवाह में देवनागरी लिपि का स्थान रोमन लिपि ले रही है। सरलता के इस प्रवाह में हम भाषा के मूल व्यवहार और उसकी संरचना को अनदेखा कर देते हैं। हमारा समाज बहुभाषी है। हमारी अपनी ही बहुत-सी बोली, भाषाएं और लिपियां है। इसके बावजूद हमारे देश में देवनागरी लिपि की अपेक्षा रोमन लिपि का प्रयोग बढ़ रहा है। एक ओर हम भारतीय भाषाओं, बोलियों और लिपियों को फिर से जीवंत बनाने, उनके शैक्षिक और साहित्यिक योगदान को मजबूत बनाने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं हिंदी को देवनागरी लिपि में लिखे जाने की अपेक्षा रोमन लिपि में लिखे जाने की बहस चल रही है। ऐसे में हमारी बोलियां और भाषाएं अपना अस्तित्व खो देंगी, क्योंकि वह लिपि ही है जो किसी भाषा को स्थायी, सजीव और संग्रहणीय बनाती है

'हिंदी है हमारी संस्कृति और नागरिकता का प्रतीक'

भाषा विज्ञान में कहा गया है कि हिंदी भाषा खुद विचारों को व्यक्त करने की क्षमता रखती है और इसे अपनी अद्वितीय भूमिका के लिए पहचाना जाता है।

THE CORE IAS

हिंदी शब्द अपने आप में फारसी का होकर भी कभी हमें फारसी-सा नहीं लगा है। हमने कभी उसे ऐसा लगने भी नहीं दिया है। हिंदी सबको साथ लेकर चलने वाली भाषा है। इसकी उत्पत्ति 'हिंद' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है भारत। इस प्रकार, हिंदी का अर्थ है 'भारतीय'। यही कारण है कि अमीर खुसरो के 'हिंदवी' शब्द को धारण किए भारत की गोद में झूलने का जो सुख हिंदी को मिला है, वह किसी और भाषा को नहीं मिला। इसका कारण यह है कि हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीयता की परिचायक है, सच्चे अर्थों में भारतीय भाषा है।

हिंदी हिंदवी के शैशवास्था से होते हुए प्राकृत की अपभ्रंश भाषा के बाल्यकाल में खेलते हुए आगे चलकर कबीर के अक्खड़पन में डूबती है, तो कभी जायसी के प्रेममार्ग पर चलकर 'पद्मावत' बन बैठती है। हिंदी को केवल भाषा समझना सबसे बड़ी भूल है। यह भारत की एक अमूल्य धरोहर है, भारत के लोगों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

भाषा विज्ञान में कहा गया है कि हिंदी भाषा खुद विचारों को व्यक्त करने की क्षमता रखती है और इसे अपनी अद्वितीय भूमिका के लिए पहचाना जाता है। अनेक भाषाओं के संक्षिप्त रूपांतरण के बावजूद हिंदी भाषा सुरभि है

और भाषा की उदात्तता और मनोहारिता दिखाई देती है। यह भाषा विश्व योगदान के नुकसान को परिहार करने का सामर्थ्य रखती है।

मानवीय पहचान के रूप में महत्त्वपूर्ण है और अपनी विविधता के कारण ऐक्य और भाईचारे को प्रोत्साहित करती है। यह भाषा भारत की भूमि से नहीं, बल्कि उसके नागरिकों की भावनाओं और संस्कृति से जुड़ी हुई है। यह भारत की एकता की मजबूती को प्रतिष्ठित करती है। यह बेवजह नहीं है कि कलात्मक ऊंचाई से लेकर जमीन पर जनभाषा के रूप में हिंदी उतनी ही जीवंत दिखती है। विचार और विमर्श की भाषा के स्तर पर भी यह उतनी गंभीर और व्यापक दायरे में अपना प्रभाव छोड़ती है, तो दूसरी ओर आम जन भी इस भाषा के जरिए अपना जीवन संभालते देखे जाते हैं।

सच यह है कि जिस समाज में हिंदी एक आम भाषा रही है, उसमें हिंदी में अपने विचार अभिव्यक्त करना आसान होता है और इसमें संवेदनशील होने का एक अहम गुण है। इस भाषा को माध्यम के रूप में उपयोग करने से मनोभावना और अभिव्यक्ति में महत्त्वपूर्ण पारितोषिक आत्म-सम्मान की प्राप्ति होती है। यह भाषा हमें स्वतंत्रता और सामरिकता का आनंद देती है, हमें हमारी भावनाओं की सीमाओं से पार जाने का अवसर देती है। हिंदी के शाब्दिक और व्याकरणिक नियम सरल होने के कारण वक्ता रचनात्मकता की सीमाएं चुन सकता है।

साहित्य की दुनिया के तमाम विद्वानों ने हिंदी को इसकी खूबसूरती और असीम व्यापकता में निहित बताया है। इस संबंध में रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि हिंदी भाषा का पुनरुत्थान हमारी संस्कृति और नागरिकता का प्रतीक है। 'मधुशाला' के लेखक हरिवंश राय बच्चन कहते हैं- 'हिंदी भाषा में झलकती हुई कविता हमारी अंदरूनी स्वतंत्रता का प्रतीक है', जबकि 'ठेले पर हिमालय' धरने वाले धर्मवीर भारती के शब्दों में- 'हिंदी भाषा की सुंदरता और अमरता उसके लहरदार अवतरणों में निहित है।' वहीं अमृता प्रीतम का कहना है कि हिंदी भाषा में कविता मन, शरीर और आत्मा के संगम पर जीवन देती है।

हिंदी भाषा का विकास बहुत संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण अंश है, इसलिए हमें अपनी रोजमर्रा की बातचीत में हिंदी भाषा का उपयोग करने की कोशिश करनी चाहिए। हमें हिंदी का सदुपयोग करने की आदत डालनी चाहिए और इसे अपने मूल्यों और संस्कृति के साथ जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। हमें शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी को महत्त्व देना चाहिए।

विद्यालयों और महाविद्यालयों में हमें हिंदी भाषा को उच्चतम स्थान देना चाहिए और उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में भी हिंदी के पाठ्यक्रम और शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, हिंदी साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्मेलनों का आयोजन करना चाहिए। ये सम्मेलन लेखकों, कवियों, काव्यानुभवों, प्रोफेसरों, विद्यार्थियों और विद्वानों को जोड़ने और हिंदी भाषा के विकास की पुष्टि करते हैं।

हमें तकनीकी और अद्यतन भाषा माध्यमों का सही उपयोग करना चाहिए। इंटरनेट, मोबाइल अनुप्रयोग, सोशल मीडिया और अन्य संचार माध्यमों से हमें हिंदी भाषा को प्रबल करना चाहिए और इसके पठन और पढ़ने में अधिक समय देना चाहिए। हमें हिंदी साहित्य, कहानियों, कविताओं, नाटकों और अन्य लेखों को पढ़ने की रुचि बढ़ानी चाहिए। लेखकों और कवियों की रचनाओं का आनंद लेना चाहिए और हिंदी अनुवादों का समर्थन करना चाहिए।

ये कुछ औपचारिक प्रयास हो सकते हैं, लेकिन इन्हीं सबसे कोई संस्कृति बनती है और उसमें हमारे गर्व के विषय तय होते हैं। यह सच है कि हमें भारतीयता का परिचय कराने वाली हमारी लाड़ली हिंदी ही है। हम सब में जब तक यह भावना नहीं पनपेगी, तब तक यह कहना कि 'हिंदी हैं हम' केवल शब्द बनकर रह जाएगा। असली पहचान इस भाषा को गले लगाने से मिलना है।

सृजन की हर साहित्यिक विधा भाषा की कसौटी पर ही कसी जाती

दुनिया के जितने देश महाशक्ति के तौर पर जाने जाते हैं, वे अपनी राष्ट्रीय भाषा में बड़े काम करते देखे जा सकते हैं।

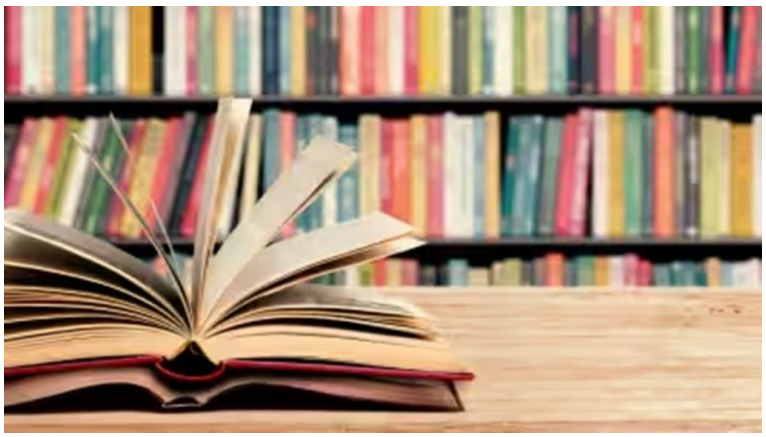

अपने आसपास हम आजकल कई बार जिस तरह की भाषा से गुजरते हैं, उसे देख कर ऐसा लगता है कि लोगों के भीतर इस मामले में नाहक आक्रामकता बढ़ती दिख रही है। क्या इसे समय के बदलाव के साथ लोकतंत्र में भी भाषा के जायके बदलने के तौर पर देखा जा सकता है? हम जिस समय में जी रहे हैं, वह विश्व बाजारवाद का समय है।

इसमें समय मनुष्य का न होकर मशीनों का है, उपकरणों का है और नई-नई अवधारणाओं का है। हम सूचना के विस्फोट के ऐसे समय में हैं, जहां प्रचार के बड़े माध्यमों का भाषा पर दबदबा है, जिसके चलते आज वह जड़ विहीन और तात्कालिक होती जा रही है। इसे इस रूप में देख सकते हैं कि 'बोलो और भूल जाओ'! सवाल है कि इस बढ़ती प्रवृत्ति का हासिल क्या होना है, क्या इसका अंदाजा लगाया जा पा रहा है?

भाषा अब कलात्मकता के साथ बनाई जाती है। भवन, भूषा, भोजन सब बदल चुके हैं। पिज्जा आज का भोजन हो गया है तो बर्गर नाश्ता। भाषा के माध्यम से बाजार को विकसित करने की धारणा ने भाषा की शुद्धता और सृजनशीलता को थोड़ा असुरक्षित कर दिया है। भाषा में प्रयोग और नवाचार भाषा को समृद्ध बनाते हैं, लेकिन आज बाजार की सुविधा के लिए गढ़े जाने वाले शब्द जन्म ले रहे हैं। इसे भाषा की अशुद्धि कहें या खिचड़ी, इसमें वंचित जनता की मार्मिक स्थितियों की छवि नहीं दिखाई पड़ती। उनके जीवन के तनाव को नहीं देखा जा सकता।

भाषा की ऐसी गति बुद्धिजीवियों को कैसे शांत रख सकती है? यह स्वाभाविक भी है। सृजन की हर साहित्यिक विधा भाषा की कसौटी पर ही कसी जाती है। अभी तक दुनिया के जितने देश महाशक्ति के तौर पर जाने जाते हैं, वे अपनी राष्ट्रीय भाषा में बड़े काम करते देखे जा सकते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और जापान जैसी महाशक्तियां अपनी भाषा अंग्रेजी, फ्रेंच या जापानी में ही चिंतन, खोज और काम करते हुए समृद्ध हुए हैं। सिर्फ भारत में कल्पना की जाती है कि यह देश भारतीय भाषाओं और खास कर हिंदी को किनारे रख कर महाशक्ति बन जाएगा। ऐसा लगता है कि भारत में औपनिवेशिक 'हैंगओवर' छाया हुआ है।

इसकी एक वजह शायद सांस्कृतिक रूप से आत्मविश्वास की कमी भी है। दूसरी कसर टेलीविजन पूरी कर देता है, जिसमें ऐसी लोकप्रियतावादी चीजें ज्यादा दिखाई जाती हैं, जिनके विज्ञापन से बाजार विकसित हो सके। फिर उसकी भाषा चाहे जो भी हो। केवल माल बेचने और गांव-कस्बों में नए बाजार बनाने के लिए हिंदी का जिस सुविधा के साथ प्रयोग हो रहा है, वह एक तदर्थ और व्यावहारिक उद्देश्य के लिए है, किसी व्यापार आदर्श, राष्ट्र निर्माण या मूलगामी परिवर्तन के लिए नहीं। कारोबार में भी किसी उच्च प्रशासनिक बैठक का वार्तालाप हिंदी में नहीं होता। विज्ञापन एजेंसियों में सारे विज्ञापन पहले अंग्रेजी में बनते हैं, बाद में जैसे-तैसे उनका कामचलाऊ हिंदी में अनुवाद कर दिया जाता है।

भाषा की यह हालत केवल बाजार में नहीं, राजनीति में भी है। जबकि लोकतंत्र में शपथ की भाषा अनुशासन है। अब स्थिति यह है कि भाषा के साम्राज्य में शब्दों की सीमा और अक्षरों की आचार संहिता ने वर्तनी में इन दिनों नए

शब्द सर्वमान्य प्रचलित परंपरा बनकर आ गए। या यों भी कहा जा सकता है कि हिंदी के घर में अंग्रेजी के आगत अतिथि के रूप जमात लगाकर बैठे हैं।

इन शाब्दिक अतिथियों को घर से बाहर का रास्ता दिखाने के लिए आए दिन हिंदी दिवस पर लंबे-लंबे भाषण दिए जाते रहे हैं। देश भर के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण संवाद मंचों में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की तरह 'अंग्रेजी घर छोड़ो' के संवादात्मक असफल निवेदन किए जाते रहे हैं। अंग्रेजी के शब्द हिंदी के घर में जिस तरह गैरजरूरी तरीके से भी प्रयोग किए जा रहे हैं, उनके भी अन्य भाषाओं के संपर्क में आकर समृद्ध होने की जगह किसी नकारात्मक और नुकसानदायक संक्रमण का शिकार होने की पूरी आशंका हैं या फिर हिंदी के ही कुछ शब्द 'भीड़ तंत्र' का शिकार न हो जाएं।

ऐसा जब हो रहा होता है, तब पता नहीं चलता है। बल्कि कई बार उसे सकारात्मक प्रभाव वाला बता कर पेश किया जाता है। लेकिन बाद में जब उसका असर जमीन पर उतरने लगता है कि और वास्तविक हकदारों को वंचित करने लगता है, तब उसकी हकीकत और चाल का अंदाजा लगता है। भारत की विशाल अल्पशिक्षित और साधनहीन जनता, विशेषकर भावी पीढ़ी अपनी जरूरतों के साधनों की पूर्ति के साथ अपनी दिनचर्या मौज-मस्ती और उपभोग को टेलीविजन पर बाजारीकरण की भाषा के माध्यम से देख रही है। यह वैश्विक बाजार में हिंदी भाषा की कुल भूमिका है। इस पर भाषा वैज्ञानिकों सुभचिंतकों, हिंदी सेवियों के साथ नीति निर्धारकों को भी गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है।

जेसीबी चालक को मिला केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार

अखिल के संघर्ष के बीच आगे बढ़ने की कहानी लोगों को प्रेरण देती है।

- जीवन के विशाल अनुभवों के बिना महान पुस्तकों की रचना नहीं होती और यह बात केरल के एक जेसीबी चालक पर भी लागू होती है। जिसने जीवन की कड़वी हकीकत को पीछे छोड़कर एक प्रतिष्ठित साहित्यिक पुरस्कार अपने नाम कर लिया।
- हाल ही में जब केरल साहित्य अकादमी ने अपने प्रतिष्ठित वार्षिक पुरस्कार के विजेता की घोषणा की, तो 28 वर्षीय अखिल के संघर्ष के बीच आगे बढ़ने की कहानी पर भी रोशनी पड़ी। अखिल ने अपनी मेहनत से खुद को एक लेखक के रूप में तराशा। रचनात्मकता की यह उल्लेखनीय कहानी दक्षिणी राज्य केरल से आई है जिसकी सबसे अधिक साक्षरता दर को लेकर तारीफ की जाती है। अखिल को केरल साहित्य अकादमी का 2022 का प्रतिष्ठित 'गीता हिरण्यन एंडोमेंट' पुरस्कार दिया गया है।
- 12वीं के बाद अपनी पढ़ाई छोड़ चुके अखिल को लघुकथाओं के संग्रह 'नीलाचदयन' से यह पहचान मिली है। उनकी यह पुस्तक 2020 में प्रकाशित हुई थी। अखिल ने कहा कि मुझे जो पहचान मिली है, उससे मैं खुशी महसूस करता हूं। यह अप्रत्याशित था। उन्होंने अपनी पहली साहित्यिक कृति के प्रकाशन को लेकर अपने संघर्ष की कहानी बताई। वैसे तो अखिल जेसीबी चालक के रूप में काम करके थक जाते हैं, लेकिन उसके बाद भी वे अपने विचारों को रात में लेखनीबद्ध करते हैं।
- उन्हें परिवार का सहारा बनने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। लेकिन साहित्य के प्रति उनका अनुराग बना रहा। उनके परिवार में माता-पिता, भाई और दादी हैं। लेकिन एक दिहाड़ी मजदूर को यह प्रतिष्ठित साहित्यिक पुरस्कार मिलने की उपलब्धि के पीछे एक कटु सच्चाई छिपी है जो उभरते लेखकों के सामने आती है और वह है प्रकाशन का मौका हासिल करना।

- उन्होंने कहा कि चार वर्षों तक मैंने अपने लेखन कार्य के प्रकाशन के लिए कई प्रकाशकों एवं पत्रिकाओं से संपर्क किया था। उनमें से कुछ प्रकाशकों को मेरी कहानियां पसंद आईं, लेकिन उन्होंने मुझसे कहा कि उनके लिए बाजार ढूंढ़ना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि मैं इस क्षेत्र में जाना-पहचाना नाम नहीं था। 'नीलाचदयन' तब प्रकाशित हुआ है जब अखिल ने फेसबुक पर एक विज्ञापन देखा। उसमें कहा गया था कि यदि लेखक 20000 रुपए दे तो वह उसकी पुस्तक का प्रकाशन करेगा।
- अखिल ने बताया कि मैंने करीब 10 हजार रुपए बचाकर रखे थे। दिहाड़ी मजदूरी करने वाली मेरी मां ने अतिरिक्त 10 हजार रुपए जुटाने में मेरी मदद की और हमने पहली पुस्तक के प्रकाशन के लिए पैसे दिए। यह केवल आनलाइन बिक्री के लिए थी। चूंकि यह पुस्तक दुकानों में नहीं थी इसलिए उसने कोई ऐसा प्रभाव नहीं पैदा किया।
- अखिल ने बताया कि इस पुस्तक को तब पहचान मिली जब बिपिन चंद्रन ने फेसबुक पर उनके बारे में सकारात्मक बातें लिखीं। अखिल ने कहा कि बाद में लोग पुस्तक की दुकानों पर उसके बारे में पूछने लगे और प्रकाशन शुरू हो गया। अब तक आठ संस्करण प्रकाशित हुए हैं।

गांवों की बदलती संस्कृति: आती अंग्रेजी, जाती हिंदी

हम यह सुनते-सुनते बड़े-बूढ़े हुए हैं कि भारतवर्ष गांवों का देश है।

प्रतीकात्मक तस्वीर।

गांवों की सभ्यता और संस्कृति, बोली-बानी अब वही नहीं रही, जो पचास-साठ साल पहले हुआ करती थी। गांव भी अब शहर बनने को आतुर हैं। वहां खेती-किसानी से लेकर रहन-सहन तक के तौर-तरीके बदल गए हैं। अंग्रेजी का प्रभाव वहां भी दिखने लगा है। कुछ तो तकनीकी प्रभाव में अंग्रेजी गांवों में घुसी है और कुछ सहज ढंग से उसे लोगों ने स्वीकार कर लिया है। शहरों के प्रभाव में वहां भी घर बनने लगे हैं, भोजन-वसन के तौर-तरीके अपना लिए गए हैं। रिश्तों के पारंपरिक नाम भी अब अंग्रेजी वाले हो गए हैं। गांवों से हिंदी शब्दों के विलुप्त होते जाने और उनकी जगह अंग्रेजी शब्दों के काबिज हो जाने की कहानी बता रहे हैं सत्यदेव त्रिपाठी।

हम यह सुनते-सुनते बड़े-बूढ़े हुए हैं कि भारतवर्ष गांवों का देश है। और, भाषा की प्रकृति को लेकर कहावत रही है कि 'चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी'। मगर स्वातंत्र्योत्तर काल- बल्कि उन्नीस सौ सत्तर के बाद का काल देखें, तो ये दोनों ही सच्चाइयां बदलते-बदलते आज प्राय: झूठी पड़ गई हैं। भारत अब उस तरह के गांवों का देश नहीं रहा और जो भाषा आज बन रही है, वह आठ तो क्या, आठ सौ कोस पर भी नहीं बदलेगी।

सबसे पहले तो सड़कों और पक्के मकानों ने गांवों की परिवेशगत निजता को खत्म कर दिया। जहां जाओ, सब कुछ एक जैसा दिखता है, जो प्राय: शहर जैसा है। सारी भिन्नताएं खत्म होकर एकरूपता में बदलती जा रही हैं, जिसके लिए अंग्रेजी में कहावत है- 'यूनीफार्मिटी इज ए डेंजर'- एकरूपता बहुत बड़ा खतरा है।

एक और सामान्य सत्य यह कि नियम-कानून और व्यवस्था की तरह ही भाषाएं भी प्रथम और अंतिम रूप से सत्ता-संचालित होती हैं- बीच में भले कुछ अलग हो जाता हो। इसके मोटे उदाहरण के रूप में देख सकते हैं कि भारतवर्ष में पहले पाठशाला या विद्यालय में पुस्तक और ग्रंथ पढ़े जाते थे, लेखनी से लिखा जाता था।

मगर मुसलमानों के लंबे शासनकाल में मदरसे में किताबें पढ़ी जाने लगीं और कलम से लिखा जाने लगा। फिर अंग्रेजी राज में 'स्कूल' में 'बुक्स' पढ़ी जाने लगीं और 'पेन' से लिखा जाने लगा। मगर पता नहीं क्यों खेती-बाड़ी के 'कागजात' अंग्रेजी में नहीं किए जा सके! उर्दू में ही रह गए, जबकि इस्तमुरारी वगैरह बंदोबस्त अंग्रेज सरकार ने काफी कराए थे। देसी राज्यों-रियासतों को हड़पने के लिए तो काफी नियम बनाए गए थे।

इसलिए आजादी मिलने के काफी दिनों बाद ही सही, चकबंदी के दौरान (1970 के दौर में) हिंदी प्रदेशों में सारे कागजात उर्दू से सीधे हिंदी में हो गए हैं। फिर भी प्रयोग के शब्द अर्जी, महसूल, मुवक्किल, जिरह, बयान, गवाही आदि तमाम शब्द आज भी बाकायदा मौजूद हैं। मगर आज उनके साथ 'विटनेस', 'एडवोकेट', 'केस', 'फाइल', 'नोटिस', 'एफिडेविट' जैसे शब्दों ने जगह बना ली है।

अर्जी से 'अप्लीकेशन' हो गया- आवेदन-पत्र कब आएगा? इसी प्रकार हजारों सालों में हमारे पिता-माता भी सौभाग्य से या 'माता-पिता च भगवन' वाली संस्कृति के प्रताप से 'अब्बू-अम्मी' न बन पाए थे, लेकिन अब 'डैडी-मम्मी' बन गए। 'पितृव्य' से बने जो काका-काकी होते थे, वे अवश्य चाचा-चाची होकर समादृत हुए। फिर 'अंकल-आंटी' हुए, तो आज तक बने बैठे हैं और रहेंगे। काका-काकी जो गए, वे कब आएंगे, पता नहीं। इधर धारा 170 और शहरों-जगहों के उर्दूमय नाम बदल रहे हैं- शायद कभी अंग्रेजी के बरक्स इन मूल भारतीय शब्दों के भाग भी खुलें!

तकनीक का प्रभाव

सत्ता के साथ समय के बदलावों का मामला जुड़ता है, जिसमें आज के लिए सबसे प्रभावी बने हैं विज्ञान और तकनीक। इसके आरंभिक दौर में आज से पैंतीस-चालीस साल पहले जो मशीनी खेती की शुरुआत हुई, उसने तब से गांवों को बदलते-बदलते पिछले दस-पंद्रह सालों में पारंपरिक किसानी संस्कृति को निर्मूल कर दिया। हल-बैल और तरह-तरह के कृषि-कर्म के साधनों और तौर-तरीकों की जगह सब कुछ यंत्रमय होकर एक जैसा हो गया- बेशक अंग्रेजी में! 1962-63 के दौरान 'मेस्टन हल' सबसे पहले आए थे, तब गाना बना था- 'पुष्ट-पुष्ट बैल राखा, मेस्टन हल राखा; घने-घने खेतवा जोतावा, मन खेतिया में लगावा'।

और तभी हमारे कई-कई हलों- दबेहरा-खुटहरा-नौहरा आदि- जैसे अन्य कृषि-साधनों के साथ शब्दों के लोप के संकट मंडराए थे। 'डिब्लर' भी उसी वक्त आए। हमारे स्कूलों में हमें टहोका गया कि अपने खेतों में डिब्लर से गेहूं बुवाओ। उसमें बीज बहुत कम लगता और फसल सचमुच अच्छी होती। फिर तो मेस्टन का हजार गुना बड़ा रूप ट्रैक्टर आ गया और अब डिब्लर का बहुत प्रगत (एडवांस) रूप 'सीडर' आ गया है। आदमी के काम ही लगभग खत्म हो गए, जिससे सहकारिता आदि मानवीय संस्कृति का लुप्त होना लाजमी होता गया।

इस तरह मेस्टन, ट्यूबवेल-पंपिंग सेट, डिब्लर-सीजर-ट्रैक्टर आदि शब्दों ने गांव को तबसे विदेश-सा बनाना शुरू किया। फिर विदेशी रहन-सहन भी अंग्रेजी शब्दों के जरिए ही आए, जो जीवन में घुल-मिल कर हिंदी को लुप्त करते जा रहे हैं।नतीजतन, आज तो 'कल्टीवेटर' (तब का खुटहरा), 'लेबलर' (हेंगा), 'रोटावेटर' जैसे गाढ़े शब्द भी आ गए हैं। इन्हें हिंदी में समझने की जरूरत ही नहीं रही।

सब लोग देख के समझ रहे हैं और आदमियों के नामों की तरह उनकी सहज-स्वायत्त पहचान बन रही है। सबको भूलता ही जा रहा है कि ये अंग्रेजी के शब्द हैं। ऐसे शब्दों के लिए पहले हिंदी शब्द बनते थे। सरकारी 'ट्यूबवेल' खुले थे, तो नलकूप शब्द रवां करने की कोशिश हुई थी। आकाशवाणी-दूरदर्शन जैसे शब्द बनाए ही गए थे। मगर सब कागजों में खप कर रह गए। मगर कभी थे, तो सबके संज्ञान में तो आज भी हैं।

जीवन में तो टीवी-रेडियो ही रह गए और अब ये हिंदी के शब्द जैसे हो गए हैं। एक शिफत और आई है, जिसे पुन: अंग्रेजी का ही विकास कह सकते हैं। इन यंत्रों और अंग्रेजी-भाषा परस्त माहौल में जन्मी पीढ़ी के लोग इतने मंजते जा रहे हैं कि कल्टीवेटर-रोटावेटर बोल लेते हैं। वरना तब तो पंपिंग सेट को हमारे ग्रामीण भाई 'सर्पिंग पेट' कहते थे और सुनकर बड़ा मजा आता था।

नए साधनों की आमद

नए साधनों की आमद में घरों में गैस आई, तो सिलेंडर आया। फ्रिज-टीवी-एसी-गीजर-फिल्टर-माइक्रो आए, जिन्हें फिर भी समझा जा सकता है- नई शब्दावली की तरह लिया जा सकता है। मगर थालियां-कटोरियां क्यों 'डिशेज-प्लेट' हो गईं, प्याली की चाय क्यों 'कप' हो गई, रसोईं-घर क्यों किचन हो गए आदि पर क्या सोचा जाए? कब हो गए, का भी किसी को भान न हुआ।

हो जाने पर किसी को कोई चिंता भी नहीं है! फिर जब पक्के घर बने, तो बेडरूम, बाथरूम, बालकनी भी बने। दालान बनने खत्म हुए, तो बढ़ गए गलियारे- लेकिन कारीडोर बनकर। कोठे बेचारे उजड़ कर एक कोने में 'स्टोर-रूम' बन गए। जब हमारे बचपन में किसी के घर में एकाध कमरे पक्के हुए थे, तो छत होती थी, जो अब घर-घर में टैरेस हुई जा रही है। स्नानघर तो कागजों में ही था- वहीं रह गया।

शयनागार तो गाढ़ी किताबों ('दिव्या', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आदि) में ही रह गए। बेसिन बिल्कुल न थे, आ धमके। फिर शौचालय तो क्या बनते, वे तो सरकारी भवनों में बोर्ड बनकर खिसियाए पड़े हैं- बन गए सीधे 'लैट्रिन रूम' ही। तो अब कोई टट्टी-कुल्ला-पाखाना आदि क्यों करे, गांव का भला-भोला आदमी भी सीधे लैट्रिन करने लगा है- कई शब्दों का झंझट ही खत्म हो गया।

अब यह बताना भी मूर्खता होगी कि आड़ में किए जाने वाले ऐसे कामों के लिए हमारी भाषिक संस्कृति में एकाधिक शब्द क्यों होते थे। बस, बेचारा पेशाब आज भी आता-होता है। हालांकि वह भी जांच के लिए जाता है, तो 'यूरीन टेस्ट' ही होता है। रक्त-जांच के बोर्ड लगे हैं अस्पतालों में, लेकिन होता तो 'ब्लड टेस्ट' ही है। अंग्रेजी से बने अस्पताल-अकादमी जैसे शब्द कितने सहज और सुंदर थे! आसानी के साथ आए थे, लेकिन इन पर अब हास्पीटल और एकेडमी भारी पड़ गए हैं- भाषा विज्ञान का मुख-सुख मुंह देखता रह जाता है और अंग्रेजी के कठिन शब्द झट से लपक (कैच कर) लिए जा रहे हैं।

हिंदी प्रदेशों की इस विडंबना पर तो अलग से विचार की जरूरत होगी कि महाराष्ट्र में हास्पीटल से अस्पताल क्यों नहीं बने? वहां क्यों 'रुग्णालय' और 'औषधालय' बने, जो आज भी चल रहे हैं! लेकिन अभी तो यह देखें कि ज्वर-बुखार-जुकाम भी अब 'फीवर' बन कर आने लगे हैं। देह-दर्द जैसा प्रासमय शब्द 'बाडी-पेन' बन गया है। सरदर्द होना कम हो रहा है, 'हेडेक' बढ़ रहा है। बस पेट-दर्द बना हुआ है- 'स्टमक पेन' अभी तक कहीं गर्त में तड़प रहा होगा।... हमारे बचपन में लगे क्ष-किरण (एक्सरे) के पटों (बोर्डों) की व्यर्थता उन्हें खुद ही समझ में आ गई- बेचारे हट गए।

एक लड़की के कारण फणीश्वरनाथ रेणु ने नहीं दी थी 12वीं की परीक्षा,

BHU में पढ़ाई के दौरान फणीश्वरनाथ रेणु को सुहास नाम की एक छात्रा से प्रेम हो गया था।

रिपोर्टर, उपन्यासकार, कहानीकार, स्वतंत्रता सेनानी फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले के छोटे से गांव ओराही हिंगना में हुआ था। रेणु ने कालजयी उपन्यास 'मैला आंचल' के अलावा पंचलाइट, लाल पान की बेगम, रसप्रिया,जैसी रोचक कहानियां भी लिखी हैं।

वह लेखक होने से पहले एक आंदोलनकारी थे। वह बचपन से ही आजादी की लड़ाई में शामिल रहे। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के लिए उन्हें दो साल से अधिक समय तक जेल में रहना पड़ा था।

प्रेमी रेणु

क्रांतिकारी और लेखक होने के अलावा रेणु प्रेम भी थे। पहली बार मैट्रिक (10वीं) की परीक्षा में फेल होने के बाद रेणु ने दूसरी बार बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। वहीं उन्होंने इंटरमीडिएट (12वीं) की पढ़ाई भी शुरू कर दी। इसी दौरान उन्हें एक सुहास नाम की छात्रा से प्रेम हो गया।

फणीश्वरनाथ रेणु की संक्षिप्त जीवनी लिखने वाले पत्रकार पुष्यमित्र अपनी किताब में बताते हैं कि बीएचयू में पढ़ाई के दौरान ही रेणु को सुहास से प्यार हुआ था। लेकिन चेचक के कारण उस छात्रा की मौत हो गयी। इस घटना का रेणु पर जबरदस्त असर पड़ और वह पढ़ाई लिखाई बीच में ही छोड़कर गांव लौट गए। उन्होंने 12वीं की पढ़ाई तो की लेकिन परीक्षा नहीं दी।

इस तरह हिंदी साहित्य के एक महान लेखक सिर्फ 10वीं पास ही रह गए। हालांकि यह भी दिलचस्प है कि जिस रेणु की रचनाओं को बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है, जिनकी कृतियों पर स्टूडेंट्स पीएचडी करते हैं, वह रेणु सिर्फ 10वीं पास हैं।

अस्पताल में नर्स से हो गया था प्यार

साल 1941 में रेणु के पिता ने उनकी शादी रेखा देवी से करा दी। रेणु और उनकी पत्नी को एक बेटी हुई। हालांकि कुछ समय बाद रेखा देवी लकवाग्रस्त हो गईं और अपने मायके रहने लगीं। इसके बाद रेणु आजादी के आंदोलन के साथ-साथ नेपाल की क्रांति में भी शामिल होने होने लगे। इस दौरान वह कई बार जेल गए, जहां उन्हें पुलिस यातना देती। वह लगातार आंदोलन करने और मार खा-खाकर कमजोर हो गए थे।

साल 1944 में जेल में रहते हुए ही उनकी तबीयत इतनी बिगड़ गयी कि उन्हें लगभग मरणासन्न हालत में पटना के पीएमसीएच अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। रेणु अस्पताल के जिस वार्ड में भर्ती थे, उन्हें उसकी ही इंचार्ज लतिका रायचौधुरी से प्यार हो गया। रेणु पर्चियों पर लिख-लिखकर लतिका को संदेश भेजा करते थें, जिसपर वह ध्यान भी नहीं देती थीं।

पुष्यमित्र बताते हैं कि लतिका ने बाद में लिखा की उन्हें रेणु के ठीक होने की उम्मीद नहीं थी। हालांकि वह बच गए और लतिका को पत्र लिखते रहे। लेकिन लतिका ने चिट्ठियों को भी नजरअंदाज किया।

नेपाल की क्रांति के बाद 1951 में रेणु की हालत फिर बिगड़ गयी। उन्हें खून की उल्टी और दस्त होने लगा। रेणु के दोस्तों ने लतिका से संपर्क किया और इलाज की गुहार लगाई। रेणु को मरने की हालत में देखकर उनका मन बदला। लतिका ने रेणु का खूब ख्याल रखा, कई महीनों की सेवा के बाद वह ठीक हो गए।

शादी किए बिना साथ रहने पर हुआ बवाल

लतिका की देखभाल के बाद स्वस्थ होने पर रेणु घर नहीं लौटे। वह सामान लेकर लतिका यहां रहने पहुंच गए। दोनों बिना शादी किए एक साथ चाइल्ड वेलफेयर सेंटर में रहा करते थे। एक रोज सेंटर में इस रिश्ते को लेकर विवाद हो गया और 5 फरवरी, 1952 को दोनों को शादी करनी पड़ गयी। शादी लतिका घर हजारीबाग में हुई है। हालांकि 1951 में रेणु के पिता उनकी दूसरी शादी पद्मा देवी से करा दी थी। पद्मा से भी रेणु को संतान हुए। लतिका से रेणु को कोई बच्चा नहीं हुआ।

THE CORE IAS

'अज्ञेय इन्टेंशनली प्राइवेट आदमी थे।' यह गगनभेदी टिप्पणी 'कलम का सिपाही' लिखनेवाले मुंशी प्रेमचंद के छोटे बेटे अमृतराय ने कलम से लिखकर नहीं, मुंह से बोल कर की थी। अवसर था अज्ञेय की वर्षगांठ या पुण्यतिथि पर आयोजित एक कार्यक्रम का। जगह थी हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

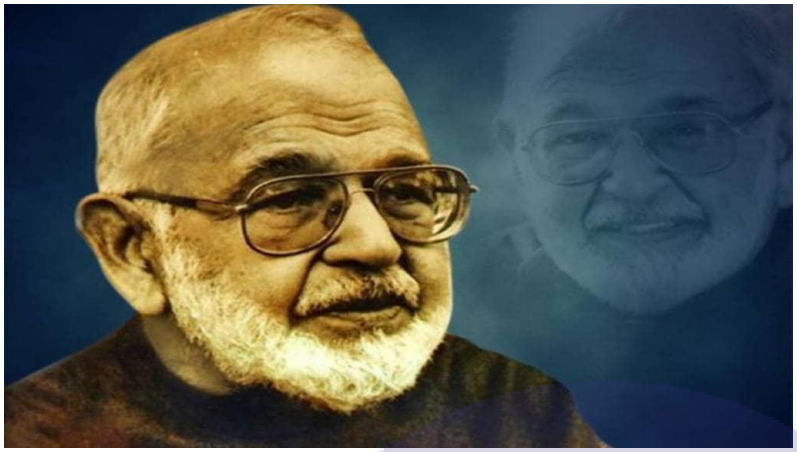

1993-94 की बात है। अज्ञेय के शिष्य-सखा-अनुचर राम कमल राय हिंदुस्तानी एकेडमी के अध्यक्ष बन गए थे। लखनऊ में समाजवादियों की सरकार आ चुकी थी। रामकमल राय की किताब 'शिखर से सागर' तक आ गई थी, लेकिन अचर्चित ही थी। साहित्यकारों ने उसे कोई खास तवज्जो नहीं दी थी। उस कार्यक्रम में अज्ञेय पर बोलने के लिए भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कंडेय, दूधनाथसिंह, रवींद्र कालिया जैसे दिग्गजों का जुटौला हुआ था। लेकिन, सबसे ज्यादा चर्चा अमृत राय बटोर ले गए थे।

अपने इसी एक वाक्य से। अज्ञेय को लेकर उन दिनों बहुत सारे सच, अफवाहें, भ्रांतियां फैली थीं और लोग रस ले-लेकर या ईष्यार्वश अपना ज्ञान-वमन करते रहते थे। लेकिन, अमृतराय ने जो बात कही थी, वह सभी को जंच गई थी। उनका यह वाक्य ही ऐसा था, मानो सब ऐसे ही किसी आप्तवचन को सुनने को बेताब थे। इस अकेले वाक्य ने जैसे अज्ञेय की समस्त सत्ता को, समस्त साहित्य को छिन्न-भिन्न कर दिया था। लोगों को लगा था कि अज्ञेय को समझने का सूत्र मिल गया। अज्ञेय का प्रताप इससे धूमिल हुआ हो जैसे।

असल में, अज्ञेय उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के नक्षत्र ही नहीं, 'दिनमान' हो गए थे। यों अज्ञेय का उपन्यास "शेखर -एक जीवनी' आजादी के पहले प्रकाशित हुआ था। लेकिन, एक अबूझ नगरीय प्रेम की छटपटाहट, वियोग-वेदना का सम्मिलित स्वर और क्रांतिकारिता के लय की उठान सदी के नवें दशक में भी पींग ले रही थी। 'शेखर-एक जीवनी' के शशि-शेखर को विश्वविद्यालय के छात्र और छात्राएं अब भी अपनी रूमानी अस्तित्व का हिस्सा बनाए हुए थे। इलाचंद जोशी का 'जहाज का पंक्षी' अपनी उड़ान भर कर सो गया था।

धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' के सुधा-चंदर की कैशौर्य-प्रेम की उत्कट छटपटाहट अवसान पर थी। अज्ञेय ने तार- सप्तक निकालकर, शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी लिखकर हिंदी के साहित्यकाश को लालिमा से भर दिया था। आजादी के बाद की नगरीय आकांक्षाएं 'हरी घास पर क्षण भर' बैठने को आकुल थीं। जो उनसे चिढ़ते थे, वे भी उन्हें तलाशकर पढ़ते थे। हालांकि, नामवर सिंह, अज्ञेय को चिंपाजी की तरह 'गंभीर और मनहूस' कह चुके थे। अज्ञेय के प्रेम के दर्द को खारिज कर दिया गया था और शेखर के संघर्ष को मौखिक करार दे दिया गया था। दूधनाथ सिंह उन्हें 'खोटा सिक्का' कहते थे।

तो ऐसी, मुखापेक्षी और अवसरानुकूल श्रोता मंडली पाकर जब अमृतराय ने सायास या अनायास अज्ञेय पर उक्त टिप्पणी की तो सबसे ज्यादा सुख जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष भैरव प्रसाद गुप्त ने पाया। अवसर आने पर उन्होंने भी अज्ञेय को लेकर कई विस्फोटक बातें कहीं। जैसे कि उन्होंने कहा,-"शेखर- एक जीवनी" में एक भी मुहावरा नहीं है। मुहावरा होता है जनता के पास। और अज्ञेय जनता के लेखक नहीं है। इसलिए उनका लेखन जनविरोधी है।" बाद में जगदीश गुप्त और राम कमल राय ने अज्ञेय के लेखन-कर्म के विविध पक्षों को रखा। लेकिन, पलड़ा इतना उटंग हो चुका था कि अज्ञेय के लिए आयोजित वह तीन दिवसीय कार्यक्रम, अज्ञेय को समझने के बजाय उन्हें न

समझने में उलझ गया था। नामवर सिंह ने बहुत बाद में अपने भीतर सुधार कर लिया था और 'शेखर-एक जीवनी' को हिंदी के पांच सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में मान लिया था।

अज्ञेय को लेकर जनवादी-वामवादी लेखकों ने आरंभ से ही ऐसी मुहिम चला रखी थी कि उन्हें खलनायक की तरह पेश किया गया था। उन्हें सीआइए का एजेंट तक कहा गया। विडंबना यह रही कि जो अज्ञेय से जितना चिढ़ता था, वह उतना ही उनके करीब जाना चाहता था। ऐसा सुना जाता है कि राजेंद्र यादव ने कभी अज्ञेय के साथ 'मयकशी' का प्रस्ताव रखा था, लेकिन उन्होंने ठुकरा दिया था। कानपुर के एक साहित्यकार तो बहुत गर्व से कहते रहे कि वह अज्ञेय के 'हम-प्याला' रह चुके हैं।

उस दौर में मैंने अज्ञेय की हर वह चीज पढ़ी, जो मुझे मिली। हिंदुस्तानी एकेडमी वाले कार्यक्रम में मुझे भी एक पर्चा पढ़ना था। लेकिन, न जाने क्यों, मैंने वह अवसर गवां दिया था । मुझे इसका बहुत मलाल रहा था। लेकिन, वह पढ़ाई-लिखाई दिल्ली में बहुत काम आई। अपने पत्रकारिता को सजाने-संवारने में भी और जीवन को कुछ समझने में भी। अज्ञेय की जीवनी लिखी है अक्षय मुकुल ने ' राइटर, रेबेल, सोल्जर, लवर' नाम से। इसकी बहुत चर्चा है। जल्द ही मंगाऊंगा।

यह होता है। कई बार, किसी लेखक को समझने में तत्कालीन समाज विफल हो जाता है। इसके पीछे बहुत से कारण होते हैं। विरोधी विचारों का घटाटोप, दुष्प्रचार और गलत व्याख्याएं एक बहुंरगी दीवार खड़ी कर देतीं हैं, जिसे भेदने में समरथ से समरथ लेखक भी पस्त हो जाते हैं। भुवनेश्वर जैसे लेखक को, जिन्होंने 'भेड़िए' जैसी विश्वस्तरीय कहानी लिखी, हिंदी समाज ने मार डाला।

कहीं बनारस के किसी घाट पर वे अनाम मौत मरे। उनकी कहानी को बाद में बहुतों ने बेचा और मालामाल हुए। अज्ञेय को लेकर भ्रांतियां बहुत पैदा की गईं। अज्ञेय की टेक थी-जो समाज महान लेखक की बात करता है, क्या लेखक भी उससे पलटकर पूछ सकता है कि क्या तुम महान समाज हो ? इस 'बावरा अहेरी' से मुझे कभी कोई उलाहना नहीं रहा।

***

THE CORE IAS

THE CORE IAS

JATIN JAIN
(Rank-91) UPSC CSE-2022

SHRUSTI
(Rank 165) UPSC CSE-2022

DAMINI DIWAKAR
(Rank 435) UPSC CSE-2022

AKANSHA
(Rank 702) CSE-2022

NEHA JAIN
UPSC 2021-RANK 152

ABHI JAIN
(Rank 282) 2021

VASU JAIN
(Rank 67) 2020

AKASH SHRISHRIMAL
(Rank 94) 2020

DARSHAN
(Rank 138) 2020

SHREYANSH SURANA
(Rank 269) 2020

ARPIT JAIN
(Rank 279) 2020

SANDHI JAIN
(Rank 329) 2020

RAJAT KUMAR PAL
(Rank 394)

SANGEETA RAGHAV
(Rank 2)-2018 UPPSC

PANKHURI JAIN
2018 UPPSC

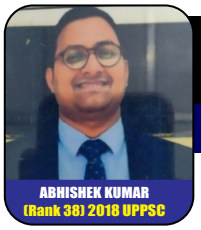
ABHISHEK KUMAR
(Rank 38) 2018 UPPSC

OUR RESULT

Scan here for Testimonial

THE CORE IAS

These are offline classroom students not of mock interview

011-41008973, 8800141518

103, B-5/6 II Floor, Himalika Commercial Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi 09

www.thecoreias.com

/thecoreias /thecoreias /iascore /thecoreias /thecoreias